MAGO-109
अधिवास भूगोल

Gòej ØeosMe jepeeef<e& šC[ve
cegòeâ efJeMJeefJeÅeeueÙe,
ØeÙeeiejepe

MAGO-109 DeefOeJeeme Yetieesue

इकाई–1 अधिवास भूगोल की परिभाषा, विकास, विषय क्षेत्र	3–16
इकाई–2 अधिवासों का वर्गीकरण	17–29
इकाई–3 ग्रामीण अधिवासों का वितरण, प्रतिरूप	30–42
इकाई–4 ग्रामीण अधिवासों के प्रकार	43–58
इकाई–5 ग्रामीण सेवा केंद्र	59–72
इकाई–6 ग्रामीण नियोजन	73–90
इकाई–7 ग्रामीण नगरीय अधिवास एवं नगरीय भूगोल	91–106
इकाई–8 नगरों का उद्भव एवं विकास	107–122
इकाई–9 नगरीय आकारिकी	123–139
इकाई–10 नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण	140–151
इकाई–11 नगरी तंत्र विश्लेषण विश्लेषण	152–168
इकाई–12 नगर प्रदेश पारस्परिक प्रभाव	169–185
इकाई–13 नगरीय समस्याएं	186–203
इकाई–14 नगर नियोजन एवं मास्टर प्लान	204–220
इकाई–15 ग्रामीण नियोजन	221–235

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
विनय कुमार	कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति; (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाजविज्ञान, विद्याशाखा, उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 अभिषेक सिंह	सहा0 आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 एन.के राना	आचार्य, भूगोलविभाग बी0एच0यू0, वाराणसी
प्रो0 ए0 आर0 सिद्दीकी	आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविालय प्रयागराज
प्रो0 अरूणकुमार सिंह	आचार्य, भूगोल विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी

लेखक

प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 द्रेवेन्द्र नारायण पाण्डेय	सहा0.आचार्य भूगोल राष्ट्रीय पी जी कालेज जमुहई जौनपुर
डॉ0 विकास सिंह	सहा0 आचार्य, भूगोल पी0 जी0 कालेज, पी0 जी0 कालेज पट्टी, प्रतापगढ

सम्पादन

प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सह -समन्वयक

डॉ0 अभिषेक सिंह	सहायक आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रितवर्ष– 2024

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. –978-81-19530-05-2

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाषक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज–2024

मुद्रकः– चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज

इकाई–1 अधिवास भूगोल की परिभाषा, विकास, विषय क्षेत्र

इकाई का रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 अधिवास का भौगोलिक दृष्टिकोण

1.3 भूगोल में अधिवास की उपयोगिता

1.4 अधिवास भूगोल की परिभाषा

1.5 अधिवास भूगोल का विकास

1.6 अधिवास भूगोल का विषय क्षेत्र

1.7 अधिवास भूगोल का भूगोल की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध

1.8 अधिवास भूगोल के उपागम

1.9 अधिवास भूगोल की प्रविधियाँ एवं उपकरण

1.10 सारांश

1.11 स्व मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1.12 सन्दर्भ सूची

1.13 अभ्यास प्रश्न सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. प्रस्तावना

अधिवास प्रथमतः मानव आवास के रूप में आपने अस्तित्व के रूप में पाया जाता है। मानव स्वयं को प्राकृतिक (मौसमी) की मार से बचने तथा सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए छोटी या बड़ी बस्ती को बनाता है, जिसमें मानव रहते है तथा आपनी आवश्यक वस्तुओं को इकट्ठा करते है अथवा इसका भविष्य में अन्य तरीके से प्रयोग करते है। सामाजिक प्राणी होने के नातें वह एकाकी नही रह सकता इस कारण उनके अधिवास पर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक का गहरा प्रभाव परिलक्षित है।

अधिवासों को दो वर्गो में रख सकते है। (1) ग्रामीण अधिवास (2) नगरीय अधिवास। अधिवास भूगोल की वह शाखा है जो उन अधिवासों के आकार, आकृति, प्रकार्य और प्रादेशिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है। अधिवास भूगोल मानव भूगोल की प्रमुख नयी शाखा है।

1.1 उद्देश्य

यह अधिवास भूगोल की प्रथम इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप अधिवासों के गुण एवं प्रकार का अध्ययन कर सकेगें।

1. अधिवास भूगोल में उसके आकार एवं प्रकार्य को समझ सकेगें।
2. भारत में अधिवास भूगोल के विकास वर्तमान स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

3. अधिवास भूगोल के उपागम को जान सकेगें।

1.2 अधिवास का भौगोलिक दृष्टिकोण

अधिवास जो एक उपयोगी इकाई (Occupance unit) है। अंग्रेजी भाषा के शब्द 'सेटलमेण्ट' (Settlement) का समानार्थी है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अंग्रेजी के शब्द Settlement का उद्‌भव प्राच्य अंग्रेजी के शब्दों Setle (Seat) या स्थान) अथवा Setlan (to place स्थित करना) से मान सकते है। शब्दकोषों में इसके कई अर्थ बताये गये हैं जिनमें से भौगोलिक दृष्टि से दो विशेष महत्व के है– (1) A settled colony (एक आवासित उपनिवेश) अर्थात् आवासों का वर्ग जिसमें लोग निवास करते हैं तथा (2) the act of setting or forming a permanent residence बसाव की प्रक्रिया या स्थायी निवास बनने का कार्य) अपनी व्युत्पत्ति की विशेषता के आधार पर भूगोल में भी अधिवास शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है– (1) बसने के रूप में जिसके द्वारा किसी वन्य क्षेत्र का मानवीकरण होता है। दूसरे शब्दों में, मानव घुमक्कड़ जीवन के स्थान पर स्थायी जीवन की ओर उन्मुख होता है। (2) बसाव की प्रक्रिया के उत्पाद (Product of setting process) के रूप में जिसके अन्तर्गत वह मकान, बाग–बगीचा, खेत–खलिहान, परिवहन एवं संचार के साधन, मनोरंजन और व्यापारिक प्रतिष्ठानों का निर्माण अच्छे से करता है।

भूगोल में अधिवास शब्द का प्रयोग वडे स्तर पर किया गया है इसके अन्तर्गत एक कमरे के लघु आवास से लेकर गगनचुंबी बहुमंजिली इमारतें, एक नगला (पुरवा) से लेकर विशाल महानगर (Megalopolies) अथवा बसाव के क्षेत्र में मकान की एक दीवाल के निर्माण से लेकर बहुमंजिली इमारत के निर्माण का कार्य सम्मिलित है। वास्तव में यह एक अध्यासन इकाई का द्वैतक है जिसमें (Occupance) इकाई का बोधक है जिसमें सामान्य घर (farm stead) से लेकर संश्लिष्ट नगर या विशाल महानगर तथा खनिको (miners) एवं आखेटको (hunters) के अस्थाई आवास से लेकर कृषकों तथा नगर निवासियों के स्थायी आवास स्थलों से लेकर विद्यालय, होटल, सरॉय, व्यापारिक प्रतिष्ठान आदि इमारतें, उनके इर्द–गिर्द की सड़के, गलियाँ, पार्क, क्रीड़ास्थल, खेत–खलिहान आदि सभी कुछ सम्मिलित किये जाते हैं। किसी एक स्थान पर इमारतों, गलियों, पार्कों आदि के इन समूहन से प्राथमिक अधिवास इकाई या अधिवास समष्टि (settlement ensemble) का निर्माण होता है।

विभिन्न परिभाषाओं द्वारा अधिवास शब्द का अर्थ एवं प्रयोग इस प्रकार से प्रकाश डाला जा सकता है।

अलेक्जेण्डर के अनुसार ''अधिवास तृतीयक क्रियाकलाप, जिसका कालान्तर में समूहन हुआ से सम्बद्व है।''

ट्रिवार्था के अनुसार 'अधिवास' शब्द से अभिप्राय व्यवसायिक (Occupance) इकाई में जनसंख्या के विशिष्ट समूहन से है जिसमें निवासियों के लिए मकानों, गलियों आदि की सुविधायें पाई जाती है। इस प्रकार अधिवास इकाई मनुष्यों का एक संगठित उपनिवेश है जिसमें उन मकानों का जिसमें वे रहते हैं या जिसे वे उपयोग मे लाते हैं एवं उन मार्गों या गलियों को जिस पर वे चलते हैं उन्हें सम्मिलित किया जाता है।

कोन महोदय ने सड़कों के केन्द्रीय बिन्दु (Focal point) पर अवस्थित मकानों एवं विभिन्न सुविधाओं के समूहन को अधिवास समष्टि (Settlement Ensemble) बताया है जिसका पदानुक्रम साधारण खेत–घर (form stead) से महानगर के बीच पाया जाता है। **प्रोफेसर सिंह के अनुसार** अधिवास एक अध्यासन इकाई के रूप में मानव के एक संगठित उपनिवेश को प्रदर्शित करता है जिसमें मकानों, जिसमें लोग

रहते हैं, कार्य करते हैं वस्तुएँ संग्रह करते हैं अथवा जिनका विभिन्न कायों में उपयोग करते हैं एवं मार्गो तथा गलियों जिन पर उनका गमनागमन होता है सम्मिलित किया जाता है। अधिवास शब्द से मुख्यतः भौतिक स्थल के मानवीकरण का बोध होता है परन्तु मानव भूगोल में यह आपने समस्त परिवेश सहित उन गृह समूहों का बोध है जो मानव बसाव हेतु एक उपयुक्त स्थान पर निर्मित किये जाते हैं। यह एक अध्यासन इकाई (occupance unit) है जिसके अन्तर्गत सामान्य खेत–घर (form stead) से लेकर संश्लिष्ट नगर या महानगर तथा खनिको अथवा नगर निवासियों के स्थायी आवास तक सम्मिलित कर लिये जाते है।

1.3 भूगोल में अधिवास–अध्ययन की उपयोगिता

सांस्कृतिक भूदृश्य के रूप में मानव अधिवास एक प्रमुख तत्व है जिसका वितरण पृथ्वी के उस सम्पूर्ण भाग पर विद्यमान है जो मानव की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्रियाओं से प्रभावित होता है। एक नैतिक विज्ञान होने के कारण इसके वितरण प्रतिरूप एवं अवस्थापनात्मक (Localional) विशेषताओं का अध्ययन भूगोल का विषय है। चूँकि आवासों का निर्माण मानव बसाव अथवा खाद्य भूदृश्य (Primordial Land Scape) के दौरान होता है इनके जानकारी से किसी क्षेत्र में मानव बसाव की सम्पूर्ण प्रक्रिया का ज्ञान हो सकता है। चूँकि बस्ती मानव की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्तर तथा इसमें होने वाले परिवर्तनों की प्रवृत्तियों को ज्ञात किया जा सकता है। इसी प्रकार आवासों के माध्यम से किसी क्षेत्र के लोगो की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं, सांस्कृतिक परम्पराओं, प्राकृतिक पर्यावरण, जनसंख्या घनत्व, कृषि गहनता, भूमि उपयोग प्रकार सांस्कृतिक संक्रमण (Atransition) आदि के बारे में सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो सकती है। अधिवासों के सूक्ष्म विश्लेषण से अधिवासियों में समृद्ध, जीवन स्तर, स्वास्थ्य, जीवन की गुणवत्ता, सामाजिक अपराध आदि सम्बन्धी जानकारी प्राप्त हो सकती है। वास्तव में अधिवास मानव एवं सांस्कृतिक भूगोल के लिए उतना ही महत्वपूर्ण तत्व है जितना भौतिक भूगोल के लिए स्थल संरचना। भूपृष्ठ पर दृष्टि डालने पर प्राकृतिक स्थल रूपों के प्रमुख रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। यही कारण है कि भौगोलिक अध्ययनों में इसे प्रमुख स्थान मिलता रहा है।

परिभाषा

मानव बस्तियों पर संयुक्त राष्ट्र के वैकूवर घोषणा पत्र (1976) के अनुसार, ''मानव बस्तियों का अर्थ मानव समुदाय की समग्रता है चाहे शहर, कस्बे या गाँव हो जहाँ सभी सामाजिक, भौतिक संगठनात्मक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक तत्व हो जो इसे बनाये रखते है।'' ''मानव द्वारा निर्मित आवासों का संगठित समूह बस्ती कहलाता है।''

(1) आर0पी0 मिश्रा के अनुसार – ''मानव बस्तियॉ वह नाभीय केन्द्र है, जिनके चारों ओर मानव आपनी संस्कृति का निर्माण करता है।''

(2) जे.ब्रून्स के अनुसार –''अधिवास भूगोल मानवीय तथ्यों के भौगोलिक पदानुक्रम में विशिष्ट स्थान रखता है।''

(3) आर.एल.सिंह के अनुसार –''अधिवास भूगोल किसी क्षेत्र के मनुष्य के पहल करने की प्रक्रिया के द्वारा निर्मित सुविधाओं; मकान, सड़क तथा उसके समूहन पर विचार करता है।''

(4) सी.एफ.कोहन के अनुसार – ''अधिवास भूगोल का सम्बन्ध उन सभी सुविधाओं से है जिन्हे मानव ने भूमि के एक खण्ड को अधिग्रहीत करने की प्रक्रिया में जुटाया है।''

(5) एस.पी.चटर्जी के अनुसार .. ''बस्ती भूगोल या अधिवास भूगोल मानव निर्मित बस्तियों के कार्यो, रूप एवं आकार का अध्ययन करता है, तथा उनके ऐतिहासिक विकास को निर्धारित करता है।''

(6) जी.एस.गोसाल के अनुसार–''अधिवास भूगोल पृथ्वी के धरातल पर मानव वसाव की प्रक्रियाओं में पाई जाने वाली स्थानिक विभिन्नताओं तथा उनकी अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है।''

किसी भी क्षेत्र में स्थित अधिवास उस जगह रहने वाले लोग, उनकी रूचि तथा भौगोलिक दशाओं का गहन अध्ययन करती है। चूँकि प्रत्येक क्षेत्र की आपनी अलग–अलग विशेषता है। जिस कारण अधिवास भिन्नता होती है। इन विभिन्नताओं के प्रमुख कारकों को पहचानना तथा समझना ही अधिवास में भूगोल के अध्ययन की मूलभूत अवधारणा है।

ग्रीक विद्वान स्ट्रैबो (63B.C,-20A.D.) प्रथम विद्वान था जिसका ध्यान अधिवासों के अध्ययन पर गया और इसी कारण इनको अधिवास भूगोल का जन्मदाता माना जाता है। अधिवास भूगोल जर्मन शब्द सिंडलुंगस ज्योग्राफी (Siendlungs Geography) का पर्यायवाची अधिवास भूगोल है, जो अधिवास भूगोल की विचारधारा का प्रतिपादक है। डोक्साईडिस (Doxiadis) ने ग्रीक शब्द Ekisties का प्रयोग किया जिसका अर्थ (बस्ती विज्ञान) से है। अधिवास वह सांस्कृतिक भूदृश्य है जिसे मानव ने आपने प्रयासों से पुष्पित, पल्लवित किया है। प्राकृतिक परिवेश में कोई भी परिवर्तन इस भूदृश्य को परिवर्तित करता है। प्रमुख रूप में अधिवास भूगोल को एक व्यवस्थित रूप में विकसित करने का श्रेय बीसवीं शताब्दी के विद्वानों को है। ब्लाश, रूसो, आहनमन, डिमांजिया ब्रून्स जैसे विद्वानों ने बस्ती भूगोल पर आपने–आपने विचार प्रस्तुत करके विषय को पुष्पित पल्लवित किया। मानव द्वारा निर्मित भूदृश्य उन सभी प्राकृतिक तथ्यों को सम्मिलित करती है जो मानवीय अधिवास को निर्धारित करते है।

1.5 अधिवास भूगोल का विकास

वर्तमान युग में भारतीय विद्वानों व विदेशी विद्वानों के सतत् प्रयास से यह विषय आपनी वैज्ञानिकता के रूप में विकसित हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ के तत्वाधान में जब ग्रामीण अधिवास प्रकार के अध्ययन पर एक आयोग की स्थापना की गयी तब से ही ग्रामीण बस्ती (अधिवास) भूगोल का अध्ययन शुरू हो पाया । भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ ग्रामीण वातावरण ही प्रमुख है, इसका अध्ययन आज भी आपने प्रारम्भिक दौर में है इसके बावजूद एक क्रमबद्ध विज्ञान रूप में आपनी वैज्ञानिकता की सार्थकता को प्रमाणित करके सिद्ध कर लिया है।

सांस्कृतिक भूदृश्य के प्रमुख तत्व के नाते अधिवास को सदैव से ही भौगोलिक अध्ययनों में प्रमुख स्थान मिलता आ रहा है। भौतिक स्थलरूपों के साथ–साथ मानव अधिवास का उल्लेख मिलता है। थ्यूसीडाइड्स (Thuey dides) पोलिवियस (Polybius 204-122 B.C.) और स्ट्रैबो (Strabo 63 B.C.-20 A.D.) आदि ग्रीक विद्वानों ने नगरों को उत्कृष्ट सांस्कृतिक के रूप में माना। रोम शासन में नगरों ग्रिड–व्यवस्था के रूप में नगरों का प्रमाण मिलता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में (वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, जातक कथाओं में भी गाँवों तथा नगरों की स्थिति, विस्तार, सुरक्षा, भू आयोजना, नियोजन आदि संम्बधी अनेक उल्लेख मिलते है।

अधिवास भूगोल का उद्भव मानव भूगोल की एक शाखा के रूप में माना जाता है जिसका विकास जर्मनी में होता है इसलिए अधिवास भूगोल का उद्भव एवं प्रारम्भिक विकास जर्मन विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कार्लरिटर (Karl Ritter 1779.1859) के अथक प्रयासों का ही 'सन्दर्भ सूची' प्रथम ग्रन्थ माना जा सकता है। रिचथोफेन (F.Von Richthoten) महोदय ने सामान्य अधिवासों के

विभिन्न विषयों पर आपने विचार प्रस्तुत किये।

1891 ई0 में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल कांग्रेस के अधिवास भूगोल के एक प्रमुख विषय उपनिवेशन के अध्ययन में विशेष रूचि दिखाई। मीजेन (1895) आवासों के वितरण तथा लक्षणों के आधार पर ग्रामों का विवरण प्रस्तुत किया। स्ल्यूटर (Oschlutor) 1899 ने अधिवासों की अवस्थिति (Location) आकार (Size) विकास एवं प्रकृति के संबध के साथ ही प्रभावित करने वाले कारकों पर प्रकाश डाला तथा बताया कि ग्राम या नगर की आपेक्षा नगर समूहों, आवास तंत्र महत्वपूर्ण होता है। वेगनर (H.Wagner, 2900) ने गृह अधिवासों को केन्द्र बिन्दु मानकर इसे दो प्रकार में विभाजित किया (1) स्थायी (2) अस्थायी। बीसवीं सदी के लगभग चौथे दशक में जर्मनी के अधिवास भूगोलविदो में इसके विषय क्षेत्र में द्वन्द्व उत्पन्न हो गया। कुछ विद्वान ने विषय क्षेत्र को विस्तृत बताया जिसमें आकार प्रक्रम दोनों को सम्मिलित करते हुए जर्मन की राष्ट्रीय समस्याओं के निराकरण में महत्वपूर्ण स्थान दिया है, जबकि क्रिस्ट्रालर (W.Christaler) मानव समुदाय विशेषकर उनके विकास की प्रक्रिया को विषय का केन्द्र बिन्दु बताया। इनके केन्द्र स्थल सिद्धान्त (1939) ने अधिवासों के अध्ययन में पदानुक्रम निर्धारण के साथ–साथ प्रकार्यो के नये युग का सृजन किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त आपसी अर्न्तद्वन्द चरम की पराकाष्ठा पर पहुॅच गया। इसके बाद भी जर्मन अधिवास भूगोल की विचारधारा आपने विचारों को प्रसार समीपवर्ती देशों में एक नये सृजन की शुरूआत कर रहा था जिसमें फ्रांस की भूमिका महत्वपूर्ण योगदान दे रहा था। फ्रांस में अधिवास भूगोल को जर्मनी की आपेक्षा कम महत्व दिया गया, लेकिन प्रादेशिक उपागम की प्रमुखता रही, जिसमें ब्रून्स, ब्लाश, डिमांजियॉ का प्रभाव रहा। बून्स ने लिखा है 'गॉव वास्तव में एक ऐसे भौगोलिक तथ्यों की ओर संकेत करता है, जो मकानों व रिहाइशी इकाइयों के सघन एकत्रीकरण का समूह है।'

इस तरह ग्राम एक समूह की ओर संकेत करता है। यह बताया जा सकता है कि ग्राम अथवा गॉव व पुरवा वे स्थान है जहॉ आदिमानव ने अपनी अस्थायी जीवन को स्थायी रूप देना प्रारम्भ किया था। यह वह स्थान है जहॉ सर्वप्रथम कृषि होनी प्रारम्भ हुई क्योंकि कृषि ने मानव को पूर्णतः स्थायित्व प्रदान करने में योगदान दिया है।

डिमॉजियॉ फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं में सर्वप्रथम माने जाते है जिन्होने खेतों, उनके अधिकार, कृषि, घर के प्रकार, भवनों, ग्रामों तथां नगरों के वितरण आदि को अधिवास भूगोल के अध्ययन में शामिल करने का प्रयास किया है। डिमांजियॉ की अध्यक्षता में 1925 में सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ (IGU) द्वारा ग्रामीण अधिवासों पर एक आयोग का गठन किया। बेल्जियम में अधिवास भूगोल के विकास में डिमांजियॉ की शिष्या कु0 लिफेवर ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होने अधिवासों का उद्भव , विकास, वितरण, प्रकार्य, शिल्प कौशल आदि के अध्ययन को महत्वपूर्ण बताते हुए आकृतिक वर्गीकरण (Morphological Classification) पर विशेष बल दिया। फिनलैण्ड में ग्राव एवं नगर के अधिवासों की आकृति तथा अवस्थिति के आधार पर अधिवास प्रदेश में वर्गीकृत किया गया।

इग्लैण्ड में हाउस्टन ने आवासों की संरचना के क्रमबद्ध विश्लेषण विशेषकर स्वरूपों के निर्धारण तथा उत्पत्ति की व्याख्या को अत्याधिक प्रमाणित बताया है। पैट्रिक गिडीज (1915) ने नगरीय अधिवासों के अध्ययन की शुरूआत की। हैगट महोदय ने अधिवासों को प्रभाव तंत्र के जंक्शन पर निर्मित नोड बताकर विषय को एक नवीन आयाम देने का कार्य किया है। वर्तमान समय में यू. एस. ए .में अधिवास भूगोल का एक नये युग की शुरूआत अमेरिका से मानी जाती है। प्रारम्भ में इस प्रक्रिया (Proces) को अधिक महत्व दिया गया जिसमें ईशा वोमैन का अग्र–क्षेत्रों का अध्ययन एक मील का पत्थर साबित हुआ। ट्रिवार्था ने इस अध्ययन क्षेत्र को सीमित कर के केवल गृह प्रकारों तक रखा।

इन्होने अधिवास भूगोल को व्यापक रूप में परिभाषित किया, बताया कि अधिवास एक व्यवस्थित उपनिवेश है जिसमें भवनों और परिवहन मार्गो, सुरक्षा, जल व्यवस्था को सम्मिलित किया जाता है। 1950 में अमेरिका में अधिवास भूगोल के अध्ययन में प्रकार्यात्मक उपागम को महत्व दिया जाने लगा। इसके विकास में भूगोल की अन्य शाखाओं की भॉति खोज, वैज्ञानिकता, सिद्धान्तो, प्रतिमानों का प्रयोग अधिवास भगोल के विभिन्न पक्षो पर किया जाने लगा। वर्तमान समय में कल्याण परक उपागम की लोकप्रियता के साथ–साथ मानव अधिवासो के नियोजन में होने वाली समस्याओं को अधिवास भूगोल के विद्वान ने विशेष ध्यान आकृष्ट किया है।

1.5.1 भारत में अधिवास भूगोल का विकास–

भारत में ग्राम अथवा ग्रामीण क्षेत्र प्रमुख रूप से राजस्व मौजा को शामिल किया जाता है। 1971 की जनगणना पुस्तक के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र मुख्य रूप से राजस्व ग्राम की सीमा को निर्धारित करता है। यह सीमा सर्वेक्षित होती है, जो प्रशासनिक दृष्टिकोण से एक गाँव को दूसरे गाँव से अलग करती है। ग्रामीण अधिवास के रूप में एक या अधिक पुरवे रहती है तथा इसका नगरीकरण भी भिन्न होता है। ग्राम मानव द्वारा बसा हुआ अथवा बिना बसा हुआ वह भूखण्ड जो राजस्व के उद्देश्य से विभाजित होता है।

आधुनिक पद्धति में इसकी शुरूआत 1926 में सुव्रहाण्यम के लेख से मानी जाती है जिसमें ग्रामों का नामकरण, उत्पत्ति, अवस्थिति विन्यास आदि सम्मिलित किया जाता है। एस.एम.अली की प्रसिद्ध पुस्तक 'पुराणो का भूगोल' में अधिवास भूगोल की प्रारम्भिक विकास का उल्लेख मिलता है। आर्थर गिडीज, एम.वी.पीठा वाला ने उपयुक्त आधार प्रस्तुत किया है। 1940–50 के दशक में भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर विभागों में भूगोल के शुरूआत होने पर अधिवास भूगोल के विकास को एक नई दिशा मिली। इसके उपरांत भारतीय विद्वानों ने आपेक्षित योगदान देने में रूचि नही दिखाई क्योकि इसका मुख्य कारण यह था कि इनकी उदासीनता, आंकड़ो के संग्रहण में कठिनाई, अशिक्षा, रूठिवादिता, संचार साधनों में कमी आदि रहे है। राधा कमल मुखर्जी का 'भारतीय समुदाय में आवास के प्रकार' दुबे का 'भारतीय गाँवों का अध्ययन' एक नयी दिशा प्रदान करता है। एस.पी.मुखर्जी के संरक्षण में कलकत्ता स्कूल (1950) आर.एल.सिंह के नेतृत्व में वाराणसी स्कूल (1955) का प्रमुख योगदान रहा। आर.एल.सिंह द्वारा लंदन विश्वविद्यालय में बनारस क्षेत्र के नगरीय भूगोल पर शोध प्रबन्ध के प्रस्तुत किये जाने तथा 'नेशनल ज्योग्राफिकल जर्नल ऑफ इण्डिया' में लेख के प्रकाशन से देश के विभिन्न भागों के अलग–अलग नगरों का अध्ययन क्रिया को बढ़ावा दिया।

प्रो.आर.एल.सिंह ने भारत में भूगोल के काल क्रम में विकास की समीक्षा करते हुए ग्रामीण एवं नगरीय भूगोल के क्षेत्र में शोध का निम्न प्रकार से विवरण दिया इससे अधिवास भूगोल के विकास में रूझान बढ़ने का संकेत मिलता है।

भारत में भूगोल का विकास शोध रचनाओं/लेखो की संख्या

	1950 के पूर्व	1950–60	1960–70	1972–96
ग्रामीण अधिवास	03	12	48	208

नगरीय भूगोल	28	107	105	262
योग	**31**	**119**	**153**	**470**

वर्तमान समय में अधिवास भूगोल के अध्ययनों में प्रकार्यात्मक विशेषताओं, सेवा केन्द्रों, जनसंख्या, सामाजिक तथा आर्थिक नियोजन में अधिवासों का योगदान, आवासीय समस्याओं ग्रामीण विकास आदि पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। सन् 1968 में प्रो.आर.एल.सिंह के अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ के 'मानसून एशिया में ग्रामीण अधिवास' आयोग का अध्यक्ष मनोनीत किये जाने पर वाराणसी स्कूल का ध्यान ग्रामीण अधिवासों की ओर स्थानान्तरित हुआ जिससे ग्रामीण अधिवास भूगोल में नये नूतन शोध ग्रन्थों का प्रकाशन होने लगा। प्रो.एस.पी. चटर्जी की पुस्तक Progress of Geography (1964,68) भारतीय सामाजिक विज्ञान परिषद (ICSSR) के A Survey of Research in Geography तथा ICSSR Journal of Abstract and Revkiew : Geography से समीक्षात्मक लेखो को प्राप्त कर सकते है।

1980 में देश के भूगोलवेत्ताओं की राष्ट्रीय स्तर पर एक परिषद की स्थापना की गई जिसका नाम 'National Association of Geographers of India' रखा गया। यह परिषद प्रतिवर्ष भूगोलवेत्ताओं का एक अधिवेशन आयोजित करती है जिसमें भूगोल की सभी शाखाओं से सम्बन्धित शोध लेख प्रस्तुत किये जाते है।

पुणे की भौगोलिक संस्था Indian Institute of Geography प्रतिवर्ष देश के किसी न किसी नगर में प्रतिवर्ष भौगोलिक गोष्ठियों का आयोजन करती आ रही है। कोलकाता की नाटमो (National Atlas Thematic Map Organisation) हैदराबाद का राष्ट्रीय सुदूर संवेदन संस्थान National Remote Sensing Agency ने इस दिशा में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कराये है। इसमें ग्रामीण अध्ययन के विभिन्न तथ्यों को मानचित्रों की सहायता से प्रस्तुत किया जा रहा है जो कि अधिवास भूगोलवेत्ताओं के लिए मील का पत्थर साबित हो रहा है।

1.6 अधिवास भूगोल का विषय–क्षेत्र

अधिवास भूगोल आज आपनी विकासावस्था में है। इसके क्षेत्र से सम्बन्धित विद्वानों में काफी भ्रान्तियॉ और अन्तर्विरोध देखने को मिलता है। इसका कारण समय के साथ विषय की द्वैतवादी प्रकृति, बदलता हुआ सैद्धान्तिक आधारों के अभाव के कारण है। कुछ विद्वान इसे व्यापक मानते है तथा कुछ इसे संकुचित अर्थो में पारिभाषित करते है। व्यापक अर्थों में ग्रामीण और नगरीय अधिवासों को सम्मिलित करके साथ–साथ अध्ययन क्षेत्र को विस्तृत कर दिया है। संकुचित अर्थो में कुछ विद्वान सिर्फ ग्रामीण अधिवास को ही अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मानते है। स्टोन ने अधिवास भूगोल को जनसंख्या भूगोल का भाग बताकर इस भ्रांति को चरम सीमा तक पहुँचा दिया।

अधिवास मुख्यतः एक सामाजिक संगठन है। अधिवास चाहे छोटा हो या बड़ा इसमें रहने वाले निवासी एक ही प्रकार की उत्पादन विधि पर निर्भर रहते है। यह उत्पादन प्रक्रिया में परस्पर समानान्तर और असंगठित होती है। यह विभिन्न प्रकार की संरचना के आवासों का समूह है जिसमें कार्यो की सुगमता के साथ अन्य रिहाइशी कार्यो को समय के साथ संलग्न किया जाता है। अधिवासों की विशेषताओं जैसे आवास उसकी वास्तु शिल्प, कला, सड़के, अन्य सभी संरचनाओं को आपने ढ़ंग से निर्धारित करता है बल्कि उनके कार्यात्मक सम्बन्ध के साथ–साथ विकास पर भी प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय विभिन्नताओं को मानव समुदाय की आर्थिक व सामाजिक संरचना पर कैसे

प्रमाणित होता है। इसकी भी व्याख्या की जा जाती है। ऐतिहासिक परम्पराओं के सन्दर्भ में अधिवास भूगोल का अन्य शाखओं की आपेक्षा महत्वपूर्ण भूमिकायें है, जिसके अन्तर्गत अधिवासों के क्रमबद्ध और स्थानिक उभय पक्षो का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ग्रामीण अधिवास तथा नगरीय अधिवास इसकी दो प्रमुख अंग है। नगरीय भूगोल का विकास कुल मिलाकर एक सूक्ष्म प्रादेशिक के रूप में हो रहा है जिसके पूरक में ग्राम्य भूगोल शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसके विषय क्षेत्र को निम्न तथ्यों को सम्मलित कर सकते हैं –

1 प्रस्तावना, कार्यविधि, शोध तकनीकी

2 अधिवासों का उद्‌भव और विकास

3 अधिवासों की आकारिकी

4 अधिवासों का स्थानिक प्रतिरूप

5 अधिवासों का प्रकार्यात्मक संघटन

6 अधिवासों का सामाजिक संरचना

7 अधिवासों का वर्गीकरण

8 अधिवासों का नियोजन

इसमें अकारिकीय उपागम के साथ–साथ जननिक और कार्यात्मक विशेषताओं के अध्ययन की प्रधानता है। अधिवास भूगोल में इन विशेषताओं को सम्मिलित करके इसे सामाजिक विज्ञान के रूप में समाज के लिए उपयोगी बनाने का बीड़ा उठाया गया है। विषय क्षेत्र के निर्धारण में क्रमबद्ध उपागम के साथ–साथ ऐतिहासिक एवं प्रादेशिक उपागम को भी सम्मलित करके संवर्धित किया गया है।

1.7 अधिवास भूगोल का भूगोल की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध

भूगोल की अर्न्तप्रशासकीय प्रकृति के कारण अधिवास भूगोल का भूगोल की अन्य शाखाओं के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। इस विषय की उपयोगिता और लोकप्रियता का ज्ञान होता है वही दूसरी तरफ इसकी विषय–वस्तु सम्यक विवेचन हेतु सजातीय प्रशाखाओ से मदद मिलती है। नीचे भूगोल की कुछ शाखाओं के साथ अधिवास भूगोल के सम्बन्ध पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

1. अधिवास भूगोल एवं मानव भूगोल–

प्रो0 राक्सबी (1920) ने मानव भूगोल को चार उप–वर्गों में विभाजित किया जो क्रमशः सजातीय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक में है। 39 सामाजिक भूगोल के अर्न्तगत मुख्यतः जनसंख्या वितरण, ग्रामीण एवं नगरीय अधिवास, शिक्षा, जन स्वास्थ्य, परिवहन संचार आदि विषयों को सम्मिलित किया जाता है। चूँकि अधिवास एक विशिष्ट सामाजिक इकाई और सांस्कृतिक भूदृश्य का प्रमुख अंग है इसके अध्ययन के महत्व के बढ़ने पर अधिवास भूगोल की शाखाओं का विकास हुआ। इसके उपरान्त ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के बसाव, आकारिकी, अधिवास प्रतिरूपों एवं सामाजिक–आर्थिक समस्याओं के अध्ययन पर विशेष बल दिये जाने के कारण अलग ग्रामीण और नगरीय शाखाओं का जन्म हुआ।

2. अधिवास भूगोल एवं भौतिक भूगोल–

किसी भूखण्ड में अधिवासो की अवस्थिति, स्थिति एवं विकास पर उच्चावच, प्राकृतिक ढ़ाल,

आपवाह प्रणाली, मिट्टी की विशेषताओं एवं जलवायु आदि का मुख्यतः प्रभाव पड़ता है जो भौतिक भूगोल के प्रमुख आधार है। यही कारण है कि अधिवास नियोजन में भौतिक भूगोल के तत्वों का विशेष महत्व है। इससे इमारतों के बीच की मजबूती सुदृढ़ता, जल प्रवाह, बाढ़ नियंत्रण, पीने योग्य जल व्यवस्था, परिवहन संचार प्रणाली, प्रदूषण नियंत्रण एवं पर्यावरण प्रबन्धन आदि कार्यो में मदद मिलती है। वास्तव में अधिवासों के समग्र अध्ययन में प्राकृतिक एवं मानवीय पक्षों का विवरण महत्वपूर्ण होता है जिसके सहयोग से ही विभिन्न अधिवासीय समस्याओं का समाधान प्राप्त किया करते है।

3. अधिवास भूगोल एवं ग्रामीण अधिवास/नगरीय अधिवास भूगोल–

किसी अधिवास में रहने वाले लोगो की व्यवसायिक संरचना, अधिवासों की बसाव प्रक्रिया, आकारिकी, प्रतिरूपों तथा प्रकार्यो आदि के आधार पर अधिवासो को ग्रामीण और नगरीय दो भागों में बॉटा जा सकता है। इनके अध्ययन के महत्व के बढ़ने पर ही अधिवास भूगोल में इन दो शाखाओं का विकास संभव हुआ परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ध्वस्त नगरों के पुर्ननिर्माण, तीव्र जनसंख्या वृद्धि, बढ़ते औद्योगीकरण और विकासशील देशों में नगरीकरण की वृद्धि के कारण नगरीय अधिवासों ने भूगोलविदों का सर्वाधिक ध्यान आकृष्ट किया जिससे नगरीय भूगोल की स्वतंत्र शाखा का विकास हुआ जिससे यह अपना अलग अस्तित्व स्थापित किया। यह भौगोलिक अध्ययनों पर इतना अधिक प्रभाव डाल चुका है कि आज अधिवास के बचे कुचे भाग–ग्रामीण बस्ती को ही अधिवास भूगोल का समानार्थी माना जाता है।

4. अधिवास भूगोल एवं जनसंख्या भूगोल–

अधिवास एवं जनसंख्या सांस्कृतिक भूदृश्य के क्रमशः अंग और अंगी के रूप में है जो एक दूसरे को प्रभावित करते हुए मुख्य रूप में एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित है। जहाँ एक तरफ अधिवासन प्रक्रिया, अधिवासों के वितरण प्रतिरूप, आकार, आकारिकी एवं प्रकार्य आदि जनसंख्या की विशेषताओं से प्रभावित होते है। वही दूसरी ओर अधिवास सभी प्रकार की जनगणना परिगणन और नियोजन के आधार पर निर्धारित है। इस प्रकार अधिवासों का नियोजन नीति इनमें निवास करने वाले मानव समूहों के अनुसार ही निर्धारित होती है।

5. अधिवास भूगोल एवं कृषि भूगोल–

कृषि भूमि उपयोग का अधिवास प्रतिरूप पर स्पष्ट प्रभाव देखते है। यही कारण है कि भूमि उपयोग बदलते स्वरूप से अधिवासों का वितरण एवं संरचना स्वतः प्रभावित हो जाती है जिससे अधिवासों के घनत्व, वितरण तथा प्रकार्यात्मक आकारिकी का भूमि उपयोग के प्रकार एवं गहनता पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन दोनों ही प्रशाखाओं के उपगमों में बहुत कुछ समानता पाई जाती है तथा दोनो का ही विकास क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक अध्ययन की शाखाओं के रूप में है।

6. अधिवास भूगोल एवं परिवहन भूगोल–

अधिवास परिवहन मार्गो के मिलन बिन्दुओं पर बसते है। यही कारण है कि परिवहन मार्गो के घनत्व, अभिगम्यता, यातायात प्रवाह तथा परिवहन प्रौद्योगिकी में विकास आदि का अधिवासों के वितरण प्रतिरूप पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस तरह पुराने बसे नये क्षेत्रों में सड़क आदि परिवहन मार्गो से गाँवों एवं छोटे नगरों को जोड़कर आर्थिक विकास को प्रोत्साहित कर सकता है।

7. अधिवास भूगोल एवं सैन्य भूगोल–

अधिवास भौतिक स्थल रूपों की ही भॉति सैन्य विज्ञान में सामरिक महत्व के तत्व माने जाते है। यही कारण है कि योजना बनाने के समय इनके उच्चावच प्रतिरूप, वितरण प्रतिरूप आदि का विशेष

ध्यान रखते है। किसी भी सैनिक कार्यवाही में अधिवास प्रमुख केन्द्र होते है तथा युद्ध काल में इनको पर्याप्त हानि भी होती है।

8. अधिवास भूगोल एवं एतिहासिक भूगोल–

अधिवास भूगोल एवं एतिहासिक भूगोल दोनों ही आपने अध्ययन विधि में जननिक उपागम का उपयोग करते है। इसी तरह किसी क्षेत्र के बसाव प्रक्रिया अधिवासों की उत्पत्ति तथा उनकी आकारिकी आदि की निर्धारण इतिहास के जाने बिना भलीभाँति नही कर सकती है। यही कारण है कि अधिवास भूगोल में स्थान नाम अध्ययनों अधिवास में दूर संवेदी; तकनीकों की प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसी प्रकार ऐतिहासिक अध्ययनों में अधिवास का भी विशिष्ट योगदान होता है। पुरात्वीय उत्खनन में मानव बसाव के क्षेत्रों का विशेष महत्व है और इतिहास को अधिवासों से पर्याप्त साक्ष्य भी प्राप्त होते है जिनके आधार पर अतीत को पुर्नस्थापना करके उसके ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या कर सकते है।

9. अधिवास एवं सामाजिक विज्ञान–

अधिवास केवल मानव–पर्यावरण सम्बन्धों की सरल अभिव्यक्ति ही नही है बल्कि संश्लिष्ट वितरण प्रतिरूप और आकारिकी में मानव–मानव सम्बन्धो की जटिल भूमिका है जिनके स्पष्टीकरण में आर्थिक एवं सामाजिक कारक प्राकृतिक कारकों की तुलना में अधिक सक्रिय एवं व्यवहारिक है। किसी क्षेत्र में अधिवासों की अवस्थिति एवं उनके अन्तरण पर आर्थिक कारकों का प्रभाव है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञान का ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों से बहुत निकट का सम्बन्ध पाया जाता है।

10. अधिवास भूगोल के उपागम–

जिस प्रकार किसी स्थान या उद्देश्य तक पहुँचने के लिए विभिन्न रास्ते और माध्यम होते है उसी प्रकार अधिवास भूगोल में भी विषय–वस्तु के अध्ययन हेतु कई उपागम विधियों का उपयोग किया गया है। इन उपागमों का विकास भूगोल के विकास की लम्बी ऐतिहासिक परम्पराओं तथा बदलती सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के कारण विषय के केन्द्र बिन्दु में होने वाले परिवर्तनों से सम्बद्ध है। मूल रूप से भूगोल के दो प्रमुख उपागम है– (1) क्रमबद्ध (2) प्रादेशिक उपागम । इनका प्रयोग अधिवास भूगोल में आरम्भिक काल से ही होता आ रहा है परन्तु आज जब बदलती सामाजिक विज्ञान के परिवेश में मुख्यतः सामाजिक विज्ञान के विषयों में आपनी उपादेयता प्रमाणित करने की होड़ सी लगी है, भूगोल में भी कई विधाओं का आर्विभाव हुआ है जिन्होने अधिवास भूगोल के अध्ययन को भी प्रभावित किया है। यहाँ अध्ययन की सुविधा हेतु इन उपागमों को निम्न प्रमुख भागो में विभाजित कर सकते हैं।

1.8 (अ) अधिवास भूगोल के उपागम

इसके अर्न्तगत अधिवास की धरातल की एक पूर्ण इकाई के रूप में मानते हुए एक या कई अधिवासों की स्थिति, आकार, आकृति, विकास जनसंख्या विशेषताओं, प्रकार्यो वितरण–प्रतिरूप, क्षेत्रीय सम्बन्धों आदि पक्षो का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इस उपागम के अर्न्तगत अधिवास के सभी घटक एक सूत्र में बंधे रहकर कार्य करते है तथा परस्पर प्रभावित करते है।

1. आकारीय उपागम –

इसके अन्तर्गत अधिवासों का आंतरिक संरचना का अध्ययन किया गया है जो प्राचीन काल से ही अधिवास–अध्ययन का केन्द्र बिन्दु रहा है। दूसरे शब्दों में यह उपागम किसी अधिवास के चार

प्रमुख घटकों – (अ) समांगी क्षेत्र प्रवाह क्षेत्र (स) केन्द्रीय क्षेत्र तथा (द) विशिष्ट क्षेत्र के उद्‌भव विकास कार्य, पारस्परिक सम्बन्ध आदि का अध्ययन करता है। अधिवासी समस्याओं के अध्ययन तथा अधिवास–नियोजन में इस उपागम का विशेष महत्व है।

2. क्रमबद्ध उपागम–

इसमें किसी एक अधिवासी इकाई अथवा किसी क्षेत्र कई अधिवासों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में इसमें किसी अधिवास की उत्पत्ति, विकास, क्षेत्रीय वितरण, आकारिकी, प्रकार्य, परिवहन तंत्र, सामाजिक आर्थिक संरचना अधिवासी समस्याओं तथा निराकरण आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए प्रत्येक अधिवास की आपनी अलग–अलग विशिष्ट समस्याएं भी होती है जिनकी जानकारी केवल क्रमबद्ध उपागम के माध्यम से ही मिल सकती है अतः नियोजन हेतु एवं प्रबंधन यह बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

2. तुलनात्मक प्रादेशिक उपागम –

इसे उपागम श्रेणी में रखा जाता है, जिसमें किसी क्षेत्र अथवा समस्त भूभाग के अधिवासों को एक निकाय/समुदाय मानते हुए उनका एक साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है यह अधिवास भूगोल का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी उपागम है जिससे भौगोलिक सामान्यीकरण में सहायता प्राप्त होती है। जर्मनी के प्रारम्भिक अधिवास भूगोलवेत्ताओं से लेकर वर्तमान तक अधिवास अध्ययनों में इसका भरपूर उपयोग किया है तथा इसी के माध्यम से विभिन्न संकल्पनाओं और सिद्धान्तों के प्रतिपादन का निर्माण होता है।

3. प्रकार्यात्मक उपागम –

इसने अधिवासो के प्रकार्यो के अध्ययन पर जोर दिया जाता है। इसे आधार उपागम भी कहा जाता है जिससे अधिवासों के प्रकार्यो एवं उनकी आंतरिक विषमताओं के बारे में जानकारी होती है। क्योंकि प्रकार्यो का सीधा सम्बन्ध आकारिकी पर पड़ता है। अधिवास भूगोल में यह उपागम एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसका सुविकसित रूप अधिवासों का केन्द्र, केन्द्रों के रूप में परिलक्षित होता है। उस उपागम के विकास का श्रेय क्रिस्टालर महोदय की 'केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त' को जाता है जिसके अनुसार नगर का एक निश्चित सेवा क्षेत्र होता है जिसके माध्यम से उनके कार्यों को एकरूपता प्रदान करता है। केन्द्रीयता मान के अनुसार अधिवासों को विभिन्न पदानुक्रमणीय भागों में विभक्त कर सकते हैं।

4. आगमनिक, आनुभाविक एवं गुणात्मक उपागम –

इस उपागम का मुख्य उद्‌देश्य विभिन्न अधिवासों का व्यवहारिक करना होता है। जिसके आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकाला जाता है। इस उपागम में विश्लेषण की प्रधानता के कारण क्षेत्रों के अध्ययनों पर विशेष महत्व दिया जाता है जिनमें प्राप्त अनुभव को तथ्यों के आधार पर सामान्यीकृत करते है। अधिवास भूगोलविदो का एक बड़ा वर्ग आपने अध्ययनों में इसी उपागम को सम्मिलित करके विशेष महत्व प्रदान करते है।

4. निगमनिक, सैद्धान्तिक एवं परिमाणात्मक उपागम –

यह उपागम आगमनिक के विपरीत निगमनिक या विश्लेषणात्मक विधि पर आधारित होता है, इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सामान्य से विशेष की ओर तार्किक या गणितीय विधि से बढ़ना है अर्थात इसमें कुछ संकल्पनाओं, सिद्धान्तों या आदर्शो को आधार मान कर उन्हे विभिन्न परिवेशों में प्रयोग किया गया है जिनका गणितीय या परिमाणात्मक विश्लेषण कर सामान्यीकरण के सिद्धान्त

निश्चित करते है तथा बाद में इनका परीक्षण करके एक अथवा विभिन्न अधिवासों पर प्रयोग किया जाता है।

इन नवीन उपागमों के अस्तित्व में आने का प्रमुख कारण हाल के वर्षो में, सामाजिक विज्ञान के विषयों में तीव्र तकनीकि विकास का होना है जिसके परिणामस्वरूप भूगोल में भी परिमाणात्मक क्रान्ति की शुरूआत होती है। परिमाणात्मक उपागम का उत्कृष्ट उदाहरण अवस्थिति था इसमें अधिवासों के वितरण के अध्ययन पर बल दिया जाता है जिसमें निकटतम पड़ोसी विधि कोटि आकार नियम नगरों का प्रकार्यात्मक वर्गीकरण नगरों का पदानुक्रम आदि विभिन्न सांख्यिकीय नियमों का प्रयोग किया जाता है।

5. कल्याण परक उपागम –

इस उपागम के विकास का श्रेय मार्क्स के साम्यवाद ने आधारशिला रखी है। जिसके फलस्वरूप 1970 के बाद भूगोलविदों का एक ऐसा वर्ग तैयार हुआ जो परम्परागत सिद्धान्तों, मान्यताओं तथा मूल्यो से हटकर एक नये समाज में सुधारवादी विचारधारा का प्रश्रय देता है। इसके अनुसार किसी समस्या का समाधान सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करके किया जा सकता है। अधिवास भूगोल के संदर्भ में इससे नगरीय मलिन बस्तियों, नगरीय, सामाजिक आर्थिक समस्यओं आदि के अध्ययन का मार्ग अधिवास भूगोल में एक नयी दिशा प्रदान करता है।

5. पारिस्थितिक उपागम –

भूगोल में मानव पर्यावरण सम्बन्ध सदा से ही भूगोल के अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु रहा है जिसके विकास में जर्मन विद्वान रैटजेल फ्रांस के ब्लाश तथा अमेरिका का सेम्पुल आदि विद्वानों का योगदान रहा है जिसमें वैज्ञानिकता का समावेश होता है। उसे वैज्ञानिक आधार देने में योगदान है जिन्होने भूगोल को एक मानव पारिस्थितिकी के रूप बताया। इसी के आधार पर स्टोडर्ड (1965) ने भूगोल में जैविक परिस्थितिकी अवधारणाओं संकल्पनाओं में पारिस्थितिक उपागम के अर्न्तगत मानव अधिवास को पारिस्थितिक तंत्र को सरल बनाने के लिए समूची अधिवासन की प्रक्रिया में वैज्ञानिकता का योगदान है। मानव बसाव के कारण न केवल प्राकृतिक भूदृश्य में आमूलचूल पविर्तन होता है बल्कि अन्धाधुन्ध नगरीकरएा एवं औद्योगीकरण से पारिस्थितिक सन्तुलन में व्यवधान शुरू हो जाता है। इसे वैज्ञानिक नियोजन पर्यावरण व्यवस्थापन एवं पर्यावरण बोध आदि के माध्यम से संतुलित कर अधिवासन प्रक्रिया एवं पारिस्थितिक तंत्र के बीच में संतुलन बनाया जा सकता है।

6. व्यवहार परक उपागम –

यह बस्ती भूगोल का एक नवीन उपागम है जिसमें मानव गुणों का अनुमान उसके सामाजिक एवं आर्थिक एवं नैतिक मूल्यों के संदर्भो में किया जाता है। इसमें ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों की स्थिति, संरचना, अभिन्यास प्रतिरूप अकारिकी कार्य आदि पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। अतः किसी ग्रामीण या नगरीय बस्ती के नियोजन में उसमें निवास करने वाले लोगों की अभिरूचियों, आदतों, आवश्यकताओं, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों आदि पर ध्यान देना एवं उसके अनुसार कार्य योजना पर अमल करना महत्वपूर्ण होता है।

1.9 अधिवास भूगोल की प्रविधियाँ एवं उपकरण

भूगोल की अन्य शाखाओं की तरह अधिवास भूगोल के अध्ययन में विभिन्न प्रविधियों एवं

उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इन्हे मुख्यतः तीन वर्गो में समाहित किया जाता सकता है जो इस प्रकार है–

1. निरक्षणात्मक प्रविधियॉ एवं उपकरण –

इस प्रकार की प्रविधियों में क्षेत्र–कार्य को विशेष योगदान होता है। जिसकी सहायता से अभीष्ट आँकड़ो का संग्रह, परिशोधन एवं विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले जाते है जो विभिन्न अवधारणाओं एवं संकल्पनाओं के आधार बनते है। ऑकड़ो के संग्रह में विशेषताओं के आधार पर इसमें विभिन्न प्रतिचयन की विधियों का भी प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार प्रश्नावली साक्षात्कार, सर्वेक्षण आदि परम्परागत तरीकों के साथ–साथ ऑकड़ों के संग्रह में हवाई छायाचित्रों तथा दूर संवेदी तकनीक का भी उपयोग किया गया है जिसमें कम समय में अधिक विश्वसनीय ऑकड़ों का एकत्र किया जाता है।

2.वर्णनात्मक प्रविधियॉ उपकरण –

इस प्रकार की प्रविधियों मे विभिन्न प्रकार की मानचित्रीय विधियों को सम्मिलित किया है। इसमें मानचित्रों, रेखाचित्रों, आरेखों, लेखाचित्रों, आदि का उपयोग किया जाता है। मात्रात्मक क्रान्ति के बाद इसमें अब उच्च सांख्यिकीय तकनीकों और गणितीय प्रतिमानों का भी प्रयोग होने लगा है। वर्तमान समय में कम्प्यूटर मानचित्रण की लोकप्रियता भी बढ़ रही है।

3.विश्लेषणात्मक प्रविधियाँ एवं उपकरण –

अधिवास भूगोल में इन प्रविधियों का पहले से ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिसके माध्यम से समान्यीकरण कर विभिन्न सिद्धान्तों एवं संकल्पनाओं का आधार तैयार होता है। सम्भाव्यता सांख्यिकीय परीक्षण तथा कम्प्यूटर जैसे आधुनिकतम उपकरणों के उपयोग से अब विश्लेषण एवं व्याख्या करना आसान होता जा रहा है परिणामस्वरूप अब बड़े से बड़े समुदाय से सम्बन्धित ऑकड़ो का आसानी से प्रस्तुत कर सकते हैं। तथा उनका मूल्यांकन कर उन्हें पूर्ण शुद्धता के आधार पर एकीकृत या अस्वीकृत किया जा सकता है। इन वैज्ञानिक तकनीकों के द्वारा न केवल अतीत की अधिवासन प्रक्रिया को सरल बनाया जा सकता है। वरन् भावी विकास की ओर दिशा एवं दशा का भी पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

1.10 सारांश

आपने इस इकाई में अधिवास भूगोल की परिभाषा विकास, विषय क्षेत्र अध्ययन किया है। आप समझ गये होगें कि अधिवास शब्द का अभिप्राय एक पुरवा से लेकर विशाल महागर आपना उसे बसाव के क्षेत्र में मकान की एक दीवार से लेकर बहुमंजिला इमारतों का निर्माण का कार्य सम्मिलित होते हैं। जिसमें लोग रहते हैं कार्य करते हैं वस्तुएं संग्रह करते हैं और उसका प्रयोग करते हैं। वास्तव में अधिवास मानव एवं सांस्कृतिक भूगोल के लिए उतना ही महत्वपूर्ण तत्व है जितना भौतिक भूगोल के लिए स्थलरूप के लिए परिभाषित होता है।

आप इस इकाई के अध्ययन से अधिवासों के अध्ययन की उपयोगिता को अच्छी तरह से समझा हैं। आपने यह भी जाना कि विभिन्न विद्वानों के अपनी परिभाषाओं में मानव अपने आवास का निर्माण अपनी आवश्यकताओं एवं अपने कार्य के आधार पर विकसित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। अपने देखा कि अधिवास भूगोल के विकास में विभिन्न देशों के विद्वानों ने तथा भारतीय विद्वानों ने स्थान, कार्य, बसाव एवं परिवेश को ध्यान में रखकर क्रमबद्ध रूप में इसको पुष्पित पल्लवित किया है।

1.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. अधिवास भूगोल का जन्मदाता किसे कहा जाता है?

   (अ) ब्लाश (ब) रिटर (स) हम्बोल्ट (द) स्ट्रैवो

2. अधिवास भूगोल मानवीय मूल्यों के भौगोलिक पदानुक्रम में प्रमुख स्थान दिया।

   (अ) रैटजेल (ब) ट्रिवार्था (स) ब्रून्स (द) डिमांजिया

3. अधिवास पर प्रथम ग्रन्थ 'सन्दर्भ सूची' किसने लिखी–

   (अ) एस.पी. चटर्जी (ब) आर.सी. तिवारी (स) . आर.एल. सिंह

   (द) गोसाल

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69

2. Singh R.L. et al (1976): Geographic Dimensions of Rural Settlements(Varanasi : N.9 S.7)

3- Demange on, A (1920) : Habitation Rural France, Annals de Geography ie. Vo1. 29. PP-352-375.

4. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज

5- करन, एम0पी0,ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर

6. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज

7. सुरेश चन्द्र बंसल नगरीय भूगोल किताब महल कानपुर

1.13 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न–1 भूगोल को परिभाषित करते हुए अधिवास भूगोल की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?

प्रश्न–2 अधिवास भूगोल से आप क्या अभिप्राय है? विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं की समीक्षा कीजिए?

आदर्श उत्तर :

1. द 2. स 3. द 4. अ

इकाई–2 अधिवासों का वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 अधिवासों का वर्गीकरण

- 2.2.1 संस्थति एवं स्थिति
- 2.2.2 आकार
- 2.2.3 आकृति
- 2.2.4 कार्य
- 2.2.5 उत्पत्ति
- 2.2.6 आर्थिक विकास
- 2.2.7 नियोजन
- 2.2.8 व्यवसाय

2.3 अधिवास वर्गीकरण का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.4 अधिवास वर्गीकरण की विधियाँ

- 2.4.1 गुणात्मक विधियाँ
- 2.4.2 मात्रात्मक विधियाँ

2.5 अधिवासों का चिरसम्मत वर्गीकरण

2.6 ग्रामीण अधिवासों के प्रकार

2.7 नगरीय अधिवासों के प्रकार

2.8 आकृतिक वर्गीकरण

2.9 सारांश

2.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

2.11 सन्दर्भ सूची

2.12 अभ्यास प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

आवासों में रहने वाले लोगों की व्यवसायिक संरचना, अधिवासों के निर्माण की प्रक्रिया, अकारिकी, प्रतिरूपों तथा कार्यों आदि के आधार पर अधिवासों को विभाजित करते है। अर्थात् किसी भी वस्तु के वैज्ञानिक व्याख्यान हेतु उसका वर्गीकरण जरूरी है। वर्गीकरण के माध्यम से हम किसी

वस्तु को छोटे–छोटे भागो में अध्ययन कर के उसके सम्पूर्णता का विवेचन प्रस्तुत कर सकते हैं, क्योकि संकल्पनाओं तथा सिद्धान्तों के निर्माण में यह बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। वर्गीकरण के अन्तर्गत समान विशेषताओं और सम्बन्धों को आधार मानते हुए वस्तुओं एवं घटनाओं को विभिन्न भागें में प्रस्तुत कर सकते है। वर्गीकरण की सामान्य दो विधियॉ हैं–

1 एक विशेषता के आधार पर एकल आधारीय

2 कई विशेषताओं के आधार पर बहु आधारित।

अधिवासों के प्रसार एवं विश्लेषण, वर्गीकरण का विशेष योगदान है। जिसमें मुख्यतः बहु आधारीय विधियों का प्रयोग किया है।

2.1 उद्देश्य

यह अधिवास भूगोल की द्वितीय इकाई है इसको पढ़ने के बाद आप–

क. अधिवास के वर्गीकरण में किन आधारों का प्रयोग किया गया है आप समझ सकेगें।

ख. ग्रामीण अधिवास के बारे में आप ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

ग. नगरीय अधिवास को समझ सकेगें।

घ. ग्रामीण तथा नगरीय अधिवासों के वर्गीकरण को भलीभाँति जान जायेगें।

2.2 अधिवास वर्गीकरण के आधार

सॉस्कृतिक भूदृश्य के प्रमुख तत्व जो इनकी विशेषताओं को केन्द्रित करता है, इन विशेषताओं में पर्याप्त भिन्नता भी मिलती है। इसी आधार पर अधिवासों को विभिन्न भागो में बॉटा जाता है, जो इस प्रकार है–

2.2.1. संस्थति एवं स्थिति–

अधिवासों की स्थिति कहाँ है क्यों है अथवा उसकी धरातलीय विशेषताऐं किस प्रकार की है, इसी कारण के आधार पर उन्हें मैदानी, पर्वतीय, पठारी, वनस्थलीय, सागर तटीय, परिवहन मार्गों आदि कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। सूक्ष्म विभाजन हेतु पर्वतीय अधिवासों को अन्तःपर्वतीय, गिरपदीय, सागर तटीय अधिवासों को महाद्वीपीय, तटीय, प्रायद्वीपीय, द्वीपीय तथा नदी तटीय अधिवासों को मेसोपोटामियन, संगम अधिवास, प्रपात अधिवास, डेल्टा अधिवास, वेंदिका अधिवास आदि उपवर्गों में बॉट सकते है।

2.2.2 आकार–

इसमें अधिवासों के इमारती क्षेत्रीय आकार, कुल जनसंख्या आदि को अलग एवं समूह के आधार पर प्रयोग किया जाता है। उदाहरण 1 वर्ग किलोमीटर से कम क्षेत्रीय आकार वाले अधिवास, 1 हेक्टेयर से कम इमारती क्षेत्र वाले अधिवास, 5000–9999 जनसंख्या वाले नगरीय अधिवास आदि आकारों के निर्धारण की भूमिका में होते है।

2.2.3 आकृति –

इसमें उनके बसाव क्षेत्र की तुलना ज्यामितीय तथा अन्य आकृतियों के आधार पर वर्गीकृत करते है। जैसे आयताकार प्रतिरूप, वर्गाकार, अर्द्ध वृत्ताकार, त्रिभुजाकार, वृत्ताकार, अण्डाकार प्रतिरूप में

अधिवासो के बसाव की प्रक्रिया निर्धारित करते है।

2.2.4 कार्य –

इसके अन्तर्गत अधिवासों का वह कार्य जिसके उपयोग के कारण वह जाना जाता उसे ही वर्गीकरण का आधार मानते है, जैसे–आवासीय, प्रशासनिक, शैक्षणिक, मनोरंजनन, सॉस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, सैन्य आदि।

2.2.5 उत्पत्ति –

इसमें अधिवासों की उत्पत्ति, विकास, आयु की गत्यात्मकता आदि के अनुसार प्राचीन काल से लेकर आज तक अधिवासों को स्थान, समय के सातत्य के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँट सकते हैं। उदाहरण प्रागैतिहासिक अधिवास, आर्य कालीन अधिवास, राजपूतकालीन आवास, मध्यकालीन एवं आधुनिक अधिवास इत्यादि। अधिवासों की विकास अवस्था को मानव की लालसा के आधार पर उन्हें शिशु, बालक किशोर प्रौढ़, जीर्ण उजाड़ अधिवास आदि वर्गों में विभाजित कर सकते है।

2.2.6 आर्थिक विकास–

अधिवास का आर्थिक विकास उसमें रहने वाले लोगों से जुडा होता है। अतः इसके वर्गीकरण में विभिन्न आर्थिक विकास के द्वारा उपयोग किया जाता है। इन्ही विशेषताओं के समन्वित योग से अधिवासों को विकसित, अल्प विकसित विकासशील आदि अनेक रूपों में विभाजित कर सकते है।

2.2.7 नियोजन–

नियोजन के आधार पर अधिवासों को नियोजित, अर्द्ध नियोजित या अनियोजित आदि वर्गों में वर्गीकृत कर सकते है।

2.2.8 व्यवसाय–

इसके अधिवासों में लोगों की मूलभूत आवश्यकता जीवन निर्वाहक व्यवसायों के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। मुख्यतः जहाँ पर अधिकांश लोग प्राथमिक कार्यों में लगे होते हैं उन्हें ग्रामीण तथा जहाँ द्वितीयक–तृतीयक, चतुर्थक कार्यों में अधिकतर लोग लगे रहते हैं उन्हें नगरीय अधिवास की संज्ञा दी जाती है। ग्रामीण–नगरीय अधिवासों के आकार–प्रकार, रहन–सहन, कार्य, संरचना, भूदृश्य, जनसंख्या, घनत्व निवासियों की सामाजिकता एवं उनकी मनोदशा आदि में साफ अन्तर देखा जाता है।

2.3 अधिवास वर्गीकरण का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अधिवास भूगोल के उत्थान में विषय का केन्द्र बिन्दु में जो परिवर्तन होता है उसी से अधिवासों के वर्गीकरण के मानकों एवं क्रियाकलापों में भी परिवर्तन होता है। यही कारण है कि अधिवासों के प्रकार्यों को विशेष महत्व दिया गया है तो जिससे आकारिकी अथवा उनके स्थायित्व को वर्गीकरण में प्रमुख स्थान दिया जाता है।

परिवर्तन की इस प्रक्रिया को समझाने हेतु इसे निम्न चार वर्गीकरण का उपयोग इस प्रकार है–

अधिवासों के निर्धारण में रिचथोपेन निम्न, मध्म एवं उच्च स्तरों तथा अस्थाई एवं स्थायी दो प्रमुख वर्गों तथा कई उपवर्गों में विभाजित किया है, रिचथोपेन उन अधिवासों को स्थायी माना है जहाँ लोग एक स्थान पर स्थायी तौर पर निवास स्थान का निर्माण करते है।

अधिवासों के प्रकार : रिचथोपेन

स्तर	अस्थाई वोडनबेज	स्थायी बोडने स्टैण्डिंग
निम्न कृषक	गैर विशिष्ट आखेटक एवं विशिष्ट	विशिष्ट मधु आरे समारेख कुदाल
मध्यम	विशिष्ट आखेटक, रेनडियर	संशिलस्ट कुदाल कृषक
उच्च	परिवहन बंजारे	द्यान कृषक सिंचन कृषक, उर्वरक
उपयोगिता	अन्य बंजारे	कृषक

रिचथोपेन ने भौतिक परिवेश में मानव द्वारा प्रयोग के आधार पर गुफाओं, वृक्षों एवं तम्बुओं को अस्थायी तथा झोपड़ियों, गृहों एवं वृहत इमारत को स्थायी अधिवासों की श्रेणी सम्मलित किया है। इसका आधार यह भी होता है कि आवास विशेष कितने समय तक उस स्थान पर स्थिर रहता है। इन्होंने मानवीय साक्ष्यों के आधार पर बताने का प्रयास किया है कि कोई अधिवास चलायमान है अथवा स्थायी। इसी प्रकार इन्होंने जलवायु तथा मृदा दशाओं के सम्बन्ध अधिवास प्रकारों के साथ सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास किया है।

मूलर–बिले ने स्थायित्व की अवस्था के आधार पर अधिवासों को अल्पसमय 1–7 दिन अस्थायी, 8–30 दिन, मौसमी कई महीने, अर्द्ध स्थायी– कई वर्ष, एवं स्थायी कई पीढ़ियों तक 5 प्रमुख वर्गों में प्रस्तुत किया है। प्रत्येक वर्ग के उप विभाजन है जिसमें गृह प्रकार, समय अनुक्रम अधिवासी तथा प्रकार्यों का प्रयोग किया जाता है।

ऊहलिंग एवं **लीनाऊ** ने स्थायी अधिवासों को 7 प्रमुख वर्गो में विभाजित किया है। जिसकी प्रमुख विशेषताऐं सेवा कार्यों, उनके प्रकारों एवं संस्था पर निर्भर करती है। इसकी जिसमें अनेकानेक प्रदेश स्तरीय सेवाओं से सम्पन्न अति नगरीय अधिवासों से लेकर कुछ स्थानीय सेवाओं को प्रदान करने वाले लघु अधिवासों अथवा सेवा वाले अधिवासों कों सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार ग्रामीण तथा नगरीय अधिवासों के बीच सहसम्बन्धों के अन्तर एवं सूक्ष्म प्रकाश डाला गया है।

डॉक्सियार्डस महोदय ने अधिवासीय इकाइयों, तत्वों, कार्यों एवं कारकों के आधार पर अधिवासों का एक वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध वर्गीकरण प्रस्तुत किया हैं। अधिवास भौगोलिक इकाई सम्बन्ध हैं। अधिवासी लघु गणकीय पैमाने पर एक मनुष्य, कमरा, गृह, नगला से लेकर समूची अधिवासित धरा को 15 अधिवासी इकाइयों में विभाजित करते हुए इन्हें पुनः चार बड़े भागों में समात्कि किया है–

1. छोटे अधिवास– इसके अन्तर्गत मानव, नगला, गाँव, कस्बा
2. साधारण अधिवास– इसमें कस्बा से लेकर बम्बई जैसे महानगर
3. वृहदाकार अधिवास– इसके अन्तर्गत जिसकी वृहतम इकाई समूची अधिवास पृथ्वी है।

2.4 अधिवास वर्गीकरण की विधियाँ

इसके वर्गीकरण की मुख्यतः दो विधियों का उपयोग किया गया है–

2.4.1 गुणात्मक विधियाँ–

इन विधियों का उपयोग अधिवास भूगोल के विकास की आरम्भिक अवस्था से किया जा रहा है। लेकिन गुणात्मक विधियों से अधिवासों के परिशुद्धीकरण में कठिनाई होती है, इसके बावजूद भूगोल के अध्ययन में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। वर्तमान में अधिवासों की विशेषताओं के अध्ययन में इनका बहुत प्रयोग होता है। अधिवासों को आयताकार, वर्गाकार, त्रिभुजाकार, वृत्ताकार, यू आकार, एल स्वरूप, टी स्वरूप या अनाकार आदि वर्गो का विभाजन इसी प्रकार के उदहारण है। जिससे आयत वर्ग वृत्त या त्रिभुज की आकृति के निर्धारण हेतु गणितीय सूत्रों की आपेक्षा अनुमान एवं अंदाज का प्रयोग किया जाता रहा है। आज भी ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों के बीच की विभाजक रेखा इसी गुणात्मक आकलनों पर आधारित है। तभी तो इनके बीच एक विभाजक रेखा को सही तौर पर विभाजन करना एक दुरूह कार्य है।

2.4.2 मात्रात्मक विधियाँ–

वर्तमान सदी के उत्तरार्द्ध में भूगोल पर मात्रात्मक क्रान्ति का प्रभाव रहा। जिसमें गणितीय विधियों का प्रयोग भूगोल के विश्लेषण में इसे अधिक प्रयोग करने का प्रयास किया गया। अधिवास भूगोल में भी इस क्रान्ति के प्रभाव से प्रभावित हुआ। यही कारण है कि अधिवासों के वर्गीकरण में इन विधियों का आज अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है। अधिवासों के आकार एवं सेवा केन्द्र के निर्धारण में तथा वर्गीकरण में इनका प्रयोग कर इसकी एक नयी दिशा मिल रही है। निरन्तर शोधों से इनमें दिनों दिन निखार भी होता रहा है। वर्तमान समय, प्रकीर्णन, वितरण, पदानुक्रमण, कार्यात्मक वर्गीकरण, नगरीय सीमान्त निर्धारण, सेवा केन्द्रों के चयन अधिवास नियोजन में विभिन्न गणितीय एवं सांख्यिकीय तकनीकों एवं प्रतिमानों का प्रयोग करके इसे बडी उपयोगी बनाया जा रहा है।

2.5 अधिवासों का प्राचीन वर्गीकरण

अधिवासों के चिर सम्मत वर्गीकरण के आधार पर इन्हें हम ग्रामीण तथा नगरीय वर्गों में बाँटते हैं। यह वर्गीकरण मुख्यतः अधिवासों में निवास करने वालों के प्रकार्य की किस्मों पर आधारित है। अर्थात, प्राथमिक कार्यों में अधिकांश लोग कार्य में लगे हो, उन्हें ग्रामीण तथा जहॉ द्वितीयक, तृतीयक अथवा चतुर्थक कार्यों में अधिकांश लोग लगे हों उन्हें नगरीय अधिवास कहा जाता है। परन्तु वास्तविक ग्राम और नगर के बीच में विभाजक रेखा खींचना एक दुरूहः कार्य है। दोनों की विशेषताएँ अधिकांश रूप में एक दूसरे में दिखाई देती है। विश्व में शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र नही है जिसे पूर्णता ग्रामीण कहा जाए। वास्तव में ग्रामीण और नागरिक जीवन के रहन–सहन में अन्तर किसी एक बात का परिणाम न होकर कई मिले जुले कारणों का परिणाम होता है। सोरीकिन और जीमरमैन ने माना है कि किसी एक आधार पर ग्राम और नगर में अन्तर करने पर अनेक विसंगतियों, प्रतिकूल अनिश्चिताओं की समस्या उत्पन्न होने की प्रबल संभावना होती है। वास्तव में गॉव एवं शहर अधिवासों के विकास की सतत प्रक्रिया की दो प्रमुख अवस्था होती है जिनके आकार, प्रकार, कार्य, संरचना, भूदृश्य, जनसंख्या घनत्व एवं सामाजिक विशेषताओं में भिन्नता होने के साथ–साथ आपस में एक दूसरे को प्रभावित करते है। यही कारण है कि अधिवास भूगोलविदों का एक विशिष्ट वर्ग ग्रामीण, नगरीय विभेद के स्थान पर सातत्यता की बात करता है।

ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों के बीच भिन्नता को प्रमुख विशेषताओं के आधार पर बाँटा जा

सकता है।

1. व्यवसाय–

ग्रामीण एवम नगरीय अधिवास में रहने वालो ं मे कार्यो के आधार पर स्पष्ट भेद पाया जाता है। ग्रामीण अधिवासों में प्राथमिक व्यवसायों–कृषि पशुपालन, मत्स्य पालन, बागवानी, खनन कार्य आदि की प्रधानता है। विशेषकर कृषि और ग्रामीण तो एक सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। इसके विपरीत नगरीय अधिवासों में द्वितीयक, तृतीयक, चतुर्थक व्यवसायों के आधार पर निर्धारित है। बड़े–बड़े कल कारखाने, गोदाम, बाजार, तीव्र यातायात एवं परिवहन के साधन नगरीय अधिवासों की प्रमुख विशेषताएं हैं। एक से प्राथमिक व्यवसाय के कारण जहाँ नगरीय अधिवासों में विभिन्न व्यवसायिक कार्यों के समूहन के कारण संरचना में जटिलता है। ग्रामीण अधिवास मुख्यतः स्वपोषी होते हैं जबकि नगरों का अस्तित्व समीपवर्ती क्षेत्रों को माल और सेवाओं की आपूर्ति से जुड़ा होता है।

2. भूमि उपयोग–

ग्रामीण और नगरीय अधिवासों के भूमि उपयोग में भी स्पष्ट अन्तर दिखाई पडता है। कृषि पशुपालन में भूमि की अधिक आवश्यकता होती है लेकिन इसका प्रयोग कम होता है तथा भूमि का प्रतिशत कम होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बस्तियों का अधिक क्षैतिजी विस्तार देखा जाता है जिसकी कार्यात्मक अकारिकीय बहुत सरल होती है। नगरीय क्षेत्रों में भूमि का गहन उपयोग होता है जिसमें छोटे कमरे में दुकान या कार्यालय खोलकर लाखों रूपये की प्रतिमाह कमाते है। भूमि की कमी के कारण नगर के आवासो का लम्बवत विस्तार अत्यधिक बढ़ता जा रहा है।

3. जनसंख्या का घनत्व–

ग्रामीण क्षेत्रों में खेत, खलिहान, बाग, बगीचों आदि के रूप में विस्तृत खाली क्षेत्रों तथा इमारतों के क्षैतिज फैलाव के कारण जनसंख्या घनत्व कम पाया जाता है। इसके विपरीत नगरों में विस्तृत खुले क्षेत्रों की कमी है तथा इमारतों के लम्बवत विस्तार के कारण जनसंख्या का घनत्व अधिकांशतः सघन पाया जाता है। विकासशील देशों में रोजगार तथा जीवन निर्वाहक सुविधाओं के अभाव में गाँवों से जनसंख्या का पलायन हो रहा है जबकि नगरों में जनसकुलता बढ़ती जा रही है। नगरों में मलिन बस्तियों का अविर्भाव हुआ। तीव्र गति से चलने वाले वाहनों, कल कारखानों, दुकानों आदि के कारण समूचा नगरीय पर्यावरण एवं मानसिक तनाव को बढ़ाने वाला होता है। भौतिक सुखों के अत्यधिक लालसा, तकनीकी जीवन, उदान्त मानवीय गुणों पर्यावरण शान्त, स्वच्छ पर्यावरण एवं स्फूर्तिदायक एवं प्रसन्नचित वाला होता है।

6. सॉस्कृतिक–आर्थिक विकास–

ग्रामीण एवं नगरीय अधिवास सांस्कृतिक–आर्थिक विकास के दो महत्वपूर्ण कारक होते हैं। वर्तमान समय नगरीयकरण को सांस्कृतिक–आर्थिक विकास के मानको के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। जो समुदाय उस क्षेत्र में जितना ही उन्नत एवं विकसित है उस क्षेत्र मे नगरीय अधिवास की मात्रा उतनी ही अधिक है। कई पश्चिमी देशों में तो शत–प्रतिशत नगरीय अधिवास हैं तथा अधिकांश विकसित देशों के ग्रामीण अधिवास उन सभी सुविधाओं से सम्पन्न है जिनका विकाशील देशों के अधिकांश छोटे शहरों में भी अभाव पाया जाता है। कुल मिलाकर नगरत्व मानव विकास के उत्कृष्टतम सांस्कृतिक स्तर के नये प्रतिमान को प्रतिस्थापित करता है।

2.6 ग्रामीण अधिवासों के प्रकार

ग्रामीण अधिवासों को हम निम्न भागों में बांट सकते है, जिसमें अवस्थिति, आकार, आकारिकी, कार्य, वितरण प्रतिरूप के आधार पर करते है। जैसे –

1. खेतघर–

ग्रामीण क्षेत्र का सबसे छोटा, प्राथमिक रूप क्षेत्रघर के नाम से जानते है। इसकी स्थिति ग्रामीण अंचलों में खेत एवं खलिहान के मध्य एक अथवा दो कमरों के मकानों के रूप में जानते है। यहाँ सिंचाई, कृषियंत्र, पशुओं के बाडे एवं खाद्यान्नों, बीजों खादों आदि को संग्रहित करने की सुविधा पाई जाती है। भारत के गंगा के मैदानी क्षेत्र में जोतों का आकार एवं सिंचाई के निजी साधनों के विकास के कारण पिछले कई दशकों में ऐसे अनेकों खेतधरों का विकास देखते है। मुख्य गाँव में बसे परिवार से दूर एक दो व्यक्ति रात्रि में निवास करते हैं। जिनका उद्देश्य कृषि यंत्रों एवं कृषि उत्पादों की सुरक्षा के साथ–साथ फसलों की निगरानी करना होता है। इन खेतधरों का वर्तमान कृषि विकास में अधिक योगदान है।

2. पुरवा या नगला–

इसका अभिप्राय लघु गाँव से है यह आवासों का एक ऐसा समूह होता हैं जो सामाजिक आर्थिक तौर पर मुख्य गाँव से जुड़ा होता है। यूरोप में (हैमलेट) नगला एक ऐसे लघु अधिवास को प्रदर्शित करता है जिसमें गिरजाघर नहीं होता है तथा जो दूसरे गाँव के पेरिस का भाग होता है। यू0एस0एस0 में पुरवा कम से कम पॉच इमारतों का समूह होता है जो लगभग आधा किलो मी0 के क्षेत्र में स्थिति होती हैं। इनमें से चार का उपयोग आवास तथा एक का उपयोग खुदरा दुकान के रूप में होता है। भारत में नगला या पुरवा राजस्व गाँव की सीमा के अन्तर्गत स्थित एक लघु आवास है जिसका विकास मुख्य वास क्षेत्र के उदविकास से होता है अथवा बाद में आकार बढ़ने के कारण आवासो की संख्या बढ़ जाती है। पुरवों का बसाव जमीन्दारी प्रथा के अन्तर्गत जातिगत आधार पर भी किया गया है जो भूमि स्वामियों को श्रम की आपूर्ति एवं सेवायें प्रदान करते थे। जैसे चमरौटी, पसियान, अहिरान, कोहरान, लोहारन, धोबियान, ठकुरान, बभनान इत्यादि। ये पुरवे भौतिक रूप में गाँव के मुख्य वास क्षेत्र से पृथक होते हुए भी सामाजिक सांस्कृतिक रूप से जुड़े होते हैं। इनकी संख्या 1 से लेकर 30 या इससे अधिक हो सकती है।

3. ग्राम –

गाँव एक सुसंगठित अधिवास है जिसके निवासियों में सामाजिक–सांस्कृतिक सम्बन्धों के रूप में आबद्ध होते हैं। प्राचीनकाल में ग्राम एक सामूहिक अधिवास का उदाहरण है। जिसमें निवास करने वाले परिवारों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व ग्राम के मुखिया का होता था। ब्लाश के अनुसार ''गाँव परिवार या वंश से बड़े समुदाय का प्रतीक है।'' **ब्रूंश के अनुसार–** गाँव शब्द का उपयोग ऐसे भौगोलिक तथ्य हेतु हेाता है जो मकानों एवं निवासियों के अति संकुल समूहन से बना होता है। **प्रो0 आर.एन.मुखर्जी के अनुसार**–'ग्राम वह समुदाय है जहाँ आपेक्षतया अधिक समांगता अनौपचारिकता प्राथमिक समूहों की प्रधानता जनसंख्या का कम घनत्व तथा कृषि प्रमुख व्यवसाय के रूप में पाया जाता है।'

ग्राम वास्तव में वे स्थल हैं जहाँ आदिमानव ने सर्वप्रथम आपने स्थायी जीवन की शुरूआत की थी अथवा जहाँ से सर्वप्रथम कृषि कर्म और पशुपालन का प्रारम्भ किया। **गेलेस्की के अनुसार–** ''गाँव केवल एक खेतों का समूह ही नहीं है बल्कि इसका एक निश्चित सामाजिक अस्तित्व है। एक गाँव

की क्षेत्रीय नृजातीय और सांस्कृतिक विशेषताएं होती है। जो इसके अस्तित्व को बताती है।'' भारतीय जनगणना की परिभाषा के अनुसार ग्राम एक प्रशासनिक इकाई है जो ऐसे भूखण्ड को प्रदर्शित करता है जिसकी सीमाओं का निर्धारण राजस्व सर्वेक्षण या भूकर सर्वेक्षण द्वारा किया जाता है। कभी–कभी राजस्व गाँव में एक भी मकान नहीं पाया जाता है। ऐसे गाँव को 'नाजिराजी' या 'वेचिरागी' कहते हैं। खास गाँव वं उसके चातुर्दिक स्थित पुरवे भौतिक रूप से पृथक होते हुए भी सामाजिक–आर्थिक तौर पर एक दूसरे से आबद्ध होते हैं। गाँव के सामान्य प्रशासन एवं विकास में गाँव सभा का सहयोग होता है जिसके सदस्यों का चुनाव मतदान के द्वारा किया जाता है।

बसाव प्रतिरूप तथा आन्तरिक संरचना के आधार पर ग्राम मुख्यतः तीन प्रकार में बाँटे जाते हैं–

क) सघन या ठोस ख) अर्द्धसघन या संयुक्त ग) आपखण्डित मीत्जन ने गाँव को केन्द्रित और विकीर्ण दो भागों में बॉटा गया है। हेराल्ड पील ने तीन प्रकार– प्रवासी कृषक गाँव, अर्द्धस्थायी कृषक गाँव एवं स्थायी कृषक गाँव के रूप बताया है।

2.7 नगरीय अधिवासों के प्रकार

नगरीय अधिवासों को उनके आकार, विस्तार, आन्तरिक संगठन एवं समूहन आदि की दृष्टि से निम्न उप विभाग किये जा सकते हैं।

1. नगरीय गाँव–

इन्हें अर्द्धनगरीय केन्द्र, कस्बा बाजार, अर्द्धनगरीय कस्बा, ग्राम्य नगर आदि विभिन्न नामों से जानते है। इनकी विशेषताएं न तो नगरीय है न ही ग्रामीण हेाती है। बल्कि यहाँ दोनों प्रकार के कार्य मिले–जुले रूपों में पाये जाते हैं। **टेलर के अनुसार** जहाँ पर 150 से 500 की जनसंख्या पायी जाती है वह नगरीय गाँव है।

2. कस्बा–

कस्बा सबसे छोटे स्तर की नगरीय बस्ती हैं जिसमें ग्रामीण एवं नगरीय दोनों ही प्रकार की विशेषताओं का समावेश पाया जाता है। ज्वूद शब्द की उत्पत्ति जर्मन भाषा के शब्द Zaun या Mp भाषा के शब्द जनपद से हुई है जिसका अर्थ है । tance of any material (किसी चीज की बाढ) यह एक नगरीय अधिवास जो काफी बडे ग्रामीण क्षेत्र को प्रभावित करता है। जब बड़े या केन्द्रीय गाँवों में नगरीय गतिविधियों का विकास होता है तो इसमें कस्बा का निर्माण होता है। जो आसपास के ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की नगरीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है। इसके निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि के बजाय वाणिज्य एवं उद्योग होता है। कस्बा गाँवों की आपेक्षा अधिक क्रियाशील तथा विकसित होता है जो गाँवों पर आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रभाव को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

विश्व स्तर पर कस्बा की परिभाषा की एकरूपता में भिन्न–भिन्न होती है। आस्ट्रेलिया में उन केन्द्रों को कस्बा कहते हैं जिनकी जनसंख्या 250 से अधिक होती है एवं जिन्हें नगर का दर्जा नहीं प्राप्त होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं कनाडा के हर प्रान्त में कस्बा के चयन के भिन्न–भिन्न मापदण्ड है। जर्मनी में कस्बा एवं नगर में कोई विभेद नहीं है। यहाँ 5000 से कम आबादी को कंट्री टाउन एवं 5000–20000 की जनसंख्या वाले लघु नगर कहते हैं। रूस में कस्बा एवं नगर दोनों के लिए 'gord शब्द का उपयोग किया है। स्वीडन में कस्बा (जनसंख्या 1000) के लिए (Stcid) एवं नगर (बड़ा कस्बा) के लिए (Storstad) शब्द का प्रयोग है। भारतीय मे जनगणना विभाग ने कस्बे के लिए समय–समय पर आपनी परिभाषा को संशोधित किया है। 1901 की इम्पीरियल जनगणना संहिता के

अनुसार नगर पालिका क्षेत्र, छावनी क्षेत्र, नगर पालिका से बाहर स्थित सिविल लाइन क्षेत्र, नगर पालिका से बाहर स्थित सिविल लाइन क्षेत्र तथा 5000 व्यक्ति से अधिक जनसंख्या वाले स्थायी निवास क्षेत्र को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। 2001 में कस्बे की परिभाषा हेतु निम्न आधार निश्चित किये गये थे।

1. वह स्थान जहाँ नगर पालिका, महापालिका, छावनी बोर्ड या नोटीफाइड एरिया समिति स्थापित हो।
2. जनसंख्या कम से कम 5000 हो।
3. कार्यशील पुरुष जनसंख्या का 75% भाग अकृषित कार्यों में लगा हो।
4 जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलो मी0 से कम न हो।

3.. नगर –

सिटी (City) नगर शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा civkitas शब्द मानी जाती है जिसका प्रयोग रोमन साम्राज्य के अधीन संगठनों के लिए किया जाता था। ब्रिटेन में इस शब्द का प्रयोग मुख्य गिरजाघर (cathedral) रखने वाले नगर के लिए किया ं। जर्मन में इसके लिए स्टैंड (stadt), फ्रांस में सिटे (cite), स्वीडन में (staclen) शब्दों का प्रयोग किया जाता है। किसी नगर की रूपरेखा पर उस क्षेत्र की भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं के द्वारा प्रभावित है। किसी नगर का जन्म एकाएक ही नही होता बल्कि इसका क्रमिक विकास क्षेत्रीय आवश्यकताओं के सापेक्ष होता है। नगर के लोगों का जीवन प्राथमिक व्यवसायों के अलावा अन्य आर्थिक कार्यों पर आधारित होता है।

नगर का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव सभ्यता का इतिह्रास परन्तु विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं के आधार पर नगर की एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकी है।

4. महानगर–

इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा से मानी जाती है। जिसका शाब्दिक अर्थ है मदर सिटी इसके अन्तर्गत अत्याधिक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के नगरों को सम्मिलित किया है। स्मेल्स के अनुसार देश के सबसे बड़े नगरों को महानगर कहते है। लेविस मम्फोर्ड के अनुसार नगर के लिए 'मेट्रोपोलिस' का प्रयोग किया है। मर्फी के अनुसार में महानगर उतना बड़ा और महत्वपूर्ण नगर है जितना कि प्रादेशिक राजधानी। डिकिन्सन के अनुसार यह पड़ोस में स्थित सहायक या छोटे नगरों का नेता होता है। किसी वृहद प्रदेश का सबसे बड़ा नगर वहाँ का प्राथमिक नगर कहलाता है जो समूचे प्रदेश को प्रतिनिधित्व करता है।

जनसंख्या के आधार से दस लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले नगरों को महानगर कहते है। 1930 ई0 में इसकी संख्या 27 थी। आज विश्व में 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरो की संख्या 100 से अधिक हो चुकी है। भारत में 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या जो 1981 में 12 थी 1991 में 23 पहुँच गयी, वर्तमान में 53 हो गयी। एक महानगरीय क्षेत्र की आन्तरिक संरचना अत्यन्त जटिल होती है। इसमें केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (ब्ण्ठण्क्ण्द्ध की बनावट स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। महानगर का प्रमुख व्यापारिक कार्य वस्तुओं को एकत्रित एवं वितरित करना होता है। यह आपने पृष्ठ प्रदेशों के प्राथमिक व तैयार माल उत्पादन को एकत्र करता है, संशोधित करता है तथा उसका पुनर्वितरण करता है।

5. वृहत नगर–

यह नगर के विकास की चरम अवस्था है। 'मेगालोपेलिस' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जीन गाटमैन ने 'संयुक्त राज्य अमेरिका' के उत्तरीपूर्वी समुद्रतटीय प्रदेश के नामकरण हेतु 1957 में किया। वृहानगर में व्यापार एवं आर्थिक क्रियाओं में भारी वृद्धि के कारण मकान अत्यधिक घने बसे दिखाई पड़ते है जिससे मलिन बस्तियों एवं प्रदूषण की बाढ़ आ जाती है। यहाँ का मानव जीवन अत्यधिक व्यस्त, तनावपूर्ण तथा जीवन के सूक्ष्म गुणों का आनन्द नही प्राप्त करता है।

6. सन्नगर–

कई छोटे–बड़े नगरों के मिला कर एक बड़े नगरीय भाग को सन्नगर कहते है। इसका जन्म कई नगरों के मिलाने से होता है। जैसे गाजियाबाद सन्नागर जिसमें लगभग 85 छोटे–बड़े नगर सम्मिलित किये जाते है। एक सन्नगर का प्रादेशिक विस्तार वृहतनगर से कम पाया जाता है। इसमें सामान्यतया एक बड़ा एवं प्रधान नगर होता है।

2.8 आकृति वर्गीकरण

आकृति के आधार पर अधिवासों को निम्न 4 प्रमुख भागों में विभक्त कर सकता है –

1. सघन अधिवास –

इनको कई नामों पुञ्जिजत, एकत्रित, केन्द्रित आदि से भी जानते है। इन अधिवासों में घर या झोपड़ियाँ पास–पास मिले होते है। इसमें कई परिवारों के आवास एक इकाई के रूप में भूमि पर सामूहिक रूप मे केन्द्रित होते है। इन आवासों के साथ सांस्कृतिक–व्यवसायिक तथा अन्य उत्पादन इकाईयाँ स्वकेन्द्रित होती है। विकसित अवस्था का परिचायक होती है। आवासों के चारो ओर फैले भू भागो पर साघन और उत्पादन के सामूहिक प्रयास से विकसित होते है। इन अधिवासो का विकास में प्राकृतिक विशेषताओं को ध्यान में रखकर, सुरक्षा, सांस्कृतिक–राजनीतिक लाभों, आदि के कारण होता है। मानसून एशिया सघन अधिवासों का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

2. संयुक्त अधिवास–

इसको अर्द्धसघन अधिवास के रूप में भी जाना जाता है। इसमें गाँव के मुख्य आवास क्षेत्र के अलावा इसके आस–पास एक दो पुरवे के रूप में जुड़े होते है।

3. आपखण्डित अधिवास–

इसमें भिन्न आवास गृह एक दूसरे सीमा के अन्तर्गत एक दूसरे के निकट मिले होते है। इन अधिवासों में घर आपस में एक दूसरे से अलग होते हुए भी सभी घर मिलकर एक सामूहिक अधिवास का निर्माण करते है। भारत के पश्चिमी बंगाल विशेषकर पूर्वी भाग में इस प्रकार के अधिवास बहुतायत रूप में दिखाई पड़ते है।

4. एकल या प्रविकीर्ण अधिवास–

इनमें अलग–2 बसे हुए इस घर को सम्मिलित किया है। ये मकान एक दूसरे से भिन्न होते हुए बीच में दूरी छोड़कर बसे होते है। बिखरे अधिवासों में मुख्यतः एक झोपडी से लेकर एकत्र परिवार का आवास घर तथा आर्थिक कार्यो से मिले जुले घरो को आदि सम्मिलित किये जोते है। संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य–पश्चिमी मैदानी प्रदेश या अर्जेण्टाइना के पम्पास गेहूँ प्रदेश में प्रकीर्ण कृषक आवास बड़ी संख्या में मिलते है। भारत में पर्वत श्रेणियों, पर्वत स्कन्धों पर कश्मीर से अरूणाचल प्रदेश तक

एकाकी घरो वाले बिखरे अधिवास दिखाई पड़ते है।

कार्यात्मक वर्गीकरण –

कार्यों के आधार पर अधिवासों को मुख्यतः दो वर्गों में बाँट सकते है– (1) आधारभूत (2) अनाधारभूत कार्य। आधारभूत कार्य वे होते हैं जिनसे अधिवास में बाहर से आय प्राप्त होती है एवं जिससे उसके विकास को प्रोत्साहन मिलता है। दूसरे शब्दों में किसी अधिवास के विकास का कारण वे पदार्थ और सेवा है जिन्हें वह उत्पन्न करता है तथा जिसको बेचने के लिए वह अपनी सीमाओं के बाहर के क्षेत्रों के लिए यात्रा करता है। इस विक्रय से प्राप्त धन पर ही उस अधिवास का अस्तित्व, महत्व एवं भावी विकास निर्भर करता है इस तरह हम कह सकते है कि वे कार्य जिनमें सेवा होती है। उन्हें अनाधारभूत अधिवास कहते हैं।

प्राथमिक क्रियाओं के रूप में आधार भूत जाना जाता है इन आधारभूत क्रियाओं की विशेषता के आधार पर अधिवासों को कई वर्गों में बाँट सकते है। ऐसे वर्गीकरण को कार्यात्मक वर्गीकरण की संज्ञा देते है जिसका प्रयोग नगरीय अधिवासों के वर्गीकरण में होता है जिसमे गुणात्मक तथा निदनात्मक विधियों का प्रयोग प्रचलित हैं कार्यों के विशेषीकरण पर नगरों को प्रमुख भागों में विभाजित किया है– (1) उत्पाद केन्द्र (2) व्यापार एवं व्यवसाय केन्द्र (3) राजनीतिक या प्रशासनिक केन्द्र (4) सांस्कृतिक केन्द्र (5) परिवहन केन्द्र (6) सुरक्षात्मक केन्द्र (7) शिक्षा केन्द्र (8) मिश्रित केन्द्र।

आज के दौर में शायद ही कोई नगर हों जिसमें केवल एक कार्य का ही किया जाता हो अधिकांश नगर बहुधंधी होते हैं जिसमें कई कार्यों की प्रधानता होती है।

केन्द्र स्थल एवं सेवा केन्द्र रूप में अधिवासों का वर्गीकरण–

अधिवासों की कार्यात्मक विशेषताओं के आधार पर उन्हें केन्द्रस्थलों एवं सेवा केन्द्रों के रूप में विभाजित करते है। यह विचारधारा इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि प्रत्येक अधिवास (नगरीय अधिवास का एक प्रभाव क्षेत्र या पृष्ठ होता है जिसमें रहने वाले नागरिकों को वह विभिन्न सेवाओं की आपूर्ति करता है। दूसरे शब्दों में नगरों की जन्म स्वयं नहीं होता बल्कि यह उनके चातुर्दिक फैला ग्रामीण क्षेत्र है जो विभिन्न प्रकार की सेवाओं को करने के लिए प्रेरित करता है जिसके कारण उन्हें केन्द्र स्थलों के रूप में जानते है। केन्द्र स्थल का सर्वप्रथम प्रयोग 1931 ई0 मार्क जेफरसन ने किया परन्तु इसके अध्ययन की उपयोगिता का सही आकलन क्रिस्ट्रालर के केन्द्र स्थल सिद्धान्त (1933) के बाद ही प्राप्त हो सका। ये केन्द्र स्थल एक षट्कोणीय सेवा क्षेत्र के मध्य में स्थित होते हैं एवं इनकी केन्द्रीयता अथवा सेवाओं के महत्व के आधार पर इन्हें सप्तसोपनीय क्रम में रखा जाता है– (1) बाजार पुरवा (2) कस्बा केन्द्र (3) काउन्टी गर (4) जनपद नगर (5) लघु प्रान्तीय राजधानी (6) प्रान्तीय राजधानी नगर।

क्रिस्टालर के अनुसार वे केन्द्रीय सेवां जो इन केन्द्र स्थलों में होती है प्रशासन संस्कृति, स्वास्थ, सामाजिक सेवा आर्थिक एवं सामाजिक जीवन, व्यापार उद्योग श्रम संगठन बाजार एवं यातायात आदि संबद्ध है। उन्होंने सभी स्तर के केन्द्र स्थलों के लिए सेवाओं का नाम दिया है। इसी तरह टेलीफोन सेवा का प्रयोग करते हुए उन्होंने केन्द्र स्थलों की केन्द्रीयता के मापन प्रस्तावित किया है। इनके अनुसार वृहद केन्द्र स्थलों का व्यापारिक क्षेत्र प्रभाव क्षेत्र से बड़ा होता है तथा वे सभी वस्तुओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। इसके विपरीत छोटे स्तर के केन्द्र स्थलों का सेवा क्षेत्र एवं उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं का स्तर छोटा होता है। अगस्त लाश ने क्रिस्टालर के सिद्धान्त को अधिक लचीला और सरल तथा वास्तविक बनाते हुए इसे आर्थिक कार्यों पर भी लागू कर दिया।

क्रिस्टालर एवं लाश के उपरान्त विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्र स्थलों एवं सेवा केन्द्रो का अध्ययन होने लगा केन्द्रियता आकलन के निर्धारण की विधियों में महत्वपूर्ण सुधार किये जाने लगे।

किसी क्षेत्र के स्थानिक कार्यात्मक संगठन में केन्द्र स्थलों का योगदान महत्वपूर्ण रूप में देखा जाता है जिससे नवीन खोजो एवं नवाचारों को ग्रामों तक प्रचार प्रसार किया जा सके।

विकास ध्रुव एवं विकास केन्द्र रूप में अधिवास का वर्गीकरण–

क्रिस्टालर–लॉश के केन्द्र स्थल सिद्धान्तों की नवीन व्याख्या पेरोक्स(1955) के विकास ध्रुव सिद्धान्त के रूप में देखी जाती है। विकास ध्रुव से अर्थ ऐसे केन्द्र से है जिससे आपकेन्द्रीय बल बाहर की ओर फैलते है तथा जिसकी ओर अभिकेन्द्रीय बल आकर्षित होते हैं। आकर्षण और विकर्षण के केन्द्र रूप में प्रत्येक केन्द्र का आपना निजी प्रभाव क्षेत्र होता है जो अन्य क्षेत्र में निहित होता है। प्रत्येक ध्रुव या केन्द्र में ऐसे उपयोग हेतु आर्थिक कार्य है जो नवाचारों के प्रचार एवं विकास को प्रोत्साहित करते हैं। विकास केन्द्रों को 5 प्रमुख पदानुक्रमीय वर्गों में रखा जाता है।

(1) विकास ध्रुव
(2) विकास बिन्दु
(3) केन्द्रीय ग्राम
(4) विकास केन्द्र
(5) सेवा केन्द्र

जो अलग–अलग स्तर पर आर्थिक विकास को नयी दिशा–दशा की ओर ले जाते है।

2.9 सारांश

आपने इस इकाई में अधिवास भूगोल के वर्गीकरण के बारे में गहनता से जाना होगा कि अधिवासों के वर्गीकरण में साँस्कृतिक भूदृश्यों का प्रभाव पड़ता है चाहे वह ग्रामीण हो या नगरीय क्षेत्र। विभिन्न विद्वानों ने परिवर्तन के इस दौर में छोटे, गाँव से लेकर वृहत्तम नगर को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया।

आप इस इकाई के अध्ययन से अधिवासों के वर्गीकरण में आवासों की अवस्थित, आकार, आकरिकी उसके कार्य वितरण प्रतिरूप को अच्छी तरह से जान गये होगे। जहाँ ग्रामीण अधिवासों में प्राथमिक क्रियाओं को तथा उनके उपयोग को महत्व दिया जाता वही पर नगरीय अधिवासों में द्वितीयक, तृतीयक, चतुर्थक कार्यों की उपादेयता स्वीकार की जाती है। जिससे नगर ग्राम से लेकर वृहत नगर की व्याख्या की जाती है।

2.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

(1) अधिवास को स्थायी तथा अस्थायी वर्गों में बाँटा है–

(अ) रिचथोपेन (ब) ऊललिंग

(स) आर.पीकृमिश्रा (द) इनमें से कोई नहीं

(2) बसाव प्रतिरूप तथा आन्तरिक संरचना में ग्राम कितने प्रकार के होत हैं–

(अ) 5 (ब) 6

(स) 3 (द) 4

(3) सेविटास शब्द की उत्पत्ति हुयी है–

(अ) लैटिन (ब) फ्रेंच

(स) अमेरिकी (द) अमेरिकी

(4) वर्तमान समय में भारत में महानगरों की संख्या है–

(अ) 32 (ब) 38 (स) 56 (द) 53

(5) गाँव परिवार या वंश से बड़े समुदाय का प्रतीक है यह परिभाषा दी है–

(अ) ब्रून्स (ब) ब्लाश

(स) मुखर्जी (द) गेलेस्कीक

आदर्श उत्तर :

(1) अ (2) स (3) अ (4) द (5) ब

2.11 सन्दर्भ सूची

1-Unling H. and Lienau c (1972) : Rural Settlements Giessen.

2-Doxiadis C.A. (1968) : Existics An Introducation of the science if Human

3-Settlements New York : Exford University Press.

4.Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69

5- Singh R.L. et al (1976): Geographic Dimensions of Rural Settlements(Varanasi : N.9 S.7)

6- Demange on, A (1920) : Habitation Rural France, Annals de Geography ie. Vo1. 29. PP-352-375.

7. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज

8- करन, एम0पी0,ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर

9.डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज

2.12 अभ्यास प्रश्न .सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु

1. अधिवास भूगोल वर्गीकरण को प्रस्तुत करे तथा उनकी प्रमुख विधियों की व्याख्या कीजिए?
2. ग्रामीण अधिवासों एवं नगरीय अधिवासों में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
3. अधिवासों के कार्यात्मक वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
4. नगरीय अधिवास के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

इकाई–3 ग्रामीण अधिवासों का वितरण प्रतिरूप

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 ग्रामीण अधिवासों का सामान्य वितरण एवं संस्थिति

3.3 अधिवासों का आकार

3.4 अधिवासों का घनत्व

3.5 अधिवासों का अन्तरण

3.6 अधिवासों का प्रकीर्णन

3.6.1 निकटतम प्रतिवेशी विधि का अनुप्रयोग

3.7 प्रतिरूप पर प्रभाव डालने वाले कारक

3.8 ग्रामीण अधिवास के प्रतिरूप प्रकार

3.9 सांराश

3.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.12 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

3.0 प्रस्तावना

धरातल पर किसी पदार्थ का वितरण विभिन्न प्रतिरूपों में होता है जो उनकी आकृति के अनुसार होते हैं। इनको मकानों और मार्गों की स्थिति के क्रम और व्यवस्था के आधार पर निर्धारित करते है। जिससे उस क्षेत्र के आर्थिक नियोजन प्रबन्धन में मदद मिलती है। अधिवासों के वितरण का अभिप्राय अधिवासों के बिखराव से है यह बिखराव जो उसके अन्तरण की दूरियों से प्रभावित होता है। प्रतिरूप मापक एवं घनत्व से स्वतंत्र है तथा वितरण में इसकी अभिव्यक्ति उसकी विशेषताओं के सापेक्ष के माध्यम से प्राप्त होती है। एक ही वितरण में विभिन्न आकार के आधार पर विभिन्न प्रकार के प्रतिरूप वाले अधिवासों का निर्माण है। इस इकाई में इन्ही अधिवासों के स्वरूप एवं विशेषताओं को ध्यान में रखकर इसके वितरण प्रतिरूप को प्रतिपादित किया जा रहा है।

3.1 उद्देश्य

यह अधिवास भूगोल की तृतीय इकाई है इसको पढ़ने के बाद आप–

- अधिवासों के वर्तमान प्रतिरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेगे।

- अधिवासों के वितरण तथा आकार को जान सकेगें।
- अधिवासों के विकास में अन्ध संरचनात्मक सुविधाओं तथा सेवा केन्द्रों की भूमिका को जान सकेगें।
- अधिवासों के घनत्व (जनसंख्या) पर प्राकृतिक, धरातल, कृषि, परिवहन, रोजगार के प्रभाव को जान सकेगें।
- अधिवासों के वितरण प्रतिरूप के विधियों एवं प्रकीर्णन की उपादेयता को जान सकेगें।

3.2 ग्रामीण अधिवासों का सामान्य वितरण एवं संस्थिति

ग्रामीण क्षेत्रों का सामान्य वितरण प्रतिरूप मुख्यतः भौतिक पर्यावरणीय कारकों जैसे भूस्वरूप, जल की आपूर्ति, अपवाह प्रणाली, मृदा क्षमता तथा सामाजिक–आर्थिक कारकों में सुरक्षा, भूमि उपयोग, परिवहन के साधनों, जनसंख्या घनत्व आदि से प्रभावित है। उदाहरणार्थ– जापान में समतलीय क्षेत्र के अभाव में कृषि गाँव अत्यधिक सघन एवं ठोस रूप बसे पाये जाते हैं। जिसमें आवासों के बीच बहुत संकरी गलियॉ पाई जाती है ताकि कृषि के लिए अधिकाधिक क्षेत्र बचाया जा सकें। यूरोप के पहाड़ी क्षेत्रों में पहाड़ी ढालों के सहारे गाँवो के झुण्ड पाये जाते हैं एवं घाटी के समतल क्षेत्रों का उपयोग कृषि कार्यों में होता है।

भारत के गंगा मैदानी क्षेत्रों में उच्चवाचीय स्वरूप, समतल क्षेत्र, उपजाऊ मिट्टी, समुचित सिंचाई एवं आवागमन संचार के साधनों आदि से यहाँ पर ग्रामीण अधिवास का एक समान वितरण प्रतिरूप पाया जाता हैं वहीं बारीकी से देखने पर भौतिक–सांस्कृतिक कारकों में भिन्नता के कारण क्षेत्रीय स्तर पर अनेक विभिन्नताऍ विषमताएं दिखाई पड़ती है। यहाँ यमुना आदि नदियों की नालीदार भूमि उत्तरक्षेत्र, जलभराव एवं बाढ़ ग्रस्त भागों में अधिवासों का वितरण विरल पाया जाता है जबकि ऊँचे नदी कगारों या प्राकृतिक तटबंधों पर पेयजल, उपजाऊ मिट्टी, सुरक्षा एवं नदी यातायात से सदैव बड़े एवं सुसंगत गाँवों का विकास हुआ है। अधिकांशतः आने वाली बाढ़ों के बावजूद यहाँ इनकी संस्थित यथावत बनी हुई है और कई क्षेत्रों में तो इन्हें अनेको बार उजड़ गया है तथा फिर बसा है। वर्तमान में आवागमन तथा संचार साधनों के विकास तथा चकबन्दी आदि भूमि सुधारों के कारण नये गाँवों एवं खेत घरों का अभ्युदय सड़कों, रेल स्टेशनों के समीप, खेती के रूप दिखाई पड़ता है।

मैदानी भागों से अलग देशो के पठारी भागों में कंकरीला, पथरीला अनुपजाऊ एवं झाड़ियों का क्षेत्र मानव अधिवासों के लिए आकर्षकण का केन्द्र बिन्दु रहा है। मिट्टी की अनुर्वरता तथा आवागमन संचार साधनों की कमी के कारण इन क्षेत्रों में परुवो वाले गाँवों का कम ही विकास हो पाता है। कही कही पर जलापूर्ति एवं उपजाऊ मिट्टी उपलब्ध है वहाँ 10–20 घरो के छोटे–छोटे गाँव या पुरवे विकसित हो जाते हैं। पठार एवं मैदान के मिलन बिन्दु पर परिवहन मार्गों के मिलन बिन्दु अधिवासों के लिए आदर्श संस्थिति प्रदान करते हैं। महाराष्ट्र के दक्कन क्षेत्र में मिट्टी की उपजाऊ तथा जलापूर्ति ने गाँवों को बसने में तथा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। हिमालय क्षेत्र में प्रविकीर्ण एवं आपखंडित प्रकार के ग्रामीण अधिवासों की प्रधानती पायी जाती है। यहाँ पर समतल घाटियॉ, पर्वत स्कंध, सीढ़ीनुमा ढाल जहाँ जल एवं सूर्य प्रकाश निरन्तर उपलब्ध है तथा प्रचंड हवाओं और भू–स्खलन की संभावनायें नहीं है। वहाँ ग्रामीण अधिवासों की अवस्थिति हेतु आदर्श स्थल माने जाते है। यहाँ 1750 मीटर से अत्यधिक ऊॅचाई के क्षेत्रों में ग्रामीण अधिवास एकल वास के रूप में हैं।इनका विकास पशुचारकों ने किया है। इसमें हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति प्रमुख है।

तमिलनाडु के मैदानी भाग में सामूहिक और सघन अधिवासों का वितरण मुख्यतः जल

स्रोतों–कुँआ, तालाब, नदी आदि के कारण होता है, परन्तु कावेरी डेल्टा के जलाधिक्य क्षेत्र में शुष्क अधिवासो की प्रधानता पायी जाती है।

3.3 अधिवासों के आकार

अधिवासों के वितरण के अध्ययन में आकार का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है। घनत्व और वितरण प्रतिरूप को उनका आकार ही निर्धारित करता है। मुख्यतः बड़ा आकार उच्च अन्तरण एवं कम घनत्व में सहायक है। आकार की अभिव्यक्ति उनके द्वारा अधिग्रहीत स्थान तथा उनमें निवास वाली जनसंख्या के सन्दर्भ में है। यह जरूरी नहीं है कि बड़े क्षेत्रीय आकार वाले अधिवास में निवास करने वालों की संख्या अधिक हो अथवा उसका जनांकिकीय आकार भी बड़ा हो। वास्तव में जनसंख्या का आकार मकानों की संख्या आदि से निर्धारित होता है। साधारणता गाँवों में उच्च वर्ग के लोग बड़े–बड़े घरो में रहते हैं। जिनके आस–पास पर्याप्त खाली जगह होती है। इसके विपरीत कम आय एवं निम्न वर्ग के लोग छोटे मकानों में रहते हैं जो ं सटे हुए घने रूप में पाये जाते हैं। इस प्रकार अधिवास आकार का तीसरा पक्ष मकानों की संख्या एवं आकार से है।

भारत में ग्राम का औसत क्षेत्रीय आकार लगभग 5.13 वर्ग किलोमीटर पाया जाता है जिसमें औसतन 1301 व्यक्ति निवास करते हैं 2011 जनगणना के अनुसार क्षेत्रीय आकार की दृष्टि से पं0 बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश राज्यों में सबसे छोटे आकार के गाँवों की प्रधानता है। ये राज्य देश के सबसे घने बसे मैदानी भागों में स्थित हैं। जहाँ कृषि के साथ–साथ आवागमन एवं संचार साधन का विकास सर्वाधिक हुआ है। देश के कुल 35 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेश में से कुछ ग्रामों का आकार 5 वर्ग किमी0 से कम तथा कुछ में 5–10 वर्ग किमी0 तथा अन्य में 10 वर्ग किमी0 से कम तथा कुछ में 5–10 वर्ग किमी0 तथा अन्य में 10 वर्ग किमी0 से अधिक पाया जाता है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से देश में सबसे बड़े आकार के गाँव जम्मू–कश्मीर (33.9 वर्ग मी0), मिजोरम (24.4 वर्ग किमी0), केरल (38.2 वर्ग किमी0), अरूणाचल प्रदेश (15 वर्ग किमी.), नागालैण्ड (11.6 वर्ग किमी0) राज्यों में स्थित हैं ये क्षेत्र पहाड़ी एवं सागरीय अंचलों से सम्बद्ध(है जहाँ पर्यावरणीय दशाऐं मैदानी भागों में अलग है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में कुल 640930 ग्राम थे जिनमें कुल 83.37 करोड़ लोग निवास करते थे। इनमें 56.7 ग्रामों की जनसंख्या 1000 से कम थी। इस प्रकार देश के 23.3 प्रतिशत ग्रामों की जनसंख्या 1000–1999 के बीच थी जबकि केवल 20.0 प्रतिशम गाँव ही बड़े आकार के थे जिनकी जनसंख्या 2000 से अधिक पाई जाती है।

भारत में जनसंख्या के आधार पर गाँवों का आकार–2011

जनसंख्या वर्ग	ग्रामों का प्रतिशत
1000–कम	56.68
1000–1999	23.29
2000–4999	16.13
5000–9999	03.21
100000 अधिक	0.78
योग	**100.00**

ग्रामों के आकार का विश्लेषण मकान की संख्या के आधार पर भी किया जा सकता है। इसे प्रत्येक क्षेत्रीय इकाइयों में मकानों की कुल संख्या को ग्रामों की कुल संख्या से विभाजित कर प्राप्त किया है। भारत में प्रति मकानों का औसत 217 पाया जाता है। देश के कुछ राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों जैसे अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, हिमाचल प्रदेश, अण्डमान–निकोबार एवं उत्तराखण्ड में प्रति ग्राम मकानों की संख्या 100 से कम पायी जाती है। जो इन राज्यों में लघु आकार के ग्राव के रूप में जाना जाता है। इसी प्रकार देश के अनेक राज्यों में मध्यम आकार के गाँवों की प्रधानता है। जिसमें मकानों की संख्या 100 से 200 के मध्य पाई जाती है। कुछ आपवाद को छोड़ दिया जाये तो अधिकांश अधिवास देश के मैदान में पाये जाते है। देश के कुल 9 राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में बड़े आकार के गाँवों (200–400 मकानों की संख्याद्ध की प्रधानता है। जिसमें पंजाब, हरियाणा, बिहार एवं पश्चिम बंगाल को छोड़कर शेष की स्थिति दक्षिण के पठारी एवं सागर तटीय भागों में पाई जाती है। सबसे बड़े आकार के गाँव देश के दक्षिणी राज्यों (केरल, तमिलनाडु, लक्षद्वीप समूह एवं त्रिपुरा में पाये जाते हैं। जिनमें आवासीय भवनों की संख्या 520 से अधिक है। केरल राज्य के ग्रामों का आकार वृहत्तम है जहाँ भवनों की संख्या 3,588 तक पायी जाती है।

3.4 अधिवासों का घनत्व

अधिवासों के वितरण की व्याख्या उनके घनत्व के द्वारा भी होता हैं। भारत के राज्यो एवं केन्द्र शासित क्षेत्रो के प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में गाँवों के घनत्व का विवरण दिया गया है। देश का औसत घनत्व 19 गांव प्रति 100 वर्ग किलोमीटर है तथा कम घनत्व (10 ग्राम/100 वर्ग किलोमी0) के राज्यों में जम्मू कश्मीर, मिजोरम, केरल, अरूणाचल प्रदेश, अण्डमान द्वीप समूह, नागालैण्ड, गुजरात, गोवा, सिक्किम एवं त्रिपुरा है। जहॉ गाँवों का आकार बड़ा पाया जाता है। ये क्षेत्र देश के पर्वतीय एवं तटीय भागों में पाये जाते है। जहाँ की भौतिक दशायें देश के शेष भागों में सर्वथा भिन्न हैं गाँवों का अधिकतम घनत्व गंगा के मैदानी भाग (पं0 बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश) में पाया जाता है। जो देश के सर्वाधिक घने बसे क्षेत्र हैं एवं जहाँ गाँवों का आकार छोटा पाया जाता है। मध्यम घनत्व के अन्तर्गत मध्य एवं दक्षिणी भारत का पठारी भू–भाग सम्मिलित किया जाता है। भारत में ग्रामीण जनसंख्या का औसत घनत्व 253 व्यक्ति/वर्ग किलो मी0 है। वितरण प्रतिरूप में पर्याप्त विषमता दिखाई पड़ती है। जहाँ अरूणाचल प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र में यह घनत्व मात्र 13 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है वही बिहार, पं0 बंगाल, उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में 600 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक है। हिमाचल, मेघालय, सिक्किम, मिजोरम, जम्मू कश्मीर, सिक्किम, नागालैण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में घनत्व 24 से 110 मानव प्रति वर्ग किलोमीटर के बीच पाई जाती हैं राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्र में भी ग्रामीण जनसंख्या का घनत्व विरल 151 प्रति वर्ग किलोमी0 पाया जाता है। देश के सर्वाधिक घनत्व का क्षेत्र उत्तरी मैदानी भागों में मिलता है जहाँ इसकी मात्रा पश्चिम में पंजाब (344 प्रतिवर्ग किमी0) से पूर्व में पश्चिम बंगाल (701 प्रतिवर्ग किलोमी0) की ओर बढ़ती जाती है। कुल मिलाकर गाँवों तथा ग्रामीण जनसंख्या के घनत्व पर प्राकृतिक धरातलीय स्वरूप कृषि क्रियाओं परिवहन आवगमन के साधनो का स्पष्ट प्रभाव पड़ता हैं।

3.5 अधिवासों का अन्तरण

ग्रामीण बस्तियों का वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण में अन्तरण का महत्व है। इसके माध्यम से परिवहन, निर्माण क्षेत्रों तथा सेवा केन्द्रों के समुचित विकास करके स्थानिक नियोजन को महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली बनाया है। ग्रामीण अधिवासों में मुख्यतः दो तथ्यों पर बल दिया है– (1) घनत्व अर्थात् प्रति क्षेत्रीय इकाई में अधिवास संख्या। (2) अधिवासों के बीच दूरी/1940 में बारनेस एवं राविन्सन ने

घनत्व के अन्तरण में परिवर्तित करने का निम्न सूत्र दिया–

D = 1.11 N Ö d.

यहाँ D= षट्भुजीय विन्यास में बिन्दुओं के बीच सैद्धान्तिक दूरी।

1.11 स्थिरांक

d = A/N

A = क्षेत्रफल, एवं प्रति क्षेत्रीय इकाई में अधिवासों की संख्या

ए.बी.मुखर्जी (1970) में उपरोक्त सूत्र को संशोधित कर निम्न प्रकार प्रस्तुत किया।

D = 1.1284 Ö d.

सी.ई. माथर (1944) में इसे परिमार्जित किया–

D = 1.0746Ö d.

इसी प्रकार मेडवेडकोव (1976) ननने एट्रोपी की संकल्पना के माध्यम से क्रिस्टालर के षट्भुजीय सिद्धान्त को परिभाषित करने का प्रयास किया। इनका यह एट्रोपी सूत्र एक जालक की कोशिकाओं के बीच बिन्दुओं के घनत्व एंव निकटतम प्रतिवेशी विश्लेषण पर आधारित होती है यहाँ षट्भुजीय व्यवस्था में अधिक उपयुक्तता से माथर के सूत्र का प्रयोग है। क्योंकि इसमें प्रतिच्छादन तथा असेवित क्षेत्र की संभावना समाप्त है। यह सूत्र इस मान्यता पर है कि यदि किसी क्षेत्र में आवास नियमित रूप में वितरित है। षट्भुजीय विन्यास के अन्तर्गत उनके बीच सैद्धान्तिक दूरी का परिकलन उपर्युक्त सूत्र द्वारा कर सकते है।

देश में गाँवों का औसत अन्तरण 2.4 किमी0 पाया जाता है। देश में गंगा मैदानी भागों में सघन बसे क्षेत्र बिहार, पं0 बंगाल, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, असम, उत्तराखण्ड, हिमाचल एवं ओडिशा में गाँवों का अन्तरण सबसे कम 1.6–2.0 किमी0 में पाया जाता है। माध्यम अन्तरण (2 से 3 किमी0) वाले राज्यों में मेघालय, पंजाब, हरियाणा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, कर्नाटक एवं महाराष्ट्र के क्षेत्र में मिलता है। उच्च अन्तरण (3 से 4 किमी0) के अर्न्तगत आन्ध्रप्रदेश, गोवा, तमिलनाडु, त्रिपुरा, गुजरात, मणिपुर, नागालैण्ड, एवं राजस्थान राज्य सम्मिलित है। भारत में गाँवों के अन्तरण का उनके क्षेत्रीय आकार से सीधा संबंध तथा उनके घनत्व से विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है ग्रामों के अन्तरण को प्रभावित करने में धरातलीय स्वरूप, मृदा उर्वरता, तथा परिवहन आवागमन–संचार साधनों के विकास का योगदान है। ग्रामीण अधिवासों के अन्तरण के विश्लेषण में सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन के आधार पर यदि ग्राम के स्थान पर पुरवा को आधार मानकर अध्ययन करे तो इसके वास्तविक वितरण को समझने में अधिक सरल एवं सुविधा होगी। अकसर यह देखा जाता है कि बड़े आकार के ग्रामों में पुरवों की संख्या अधिक 5 या उससे अधिक होती है जबकि लघु आकार के ग्रामों में इननकी संख्या 1 या 2 तक होती है। परन्तु आँकड़ों के अभाव में यह कार्य लघु क्षेत्रों के अध्ययन क्षेत्र सर्वेक्षण से ही हो सकता है।

3.6 अधिवासों का प्रकीर्णन

किसी भी भाग में अधिवासों के प्रकीर्णन का प्रभावित करने में भौतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कारकों का मुख्य योगदान है। जिसके कारण अधिवासों के वितरण को निश्चित रूप प्रदान किया करते है। जहाँ प्राचीन समय में पेयजल की समस्या, सुरक्षा की आवश्यकता, कृषि अर्थ व्यवस्था एवं सामुदायिक जीवन के बाधा के कारण सुसंगत गुच्छित आवासों का विकास हुआ था। सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों के कारण वर्तमान समय में ग्रामवासियों में नयी बसाव की प्रवृत्ति

का साफ प्रभाव परिलक्षित होता है। अधिवासों के केन्द्रण एवं फैलाव के परिभाषा हेतु सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया गया है जिसमें कोशिका गणना, निकटतम प्रतिवेशी विश्लेषण एवं प्वासों सम्भ्याव्यता आदि रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें पी.जी. क्लार्क और एफवीं इवान्स द्वारा प्रतिपादित निकटतम प्रतिवेशी विश्लेषण सर्वाधिक मान्य है। इस विधि में मुख्य रूप से निकटतक अधिवासों के बीच सरल रेखा के द्वारा प्राप्त दूरी का औसत, अधिवासों का घनत्व तथा प्रत्याशित दूरी का उपयोग किया है। क्लार्क एवं इवान्स (1954) द्वारा दिये निम्न सूत्र द्वारा किया जा सकता है।

R_N = ro / re

जहाँ rE = 1 / (2 Ö d) = 2 ro Ö d एवं

rO = निकटत अधिवासों (ग्रामों) के बीच सीधी रेखा के सहारे प्राप्त दूरियों का औसत!

R_N का मान के माध्यम में ज्ञात करने में आसानी होती है कि क्या प्रेषित विवरण याद्वच्छिक प्रत्याशा के निकट है या इससे दूर है। यह मान 0.0 (पूर्ण संकेन्द्रण) एवं 1.0 (यादृच्छिकता) से 2.1491 (पूर्ण समांगी षट्भुजीय प्रतिरूप) के बीच पाया जाता है। जो निम्न सूत्र का उपयोग करते हुए इस घातांक को प्रसरण (Variance या V) के साथ सहसम्बन्धित कर पुनः परीक्षण कर सकते है

V = (4-p)/ 4 d p= 0.06830/6/d.

जब V का rE से अधिक हेाता है तो वितरण को गुच्छित और जब बराबर होता है तो यादृच्छिक (random) एवं जब rE से कम है तो एक समान माना जाता है।

इसी प्रकार rE की सार्थकता का परीकलन यादृच्छिकता की संकल्पना द्वारा मानक त्रुटि के परिकलन से भी प्राप्त हो सकती है।

or E = 0.26136/Ö (nd)

जहाँ orE = मानव त्रुटि

n = किसी क्षेत्रीय इकाई से अधिवासों (ग्रामों) की संख्या।

d = प्रतिवर्ग किलोमीटर ग्रामों का घनत्व 95 प्रतिशत सम्भ्याव्यता स्तर पर यादृच्छिक सुमेल की ऊपरी एवं निचली संख्याओ का निर्धारण srE की मदद से निम्न सूत्र द्वारा प्रतिपादित करते है–

= (2srE^1 rE)/rE

यादृच्छिकता के परिसर की चौड़ाई मुख्यतः बिन्दुओं गाँवों की संख्या द्वारा निर्धारित होती है अर्थात् बिन्दुओं की संख्या जितनी अधिक होने पर स्थान की चौड़ाई उतनी ही कम होती जाती है। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रीय इकाईयों के R_N मानों को ग्राफ पर बनाकर यादृच्छिक सुमेल द्वारा गाँवो के वितरण प्रतिरूप का सही अंदाज लगाया जा सकता है।

प्रकीर्णन की प्रवृत्ति के मापन हेतु डेसी एवं तुंग (1962) ने नियमित खासों सम्भाव्यता नियम (Regular/Poisson probability सवूद्ध का उपयोग किया जिसके लिए उन्होंने प्रसमान्यीकृत घातांक (Normalized Index) अर्थात Di का परिकलन किया–

Di = rO/ (1.0750/Ö d)

Di का मान 0 से 1 के बीच पाया है कि जिसमें 0 सकेन्द्रित 1 नियमित/ एक समान

(Regular) तथा दोनों के बीच 0.5 का मान सातव्य का मध्य बिन्दुद्ध यादृच्छिक प्रतिरूप को प्रदर्शित है।

इसी प्रकार यादृच्छिक के परिकलन की उपर्युक्त विधियों की वैधता के परीक्षण हेतु किंग (1969(प्रसामान्य वक्र (Normal Curve) के मानक विचलन (standard variate) अर्थात् C का परिकलन किया गया– c= (rO -r E)/orE

पृथ्वीश नाग (1977) ने डेसी एवं तुंग के क्प घातांक की भाँति ग्रामीण अधिवासो के वितरण प्रतिरूप के मापन हेतु Rx घातांक का उपयोग करके जिसका परिसर 0.0 (संकेन्द्रित प्रतिरूप) 0.5 (यादृच्दिक प्रतिरूप) एवं 1.0 (सामांगी प्रतिरूप) तक निकला है।

3.6.1 निकटतम प्रतिवेशी विधि का अनुप्रयोग–

ग्रामीण आवासों के वितरण प्रतिरूप की व्याख्या हेतु डॉ0 कुमकुम राय (1989) ने निकटतम प्रतिवेशी विश्लेषण प्रविधि का उपयोग जिसने उन्होने 1531 ग्रामों की निकटतम प्रतिवेशी दूरियों का उपयोग किया है। इनके द्वारा क्षेत्र के 13 विकास खण्डों के औसत के आधार पर परिकलित R_N के मान 1.1630 (ऐरायॉ) से 1.5366 (हथगाँव) के बीच फैला हुआ है जो वितरण प्रतिरूप के यादृच्छिक से हटकर संमागता/ एक समानता की प्रवृत्ति का परिचायक है। Rn मानों के आधार पर क्षेत्र के विकास खण्डों को निम्न तीन भागों में बाँट सकते है–

1) **अत्यल्प नियमितता** – RN 1.00 से 1.25 इस वर्ग के अन्तर्गत फतेहपुर जनपद के 13 में से 9 विकास खण्ड को सम्मिलित किया जिनका कुल क्षेत्रफल 2897.4 वर्ग किलो0 मीटर लगभग (71. 1) है। इसमें प्रेक्षित एक दूसरे ग्राम दूरी का औसत 0.88 किमी0 (भिटौरा विकास खण्ड) से 1.62 किमी0 (अशोथर विकास खण्ड) के बीच है। जबकि प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में गाँवो का घनत्व का परिसर 14.4 (अशोधर) से 47.9 (भिटौरा) के बीच फैला है। इस क्षेत्र में मध्यम से वृहत् आकार के गाँवों की अधिकता पायी जाती है। (क्षेत्रीय आकार 2.09 वर्ग किलोमीटर प्रतिग्राम से 6.95 वर्ग किलोमीटर तथा जनांकिकीय आकार 847 व्यक्ति प्रतिग्राम (भिटौरा) से 1957 व्यक्ति प्रति ग्राम (असोधर) इसी प्रकार गाँवों के औसत अन्तरण का मान 1.55 किलोमी0 से 2.83 के बीच फैला हुआ पाया जाता है।

2) **अल्प नियमितता** – Rn 1.26 से 1.50 हस्वा एवं विजईपुर विकासखण्ड को सम्मिलित करते है। जिनका जनपद के 22 प्रतिशत क्षेत्र पर फैला है तथा जनपद की ग्रामीण जनसंख्या का 16.09 प्रतिशत भाग निवास करता हैं। यहाँ बड़े आकर के गाँव पाये जाते हैं। जिनका आकार 2.46 वर्ग किमी0 से 3.43 वर्ग किलोमी0 और जनांकिकीय आकार 103 व्यक्ति से 1445 और सामान्य अन्तरण 1.68 से 1.99 (किलोमी0) पाया जाता हैं भूमि सुधारों, चकबन्दी, सिंचाई की सुविधाओं एवं परिवहन मार्गों के विकास के कारण प्रकीर्णन की प्रवृत्ति को एक नयी दिशा मिली है। जिसमें नये खेत घरों एवं सड़कों के किनारों पर दुकान का विकास हो रहा है।

3) **मध्य नियमितता** –RN > 1.50 इसमें गाँवों का आकार छोटा क्षेत्रफल 1.16 वर्ग किमी0/ग्राम, जनसंख्या 695 व्यक्ति/ग्राम, उच्च घनत्व 86 ग्राम/100 वर्ग किलोमीटर और न्यून अन्तरण (1. 15 किलोमीटर) पाया जाता है। यहाँ ऊँचे मान से विकीर्णन की प्रवृत्ति के अधिक सक्रिय होने का प्रमाण मिलता हैं जिसमें सिंचाई, यातायात एवं संचार मार्गों, विद्युत एवं कृषि तकनीकों में

सुधारात्मक विकास हुआ है।

निकटत प्रतिवेशी विश्लेषण में यादृच्छिक घातांक (Rn) के मान पर क्षेत्रीय इकाई के आधार का प्रभाव दिखाई पड़ता है। सामान्यतः क्षेत्रीय ईकाईयों के आकार के छोटा होने पर RN का प्रतिमान कम होता जाता है। इस समस्या के निराकरण हेतु द्वितीय स्तरीय निकटतम प्रतिवेशी दूरियों का उपयोग कर सकते है।

3.7 प्रतिरूप पर प्रभाव डालने वाले कारक

प्रतिरूप गाँव की आकृति एवं स्वरूप को बताता है, जो प्रदेश में उसकी स्थिति को निर्धारित करती है। यह अधिवास के रूप को बताने वाला प्रमुख तत्व है। जो उसके आन्तरिक स्वरूप की विशेषता को बताती है। यह पूर्णतः भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों से प्रभावित होती है। भौतिक तत्वो में बसाव स्थान का स्वरूप, जल राशियाँ की आकृति पर आपना प्रभाव डालते है। साँस्कृतिक कारकों में ऐतिहासिक घटनाक्रम में सड़कों व गलियों का नियोजित ढ़ंग का प्रारूप, खेतों का स्वरूप, धार्मिक संस्थाऐं, गाँव के लोगों का केन्द्रीय अधिवास का सबसे अधिक सुलभ भू भाग होता है। जहाँ से चारों ओर फैली कृषि भूमि की देखभाल सही ढंग से कर सकते है। ग्रामीण अधिवासों का प्रतिरूप ऐसे बस्तियों की ओर ध्यान देता है है जो सघन अथवा अर्द्ध सघन होती है। प्रकीर्ण व अर्द्ध–प्रकीर्ण बस्तियों के प्रतिरूप का विश्लेषण करना व उनको वर्गीकृत करना एक कठिन विषय है। इसे इस प्रकार समझ सकेत है –

क्र.सं.	अधिवास का प्रतिरूप	अधिवास का प्रकार	विकास की परिस्थितियाँ
1.	वृत्ताकार, तारानुमा	अर्द्धसघन	कहीं भी उपर्युक्त परिस्थिति मिलने वाले क्षेत्र
2.	वर्गाकार, आयताकार	अर्द्धसघन	सिंचाई सुधिा अनुकूलन बसाव स्थान वाले क्षेत्र
3.	रेखीय	अर्द्ध–प्रकीर्ण	नदियों के बाढ़ वाले क्षेत्र
4.	अनाकार	प्रकीर्ण	बाढ़ के प्रतिरूप क्षेत्र

3.8 ग्रामीण अधिवास प्रतिरूप के प्रकार

1) रेखीय प्रतिरूप

सड़क, नदी और नहर के सहारे बसे हुए घरों की बस्तियाँ रेखीय प्रतिरूप में पाई जाती है। इन घरो के द्वार मुख्यतः आमने–सामने होते हैं। रेखा की भाँति गाँवों का आकार लम्बा होता है। इस प्रकार के गाँव को रेखीय प्रतिरूप या लम्बाकार प्रतिरूप की संज्ञा देते हैं।

भारत में इस प्रकार की बस्तियाँ पूर्वी तटीय मैदान, निम्न मैदान, देहरादून घाटी में मिलती है। उड़ीसा का समुद्रतटीय मैदान, आन्ध्रप्रदेश का पूर्वी भाग तमिलनाडु, मुदराई के क्षेत्रों में रेखीय गाँव पाये जाते हैं। देहरादून जिले में दून घाटी में भी रेखीय बस्तियाँ देखने को मिलती है।

2) चौक पट्टी प्रतिरूप –

मैदानों में दो मार्गों के मिलन बिन्दु पर जो गाँव बसता हैं, उन गाँवों की गलियाँ, मार्गों के साथ समानता रखती है। आयताकार प्रतिरूप में बनती हैं जो एक दूसरे के समान्तर व लम्बवत होते हैं। ये सड़के एक–दूसरे को समकोण पर काटती हैं। यह प्रतिरूप रखने वाले गाँव प्रायः आकार में बड़े हैं। उत्तर भारत में ऐसे गाँवों की काफी बड़ी संख्या में पायी जाती है। जिसमें से अधिकांशतः धीरे–धीरे कस्बों का विकास हो जाता हैं। गंगा–यमुना दोआब के ऊपरी भाग में भी ऐसे ग्रामों की संख्या अधिक

है। कर्नाटक व दक्षिणी आन्ध्रप्रदेश में भी ऐसे गाँव हैं। इस प्रतिरूप को रेखीय एवं वर्गाकार समूह भी कहा गया है।

3) अरीय या त्रिज्या प्रतिरूप –

भारतीय गाँवों में ऐसे प्रतिरूप को निर्माण प्रमुख रूप से दिखाई पड़ता है। ऐसे गाँवों में कई ओर से मार्ग आकार मिलते हैं तथा उन गाँव से बाहर अन्य गाँव के लिए कई दिशाओं से मार्ग बन जाते हैं। इन गाँवों की गलियों के भीतरी भाग में केन्द्र में आकर मिलती है। इन गलियों पर मकान बनते–जाते है आकार मध्य से बाहर की ओर बढ़ते हैं। ग्राम में जो चौराहा होता है, उससे त्रिभुजाकार मार्गों पर घर बसे होते हें। हमारे देश में ऐसे गाँवों की संख्या बहुतायत मिलती है। उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु के पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में इस तरह गाँव विशेष रूप से पाये जाते हैं।

4) तारा प्रतिरूप –

ऐसे अधिवास पहले आरीय प्रतिरूप में विकसित होते हैं बाद में बढ़ कर बाहर की ओर जाने वाले मार्गों पर फैलते हैं। गाँव के नजदीक मकान की संख्या दूर जाने पर मकानों की संख्या कम होती जा रही है। मध्य गंगा के मैदान के बाढ़ वाले क्षेत्रें में ऐसे गाँव पाये जाते हैं। पूर्वी चम्पारन, सीतामढ़ी, पूर्वी मुजफ्फरपुर, मधुबनी में ऐसे गाँवों की अधिकता मिलती है। उत्तर प्रदेश के मैदानी भागो में ऐसे अधिवास मिलते हैं।

5) वृत्ताकार प्रतिरूप –

ऐसे गाँव का प्रतिरूप एक ही स्थान पर मकानों के अधिक बसाव के कारण बन जाता है। झील, कुओं या जमींदार के मकान के चारे ओर फैलकर ऐसी बस्तियाँ बनती है। प्राचीन काल में ऐसे अधिवास का जन्म सुरक्षा हेतु ही हुआ। इस प्रकार के ग्राम ऊपरी दोआब, ट्रांस यमुना क्षेत्र, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, भीमताल, बिहार में सारन जिले में ऐसे ही ग्राम मिलते हैं। इन अधिवास को दो प्रमुख भागों में बॉट सकते है– (**1) न्याष्टिक अधिवास :** ऐसे अधिवास का केन्द्र किसी मुखिया के घर से जुड़ा हेाता है। (**2) निहारकीय अधिवास :** ऐसे अधिवास के मध्य में चौपाल, पंचायत घर, वट वृक्ष देव स्थान होता है।

6) आवासो के तीर प्रतिरूप –

ये अधिवास नदी के नुकीले मोड़ों पर बसे होते हैं। दक्षिण भारत में कन्याकुमारी, केरल, उड़ीसा, की चिल्का झील प्रदेश में सोनार नदी के मोड पर, बूढ़ी गंडक नदी के मोड़ों पर ग्राम तीर प्रतिरू में पाया जाता है।

7) पंखा प्रतिरूप –

गाँवो के एक किनारे पर किसी आकर्षण बिन्दु के होने पर मकानें का निर्माण हो जाते हैं। ये आकर्षण बिन्दु तालाब, नदी का किनारा, सड़क, बाग बगीचा पूजा स्थल के रूप में होता है। गाँव के मकानों की पक्तियाँ यहाँ. पर मिलकर पंखानुमा आकृति बनाती है। डेल्टाई व पर्वतपदीय प्रदेशों में ऐसे प्रतिरूप का निर्माण होता हैं। गोदावरी, कृष्णा, डेल्टा व हिमालय के पाद प्रदेशों में जहाँ पर भी कॉप पंखे मिलते हैं, वहाँ पर पंखा प्रतिरूप रखने वाले गाँव पाये जाते हैं।

8) तिरछी सीवन प्रतिरूप –

एक मुख्य सड़क से मिलने वाली कई उप सड़कों के निकट मोड़ पर मिलने के कारण यह प्रतिरूप बनता है। गाँव की मुख्य सड़क काफी महत्व पूर्ण होती है। इसी कारण इसमें तिरछी सड़के

आकर मिलती है वहाँ पर तिरछी सीवन प्रतिरूप बनता है।

9) आयताकार प्रतिरूप–

अधिकांश ग्राम आयताकार प्रतिरूप में पाये जाते है। इनका प्रमुख कारण खेतों की आकृति का प्रभाव है। गाँवो के खेतों का स्वरूप अधिकांशतः आयताकार के रूप में पाया जाता है। ऐसे मार्गों पर मोड़ कम पाये जाते हैं तथा भूमि का अधिक से अधिक प्रयोग सम्भव है। उत्तर प्रदेश मे जहाँ सघन व संयुक्त प्रकार के अधिवास पायी जाती है, जो कि आयताकार प्रतिरूप में होते। बिहार राज्य में शहाबाद जिले का ऐर गाँव, सारन जिले में सारधा ग्राम इस प्रतिरूप का सर्वोत्तम उदाहरण है।

10) खोखला आयताकार प्रतिरूप –

आयताकार ग्राम के मध्य का भाग जब बिना बना रह जाता है तब ऐसा प्रतिरूप बनता है। मध्य का खाली स्थान पुराने किले या स्थानीय प्रमुख व्यक्ति का निवास स्थान होता है। जिसके चारो ओर ग्राम फैलकर बस जाता है। कहीं कहीं इन स्थानों पर साप्ताहिक बाजार भी लगते हैं।

11) त्रिभुजाकार प्रतिरूप –

जब कोई सड़क या नगर दूसरी सड़क या नहर से मिलती है। परन्तु उसको पार नहीं करता तो ऐसे स्थान पर त्रिभुजाकार प्रतिरूप का बनते हैं। मकानों का बसाव नहर सडंक के किनारे पर जहा दूसरी सड़क आकर मिलती है तथा मिलने वाली सड़क या नहर के साथ होता हैं। इस प्रकार ग्राम का प्रतिरूप त्रिभुजाकार बन जाता है। पंजाब हरियाणा में ऐसे अधिवास मिलते है।

12) सीढी प्रतिरूप –

इस प्रकार के ग्राम पर्वतीय ढालानो पर बसे हैं। तथा विभिन्न ऊँचाई पर बसे होते हैं। इनके मकानों की पंक्तियाँ सीढीनुमा दिखाई पड़ती है, क्योंकि घरो का निर्माण कई भागों में बनते हैं। हिमालय पर्वतीय ढालों पश्चिमी घाट के ढालों पर इस प्रकार के ग्राम बसें मिलते हैं। हिमालय पर्वत क्षेत्रों में नदियों की घाटियों में पर्वत कूटों पर ढाल के अर्द्ध भागों पर बसे मिलते हैं। इनायत अहमद जी इस प्रतिरूप को सर्वोच्च रेखीय प्रतिरूप नाम दिया हैं इन क्षेत्रों में खेती का प्रतिरूप सीढीनुमा होता है। क्योंकि समोच्च रेखा का अनुसरण करते हैं। अधिवास इस सीढीदार भूमि के ऊपरी भाग पर बस जाती है तथा सीढीदार खेत के समान्तर फैल जाती हैं। इस प्रकार यह प्रतिरूप भूमि उपयोग के कटिबन्धों का ही परिणाम होता हैं। यह कटिबंध व घाटी के तल से लेकर पर्वत के ऊपरी भाग तक फैले होते हैं। इसकी आकृति घाटी की ओर उन्नतोदर (convex) प्रकार की होती है तथा यह जब नतोदर (concave) ढाल पर बनी होती है, तब इसकी आकृति भी नतोदर प्रकार की होती है।

13) वर्गाकार प्रतिरूप –

वर्गाकार और आयताकार प्रतिरूप दोनों आपस मे पूरक हैं। गाँव का बसाव–स्थान आकर्षण और विकर्षण दोनों ही कारणों से वर्गाकार रूप ले लेता है या फिर आयताकार रूप में बदल जाता है। ऐसा ग्राम या सड़क या बैलगाड़ी मार्ग के चौराहों पर स्थित होता है। बिहार के सारन के कैला और सांथी इस प्रकार के गाँव है।

14) चौकोर आवास प्रतिरूप –

इस प्रकार के प्रतिरूप मरूस्थलीय भाग में मिलते हैं। ग्राम के बाहर चहारदीवारी भी होती है मध्य में खुली आयताकार भूमि छोड दी जाती हैं मकान ऊँचे–ऊँचे होते हैं प्राकृतिक तूफानी शत्रुओं से सुरक्षा की जा से। हरियाणा, गुजरात में इस प्रकार के अधिवास हैं।

15) अर्द्धवृत्ताकार प्रतिरूप –

नदियों के तट पर बसे अधिवास प्रायः अर्द्ध वृत्ताकार प्रतिरूप वाले होते हैं। नदी तट का महत्व होने के कारण अधिवास उनके सहारे फैल जाती है। नदी के प्रवाह मार्ग की आकृति में भी ऐसा प्रतिरूप बनता है। उत्तर भारत में गंगा, यमुना, गोमती, हुगली तटों पर इस प्रकार के अधिवास मिलते हैं।

16) मालानुमा प्रतिरूप –

जब किसी बाढ़ के मैदानी क्षेत्रों या नहर के किनारे–किनारे काफी दूरी तक लम्बाई में मकानों का बसाव होता हैं। तब ऐसा प्रतिरूप माला में गुथे दानों लगता है। यह वास्तव में लम्बी और पंक्तिनुमा अधिवास है जो नहर नदी या सड़क के किनारे–किनारे एक रेखा में जाते हैं।

तराई क्षेत्रों जहाँ नहरी सिंचित क्षेत्र में ऐसे अधिवास विशेष रूप से पाये जाते हैं। कभी–कभी अधिवास दो या दो से अधिक मकानों की मालाऐ के रूप में होती हैं। यह नहर की शाखा की संख्या पर निर्भर करता हैं। डेल्टाई भाग में नदियों की शाखाओं के किनारे के भू–भाग भागों पर मालानुमा प्रतिरूप रखने वाली ग्रामीण अधिवास मिलते हैं।

17) एल आकार प्रतिरूप –

वह बसाव–स्थान, जहाँ से रेखीय शक्तियाँ एक दूसरे से समकोण बनाते हुए मिलती हैं, वहाँ पर अंग्रेजी के एल–अक्षर जैसा प्रतिरूप बन जाता है। यह आयताकार और वर्गाकार प्रतिरूप का पूरक है। दो रेखीय शक्तियाँ दो सड़के और बैलगाड़ी मार्ग हो सकता है। यहाँ किसी नदी से कोई सड़क समकोण बनाते हुए मिलाती हैं। उत्तर प्रदेश व बिहार राज्यों में ऐसे अनेक अधिवास दिखाई पडते है।

18) दोहरा न्यास्टिक प्रतिरूप –

जब दो ग्राम परस्पर एक साथ ही बसाव स्थान पर बस जाते हैं तब ऐसा प्रतिरूप बनता हैं। यह दोनों ग्राम प्रशासकीय व मालगुजारी के उद्देश्य से तो अलग हो सकते हैं। लेकिन भौगोलिक दृष्टि से इन्हें अलग नहीं किया जाता हैं। कभी–कभी एक गाँव दो स्थानों पर बस जाने से ऐसा प्रतिरूप बन जाता हैं। गाँव की मुख्य अधिवास से कुछ दूरी पर जब कोई रेलमार्ग या सड़क मार्ग बन जाता है, तब वहाँ पर भी अधिवास का निर्माण हो जाता हैं उत्तर प्रदेश और बिहार के मैदान में ऐसे गाँव अधिक पाये जाते हैं।

19) अनियमित प्रतिरूप –

यह प्रतिरूप प्रकीर्ण अधिवासों की आपेक्षा सघन अधिवासों में बनता हैं। बड़े आकार की सघन बस्तियों में मकान बिना किसी निश्चित योजना के अनियमित तरीके से एक स्थान पर ऐसे बन जाते हैं कि न तो उनके वाह्यरूप का और न ही आन्तरिक प्रतिरूप का पता लगता तब ऐसे प्रतिरूप अनियमित प्रतिरूप कहलाता है। मध्य गंगा के मैदान में ऐसे अनेक गाँव मिलते हैं। के0एच0 वुशमैन ने भारत का एक मानचित्र बनाकर अनियमित प्रतिरूप वाले ग्रामों का वितरण दर्शाया है।

20) आकार प्रतिरूप –

भारत के अधिवास गाँव इसी तरह के हैं। प्रत्येक मकान उस स्थान पर बस गया, जहाँ उसको सुविधा जनक स्थान मिला। घर बनने के बाद ही गलियों और सड़कों का विकास हुआ। इसलिए इन अधिवासों की कोई आकृति नहीं बन पायी। ऐसा गाँव, जहाँ अनेक पुरवे, नगले बन जाते हैं तथा वह बहुत छोटे आयत के रूप होते हैं एवं प्रमुख ग्राम विभिन्न मार्गों द्वारा एक दूसरे से जुड़े है तब

अधिवास का कोई प्रतिरूप नहीं बनता इसलिए उन्हें अनाकार प्रतिरूप में शामिल है। उत्तर प्रदेश के मैदानी भागों, बिहार के बाढ़ क्षेत्रों में तथा मध्य प्रदेश के भोपाल, आन्ध्रप्रदेश के नालागोंडा तमिलनाडु के उत्तरी पश्चिमी भाग में अनाकार प्रतिरूप वाली अधिवास पाई जाती है।

22) बहुभुजीय प्रतिरूप –

यह वृत्ताकार प्रतिरूप का ही विकस है, जबकि गाँव कुछ सड़कों से सहारे आगे की ओर फैल जाता है और बहुभुजीय रूप ले लेता हैं शुष्क क्षेत्रों में बहुभुजीय प्रतिरूप वाले ग्राम पाये जाते हैं।

3.9 सारांश

आपने इस इकाई में वितरण तथा आकार को भलीभाँति समझ गये होगें इनके निर्धारण में आधारभूत सुविधाओं का, धरातलीय स्वरूप एवं यातायात के प्रभाव का अध्ययन किया हैं। आवासों के वितरण के अध्ययन में उनके आकार के प्रकार के अध्ययन का विशेष महत्व है जो कि उनके घनत्व और प्रतिरूप पर प्रभाव डालता है।

आप इस इकाई में किसी स्थान में आवासों के प्रकीर्णन को प्रभावित करने में भौतिक, सांस्कृतिक–आर्थिक कारकों के योगदान को अच्छी तरह से समझ गये होगें। अधिवासों के संकेन्द्रण एवं परिमाप के मापन हेतु विभिन्न सांख्यिकीय गणितीय विधियों की उपादेयता को प्रस्तुत किया जाता है।

3.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श नगर

1) ग्रामीण अधिवासों के वितरण निम्नलिखित में से किस विशेषता से पता नहीं लगाया जा सकता–

   अ) प्रकीर्णन ब) घनत्व स) सामाजिक द) अन्तराल

2) भारत में कौन सा भू–भूभाग सबसे अधिक ग्रामीण बस्तियाँ पाई जाती है–

   अ) मालवा पठार ब) विध्यांचल प्रदेश

   स) छोटा नागनपुर का पठार द) उदयपुर–ग्वालयिर प्रदेश

3) भारत का कौन सा प्राकृतिक प्रदेश में गाँवों की संख्या अधिक है–

   अ) पर्वतीय प्रदेश ब) विशाल मैदान

   स) पठारी प्रदेश द) समुद्र तटीय प्रदेश

4) किस राज्य में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व पाया जाता है–

   अ) बिहार ब) बिहार

   स) पश्चिम बंगाल द) राजस्थान

आदर्श उत्तर–

1) स 2) अ 3) ब 4) अ

3.11 सन्दर्भ सूची

1. Mukerji, A.B. 1970 : Spacing of Rural settlements in Assam : A spatial Analysis, Geographical

outlook.

2. Mather : C.E. 1944 : A linear Distance map farm population in the united states.
3. Tiwari R.C. 1984 : Settlement system in Rural India : A case study of the lower ganga-yamna, Allahabad Geographical socity, Allahabad.
4. Roy, Kumum 1989 : Fatehpur District : A study in Rural settlement geography.
5. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज
6- करन, एम0पी0,ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर
7. डॉ0 एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज

3.12 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

प्रश्न–1 भारत में ग्रामीण अधिवासों के वितरण प्रतिरूप पर प्रकाश डालिए?

प्रश्न–2 भारत में गाँवों का वितरण असमान है, सिद्ध कीजिए।

प्रश्न–3 अधिवासों के प्रकीर्णन से आप क्या समझते है, इसकी व्याख्या कीजिए।

इकाई –4 ग्रामीण अधिवासो के प्रकार

इकाई की रूप रेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 अधिवासों के प्रकार के आधार

4.3 ग्रामीण अधिवासों का चिरसम्मत वर्गीकरण

4.4 समूहन एवं प्रकीर्णन की विधियाँ

4.5 समूहन एवं प्रकीर्णन को प्रभावित करने वाले कारक

4.6 ग्रामीण अधिवासों के प्रमुख प्रकार

4.7 भारत में ग्रामीण अधिवासों के प्रकार

4.8 उत्तर प्रदेश में ग्रामीण अधिवासों के प्रकार

4.9 सारांश

4.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

4.11 सन्दर्भ सूची

4.12 अभ्यास प्रश्न

4.0. प्रस्तावना

अधिवास वातावरण और मानव द्वारा निर्मित भूदृश्यों के आपसी सम्बन्धों को बताने वाली इकाई है। ये भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों से मिलकर बना हैं ये मानवीय कार्यकलाप व प्राकृतिक वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रकट दर्शाती हैं। इनके प्रकारों पर मानवीय एवम प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव पड़ता है। इस तरह भूमि के सुनिश्चित क्षेत्र पर ग्रामीण घरो के समूह की विशेषता को बताता है, जिसको मौजा कहते हैं संक्षेप में ग्रामीण आवासों का 'प्रकार' उनमें स्थित घरो की संख्या तथा उनके मध्य की दूरी के आधार पर निर्धारित किया है। किसी क्षेत्र में आवासों के वितरण प्रतिरूप से गाँव के घरो में ऐसी विशेषताओं का क्या होता है जिनके कारण वे दूसरे क्षेत्र के अधिवासों से अलग लगते हैं इन विशेषताओं के विकास में भौतिक–सामाजिक–आर्थिक कारकों की प्रमुख भूमिका होती हैं। ऐसे अधिवासीय प्रकारों की पहचान, उनके समय एवं स्थानिक पक्षों के विश्लेषण तथा उनकी आवास समस्याओं के निरूपण से प्रादेशिक स्तर पर उनके प्रबन्धन हेतु योजनायें बन सकती हैं सामान्यतः एक अधिवासीय प्रकार की समस्यायें मुख्यतः एकसमान होती हैं तथा उनके निराकरण हेतु एक समान नियोजन नीति बनायी जा सकती है।

4.1. उद्देश्य

यह अधिवास भूगोल को चतुर्थ इकाई है इसमें आप यह समझ सकेगें कि–

- ग्रामीण अधिवासों के प्रकार में भवनों की संख्या तथा उनके मध्य दूरी के आधार पर सीमांकन करेंगे।
- आवासों के आकार, बसाव, रचना विन्यास को व्याख्या कर सकेंगें।
- ग्रामीण अधिवासों का समूहन एवं प्रकीर्णन पर किन–किन कारकों का योगदान हेाता है आप जान जायेंगें।
- बसाव एवं सघनता तथा प्रकीर्णन के आधार ग्रामीण अधिवासों की व्याख्या कर सकेगें।

4.2. अधिवासों के प्रकार के आधार

अधिवास के प्रकार में स्थान एवं बसाव के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है। रूसों ने बताया है कि अधिवासों पर भौगोलिक तत्वों का प्रभाव होता है, जो मकानों की एकत्रीकरण में उनके आपसी सम्बन्धों के बारे में बताती हैं। वास्तव में एक ग्रामीण अधिवास प्रमुख रूप से कृषि वर्कशाप है। इसी कारण इसको भूमि से अलग नही कर सकता है। इसका उपयोग इस अधिवास द्वारा ही सुनिश्चित किया जाता है। इसका आकार और एकत्रीकरण अधिवास के कार्यो, कृषि तकनीक तथा मिट्टी के उपयोग पर निर्भर है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर अधिवासों के प्रकार कई आधारों पर निर्धारित किये जा सकते हैं, जिनमें कुछ प्रमुख आधार इस प्रकार हैं –

1. ऐतिहासिक विकास :– गाँवों का जन्म प्राचीन काल से लेकर आज तक सम्बन्धित मानी जाती है। भारत का विशाल मैदान प्राचीन गाँवों के बारे में साक्ष्य देता है। गंगा यमुना दोआब में अनेक बड़े–बड़े गाँव प्राचीन काल से लकर मध्य काल तक से सम्बन्ध रखते हैं। अनेक गाँव प्राकृतिक कारणों जैसे नदी के मार्ग परिवर्तन, बाढ़ आदि की वजह से आपना पूर्व उत्पत्ति स्थान नष्ट कर चुके हैं तथा नए स्थानों पर उन्होंने आपना विकास कर लिया है।

2. बसाव स्थान व बसाव स्थिति:– इस आधार पर ग्रामीण अधिवासों को इस प्रकार रखते है।

(i) पर्वतीय ढालों पर बसे अधिवास (ii) घाटी के किनारे बसे अधिवास (iii) नदी के किनारे बसे अधिवास (iv) सड़क मार्ग के अधिवास (v) तालाब या जलाशय के निकट स्थित अधिवास।

3. जनसख्या का आकारः– गाँवों की जनसंख्या भी वर्गीकरण का एक मुख्य आधार हेाती है अति वृहद् आकार 10,000 से अधिक वृहद् आकार 5,000 से 10,000 मध्यम आकार 2,000 से 5,000 लघु मध्यम 1,000 से 2,000 लघु आकार 500 से 1,000 एवं अति लघु आकार 500 से कम

4. कार्यात्मक विशेषता :– इसके आधार पर गाँवों को कृषि गाँव, मत्स्य गाँव, खनन गाँव, पशुचारक गाँव आदि वर्गों में रख सकते है। यह गाँव को व्यवसाय की प्रधानता के आधार पर परिचय कराते हैं।

5. मकानों की संख्या व मकानों के बीच पारस्परिक दूरियाँ :– आज के समय में गाँवों के प्रकार, बस्ती में मकानों के वितरण की व्यवस्था को जोड़कर समझाने का प्रयास किया गया है। इन प्रकारों पर अनेक मानवीय एवं प्राकृतिक कारकों का प्रभाव है। मकानों की संख्या बस्ती के बारे में बताती है, लेकिन बसाव प्रक्रिया एवं स्थानिक वितरण प्रारूप अधिवास में मकानों के बीच की दूरी को बताते हैं। कहीं–कहीं मकान अधिवास में आपस में इतने समीप स्थापित हो जाते है कि वह अधिवास हो जाता है, तो कहीं–कहीं मकान एक दूसरे से दूरी पर स्थापित हो जाते है, तो वह मकानों के यत्र–तत्र

बिखरे होने के कारण बिखरे रूप में पाये जाते है। सामान्यतः अधिवासों को चार प्रकारों में रखा जाता है। (i) सघन (ii) संयुक्त (iii) उपखण्डित (iv) खण्डित

4.3. ग्रामीण अधिवासों का चिरसम्मत वर्गीकरण

आवासों के, बसाव प्रतिरूप, उनके आकार रचना विन्यास, कार्य आदि विशेषताओं के आधार पर ग्रामीण अधिवासों के दो मुख्य प्रकार में बॉटते हैं – (1) एकल या प्रविकीर्ण (Isolated or dispersed) ग्रामीण अधिवास, तथा (2) सामूहिक, न्यष्टित, गुच्छित, ठोस या सघन (Agglomerated, Nucleated, Clustered or Compact) ग्रामीण अधिवास। ग्रामीण अधिवासों का यह एक अत्यन्त, प्राचीन एवं चिरसम्मत वर्गीकरण है जिसका उपयोग अगस्त मीट्जन के समय से ही होता रहा है। ये अधिवासों की बसाव के तहत की दो प्रक्रिया से हेाती हैं जिसमें एक और अलग–अलग बसे हुए घर या कृषि गृह या वास गृह पाये जाते हैं जो बसाव की प्रारंभिक अवस्था के परिचय कराती हैं तो दूसरी ओर नजदीक सटे हुये मकानों या झोपड़ियों के समूह हैं जो अधिवास की वृद्धावस्था के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। भौतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ–साथ इनमें बदलाव भी देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका के एकल अधिवासों ने वर्तमान में विकसित होकर जहाँ एक तरफ बड़े ग्रामों, कस्बों, नगरों एवं महानगरों के रूप स्थापित है वहीं भारत में चकबन्दी, जमीन्दरी उन्मूलन आदि भूमि सुधारों तथा सिंचाई एवं परिवहन की सुविधाओं में विकास के कारण प्राचीन सघन बसे गाँवों से दूर हटकर लोग खेतों एवं चौराहों की तरफ उन्मुख हो रहे हैं।

4.4. समूहन एवं प्रकीर्णन निर्धारण की विधियाँ

समूहन के सन्दर्भ में डॉ0 रामबली सिंह ने वाराणसी जनपद के ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों के निर्धारण हेतु जिले के सभी पंचायत में ग्रामों को संख्या (Vn), पूरवों की संख्या (Hn) तथा अध्यासित इकाई की संख्या के आधार पर सघन, अर्द्ध सघन, आपखण्डित एवं प्रविकीर्ण की पहचान हेतु सारणी का उपयोग किया है।

सारिणी

ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों का निर्धारण	ग्राम पुरवा	अधिवास प्रकार
Hn	Vn	संहत (Compact)
Hn	Vn + 1 to Vn x 2	अर्द्धसंहत(Semi-compact)
Hn	Vn x 2 + 1	पुरवायुक्त (Hamleted)
Hn	to OUn	प्रविकीर्ण (Dispersed)

Hn = पुरवों की संख्या, Vn = ग्रामों की संख्या, OUn = अध्यासित इकाई की संख्या

डॉ0 नकवी ने फरुर्खाबाद जिले के ग्रामीण अधिवासों के अध्ययन में सिंह के उपरोक्त प्रारुप में संशोधन कर यह बतायाा कि न्याय पंचायत स्तर पर ग्रामों की तुलना में पुरवों की संख्या की दोगुना, चौगुना तथा आठगुना होने पर ग्रामीण अधिवासों को क्रमशः संहत, अर्द्ध–संहत तथा पुरवा युक्त वर्गो में सम्मिलित हो सकता हैं।

उनके अनुसार उस पंचायत को जिसमें ग्रामों की संख्या पुरवों की संख्या के समान होती हैं, इसे सघन अधिवास के रूप में सम्मिलित किया है। जब पुरवों की संख्या गाँवों की संख्या से अधिक होती है लेकिन यह दुगुने से कम होती है तो अधिवास को अर्द्ध–सघन कहते है। इसी प्रकार उन प्रदेशों में जहाँ पुरवों की संख्या ग्रामों की संख्या के दुगुने से अधिक होती है आपखण्डित प्रकार के अधिवास होते हैं लेकिन प्रविकीर्ण अधिवासों में पुरवों की संख्या तिगुने से भी अधिक जाती है।

प्रो0 आर0सी0 तिवारी ने न्याय पंचायत स्तर पर गाँवों एवं पुरवों की संख्या, ग्रामों के घनत्व एवं अन्तर के आधार पर पृथक सममान रेखा (Isopleth) मानचित्रों की अध्यारोपित कर निचले गंगा–यमुना द्वाब क्षेत्र में अधिवासों के भेद करने का प्रयास किया है।

4.5. समूहन एवं प्रकीर्णन को प्रभावित करने वाले तत्व

ग्रामीण अधिवासों का समूहन एवं बिखराव अनेक भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक तत्व द्वारा निर्धारित होता है। इनमें से यदि कुछ सार्वभौमिक हैं जिनका प्रभाव सभी जगह दिखाई पड़ता है तो दूसरे क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर ही प्रभावशाली दिखाई पड़ते हैं।

भौतिक कारकों में धरातलीय उच्चावच, ढाल प्रवणता, मृदा विशेषता एवं उर्वरता, जल की उपलब्धता, आदि का ग्रामीण अधिवासों का एकत्रीकरण एवं प्रकीर्णन को प्रभावित करते है। मुख्यतः समतल मैदानी क्षेत्रों में जहाँ पेय जल की सुविधा उपलब्ध है तथा कृषि का समुचित विकास हुआ है सघन बस्तियों की प्रधानता होती है। लेकिन पर्वतीय, पठारी एवं बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में प्रविकीर्ण आवासों का वितरण पाया जाता है। सामाजिक कारकों में सुरक्षा, सामुदायिक जीवन, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परम्पराओं सम्मिलित करते है विशेष कर सुरक्षा का अधिवासों के समूहन एवं प्रकीर्णन अधिवासों अधिक दिखाई पड़ते हैं।

आर्थिक कारकों में भू–स्वामित्व, भू–धारिता, भूमि उपयोग, कृषि पद्धति, कृषि गहनता, भूमि सुधारों आदि का महत्व हैं जैसे भारत में गंगा मैदान के अधिकांश क्षेत्रों का बसाव सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत हुआ जिसमें ग्राम की सम्पत्ति पर सामन्तों, तालुकेदारों, जमीन्दारों एवं स्थानीय राजाओं का वर्चस्व माना जाता था। ये स्थानीय जनता से लगान वसूलते थे एवं बदले में उन्हें भूमि पर खेती करने का अधिकार देते थे और वाह्य आक्रमणकारियों से सुरक्षा प्रदान करते थे। इससे गढ़ों या दुर्गो के चतुर्दिक अनेक संहत ग्रामों का विकास हुआ।

4.6. ग्रामीण अधिवासों के प्रमुख प्रकार

बसाव की सघनता एवं प्रकीर्णन के आधार पर ग्रामीण अधिवासों को मुख्यतः 4 प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता हैं –

1. सघन ग्रामीण अधिवास
2. अर्द्ध सघन ग्रामीण अधिवास
3. पुरवा युक्त ग्रामीण अधिवास
4. प्रविकीर्ण ग्रामीण अधिवास

सघन ग्रामीण अधिवास :– इन्हें गुच्छित, संकेन्द्रित न्यष्टित एवं सामूहिक आदि कई नामों से जाना जाता है। सघन अधिवास एकल–केन्द्रीय होता है जिसमें मकान या झोपड़ियाँ नजदीक सटे हुए एक संस्थिति पर बसे एवं फैले होते हें तथा इनके चारों ओर खेत, खलिहान या बगीचे स्थित होते हैं।

सघन ग्रामीण अधिवासों को उनके आकार के आधार पर नगला, पुरवा या पल्ली, ग्राम, ग्राम्य नगर या ग्रामीण हाट/बाजार आदि कई वर्गो में विभाजित किया जाता है।

सघन अधिवास में कई परिवारों के आवास एक इकाई भूमि पर गुछित रूप में पाये जाते हैं जिसमें विभिन्न जातियों, के लोग विभिन्न धर्मो, व्यवसायों एवं संगठनों के लोगों के साथ रहकर सामुदायिक जीवन जीते हैं। इसमें एक मौजा के सभी आवास एक स्थल पर ही केन्द्रित होते है। इन अधिवासों के चारों ओर फैले भू–संसाधनों के दोहन और उपयोग मे सामूहिक प्रयत्न किये जाते हैं इन अधिवासों के उद्भव एवं विकास में भौतिक सुविधाओं के एक स्थान पर होने से जिसमें सुरक्षा सांस्कृतिक–राजनीतिक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान पाया जाता है। वास्तव में भूमि एवं भौतिक संसाधनों के विकास हेतु (जैसे घने बनों को साफ कर कृषि क्षेत्रों में परिणत करने हेतु) पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता होती है और लोगों की छोटी–छोटी अधिवासीय इकाइयों में एक साथ रहने लगते जिससे सामूहिक अधिवासों का जन्म होता है। बाढ़, भूकम्प, सूखा, झंझावत, डकैती, आक्रमण आदि प्राकृतिक एवं मानवीय आपदाओं से सुरक्षा हेतु पारस्परिक सहयोग बड़ा आवश्यक था जिससे समूहन की प्रवृत्ति को बल मिलता है।

सामूहिक अधिवास मनुष्य की सामूहिक सहभागिता की नैसर्गिक प्रवृत्ति का भौतिक–सामाजिक स्वरूप है। प्राचीनकाल से ही मानव समुदाय में रहना चाहता है जिसमें कृषि आदि व्यवसायों को मदद मिलती रही है। यहाँ तक कि पश्चिम के व्यक्तिगत या पारिवारिक स्वतंत्रता प्रधान समाज में भी नगरों के रूप में सघन अधिवासों का विकास हुआ हैं।

1. विकास के कारक– सामूहिक अधिवासों की उत्पत्ति एवं विकास में प्राकृतिक और सांस्कृतिक दोनों ही प्रकार के तत्वों का प्रमुख योगदान है परन्तु इनमें सांस्कृतिक कारक अधिक महत्वपूर्ण होते है। इन कारकों में (अ) सुरक्षा, (ब) सामुदायिक परस्पर निर्भरता, एवं (स) आर्थिक–सामाजिक संगठन का स्थान मुख्य है।

(अ) सुरक्षा– प्राचीन काल से ही सुरक्षा मानव अधिवासों का मुख्य उद्देश्य रहा है। मुख्य रूप से अध्ययन किया जाय तो अधिवासों का निर्माण इसी उद्देश्य से प्रेरित रहा है। प्राचीन मानव ने हिंसक जंगली पशुओं से रक्षा हेतु आवासों को गढ़ा था। जहाँ वह निश्चित होकर आराम कर सके एवं आपनी थकान को दूर कर सके। पर्वतीय गुफायें, वृक्षों के मचान, झोपड़ियाँ, दीवाल से घिरे ग्राम, खाई से संरक्षित दुर्ग आदि इसी दिशा में किये गये प्रयास का ही परिणाम हैं। कृषि के विकास के साथ–साथ अधिवासों में स्थायित्व आया परन्तु अनाज भण्डारों एवं कृषिकों की सम्पत्ति की लूट आदि से सुरक्षा हेतु कई परिवारों के एकजुट होकर रहने एवं वाह्य आक्रमणकारी से रक्षा करने की आवश्यकता पड़ी जिससे सामूहिक अधिवासों का विकास हुआ। फासेट महोदय के अनुसार कई सदियों तक सुरक्षा मानव जीवन का प्रमुख कारण था जिसने उसके निवास्य भूमि वितरण तथा कृषि पद्धति को प्रभावित किया है।

(ब) सामुदायिक परस्पर निर्भरता– मानव एक सामाजिक प्राणी रहा है। जहाँ आदिम मानव पशुओं के शिकार एवं वन्य वस्तुओं के संग्रह आदि में सामूहिक रूप से कार्य करता था वहीं कृषि कार्य की शुरूआत के साथ–साथ सामुदायिक जीवन को और भी महत्व मिलने लगा। प्राचीन जीवन निर्वाहक कृषि में, जिसमें अधिकांश कृषि–कार्य मानव एवं पशु श्रम पर आधारित था, खेतों की जुताई, फसलों की बुआई, सिंचाई, निराई, गुड़ाई, कटाई, मड़ाई, ढुलाई आदि के साथ–साथ गृह–निर्माण, पशु–चारण, पशुओं की देख–भाल आदि विभिन्न कार्य पारस्परिक सहयोग पर आधारित थे। और यही चल कर श्रम विभाजन का आधार बना। जिससे भारत में यजमानी प्रथा के अन्तर्गत पुरोहित (ब्राह्मण), नाई,

बारी, धोबी, कुम्हार, बढ़ई, लुहार आदि जाति पर आधारित विशिष्ट पेशों का प्रादुर्भाव हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त वर्तमान आर्थिक विकास, जिसे आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रतिफल कहा जा सकता है, और यह सब मानवीय सहयोग के बिना सम्भव नहीं हो पाता। यह विलक्षण वृद्धि के बदौलत आगे बढ़ा है उससे अधिक उसके उत्थान में सामुदायिक जीवन का विशेष योगदान रहा है। आज का मानव अत्यधिक भौतिकवादी जीवन व्यतीत कर रहा है जिससे सामुदायिक परस्पर निर्भरता में और ज्यादा भी वृद्धि हो गयी।

(स) आर्थिक–सामाजिक संगठन– आर्थिक सामाजिक संगठन मनुष्य की सामुदायिक प्रवृत्ति का ही परिणाम है जिसके कारण औजार–निर्माण, वन्य पशुओं के सामूहिक शिकार, पशुओं को पालतू बनाकर कृषि आदि कार्यो में उपयोग से ही कृषि कार्यों के व्यवसाय का विकास संभव हो सका। आर्थिक तंत्र सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करता है एवं स्वयं भी उससे प्रभावित होता रहता है। जैसे, भारत के गंगा मैदान के उपजाऊ भागों में कृषि आर्थिक व्यवस्था के प्रभावशाली होने का मुख्य कारण विशिष्ट सामुदायिक जीवन का विकास है। जिसके अन्तर्गत श्रम विभाजन के तहत जाति प्रथा जैसे सामाजिक संगठन का जन्म हुआ। कृषि, उद्योग, व्यापार आदि आर्थिक क्रियाओं हेतु लोगों के संगठित होने अथवा भूमि आदि प्राकृतिक संसाधनों के दोहन एवं उपयोग हेतु सामाजिक संगठनों के विकास से समूहन की प्रवृत्ति को बल मिलता है जिससे सघन अधिवासों का विकास होता है। भारत के गंगा मैदान के गाँवों में आर्थिक अन्योन्याश्रयता के प्रबल प्रभाव के कारण सामाजिक वियोजन निष्प्रभावी हो जाता है जिससे ग्राम एक क्रियाशील कार्यात्मक इकाई के रूप में कार्य करता है यही कारण है कि इसका बसाव प्रतिरूप सघन से अर्द्ध सघन रूप में पाया जाता है।

स्थायी कृषि ने स्थायी ग्रामों के विकास के साथ–साथ सामूहिकता की भावना के पनपते का अवसर दिया है। सामूहिकता की इसी भावना को कायम रखने के लिये गाँव की भूमि एवं सम्पत्ति पहले सामुदायिक स्वामित्व के अन्तर्गत थी जो बाद में कहीं सामन्तवादी कहीं व्यक्तिगत स्वामित्व के अन्तर्गत पाई जाती है।

(द) प्राकृतिक कारक– अधिवासों के समूहन को प्रभावित करने में प्राकृतिक कारकों का स्पष्ट प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है लेकिन ये कारक समूहन की संभावना के विकास में महत्वपूर्ण हो जाते हैं। समतल एवं चौरस मैदान, प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप से प्राप्त जलापूर्ति के स्रोत, उपयुक्त, जलवायु, उपजाऊ मिट्टी आदि ऐसे प्रमुख कारक हैं जो किसी भी क्षेत्र की निवास स्थान को निर्धारित करते हैं। इनकी सर्वसुलभता (Ubiquity) विकीर्ण बसाव को प्रोत्साहित करती है परन्तु सुरक्षा एवं सामूहिक श्रम की आवश्यकता जैसे सांस्कृतिक कारकों की प्रबलता अथवा पेय जल की विरलता एवं बाढ़ आदि से सुरक्षित स्थानों की कमी आदि से अधिवासों का समूहन प्रभावित होता है। नवीन मृदा एवं बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में जहाँ पर्याप्त जल एवं उपजाऊ कृषि–भूमि सुलभ है अधिवासों के निर्माण हेतु बहुत कम सुरक्षित स्थान मिलते हैं। अतः इन क्षेत्रों में नदियों के ऊँचे प्राकृतिक तटबंधों, कगारों, नदी द्वारा छोड़े हुए दियारों एवं टीलों को ऊँचा कर अधिवासों के निर्माण हेतु प्रयोग किया गया है जिनमें घनी बस्तियों का बसाव दिखाई पड़ता है। गाजीपुर में गंगा के दियारा क्षेत्र में बसा गहमर गाँव इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

2. वितरण– विश्व में सामूहिक ग्रामीण अधिवासों का सर्वाधिक वितरण मानसून एशिया, लैटिन अमेरिका, सोवियत रूस तथा यूरोप के कुछ क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है। इन अधिवासों की सर्वाधिक संख्या और विस्तार मानसून एशिया के क्षेत्र में देखा जाता है। जहाँ विश्व की दो तिहाई अधिक जनसंख्या निवास करती है। संहत अधिवास भारत, चीन, जापान, कोरिया, वियतनाम, कम्बोडिया, बर्मा, मलयेशिया, श्रीलंका आदि की संस्कृति, जीवन शैली और राष्ट्रीय जीवन के आधार का प्रतीक हैं। यहाँ

का सामाजिक–आर्थिक स्वरूप सघन बस्ती के अनुरूप पाई जाती है। जापान (जहाँ नगरीकरण की प्रधानता है) को छोड़कर इन देशों में अभी भी 60 से 90ः जनसंख्या गाँवों में निवास करती है जिसमें कृषि का जीविकोपार्जन एवं अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती है। जिसमें प्रमुख देशों अधिवासों का वितरण इस प्रकार है जैसे–

(अ) भारत – भारत के विशाल उत्तरी मैदान में पश्चिम में पंजाब से लेकर पश्चिमी बंगाल तक के विशाल क्षेत्र में सघन सामूहिक अधिवासों की अधिकता पायी जाती है। इसके अतिरिक्त इसका वितरण असम, त्रिपुरा, उड़ीसा के तटवर्ती भाग, मध्य प्रदेश के महानदी घाटी क्षेत्र, दक्षिणी भारत के कावेरी एवं वैगाई घाटी क्षेत्रों, कर्नाटक के मैदानी क्षेत्रों में आन्ध्र प्रदेश के रायलसीमा क्षेत्र में भी संहत अधिवासों का वितरण देखा जाता है। कुल मिलाकर देश के उपजाऊ एव मैदानी भागों में जहाँ अतीत में सुरक्षा का अभाव था एवं कृषि में सामुदायिक श्रम की आवश्यकता थी इनके विकास को समुचित प्रोत्साहन मिला है। इन अधिवासों में भवनों के समूह आड़ी–तिरछी, संकरी एवं घुमावदार गलियों द्वारा अलग किये जाते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बंगाल, तामिलनाडु, मराठवाड़ा के सघन अधिवासों में कई पुरवे या नगले मिलते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तरी बिहार में मुख्य संस्थिति को कलाँ, बुजुर्ग आदि नामों से तथा पुरवों को खुर्द आदि नामों से पुकारा जाता है। जाति–स्तरण के कारण बहुधा ये पुरवे इनमें बसने वाली जातियों के नाम से जाने जाते हैं जैसे–अहिरान, कुर्मियान, ठकुरान, पसियान, चमरौटी आदि। ऐसे अधिवासों को संयुक्त या अर्द्ध सघन कहा जाता है।

उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में मुख्यतः पूर्व से पश्चिम की ओर जनसंख्या का घनत्व घटता जाता है परन्तु इसके विपरीत ग्रामों के आकार में वृद्धि भी देखी जाती है। यही कारण है कि मेरठ, मुजफ्फरनगर, मथुरा, आगरा आदि जनपदों में गाँवों की आकार काफी बड़ा होता है। इन गाँवों के बसाव क्रम में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कारकों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

(ब) चीन – चीन जहाँ की अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में निवास करती हैं, सामूहिक अधिवासों की प्रधानता पाई जाती है। ये अधिवास 'ग्रिड' आकृति के चौकोर रूप में होते हैं। अतीत में सुरक्षा के लिए गाँवों के चारों ओर मिट्टी की दीवाल का सुरक्षात्मक बाउण्ड्री बना दिया जाता था। अनेक गाँव यहाँ दोहरी कतार में पाये जाते हैं जिनमें आवास किसी सड़क, नहर एवं नदी कगार के पास में लम्बाई में स्थित होते हैं। लेकिन अधिकतर चीनी ग्राम किसी देवालय के चतुर्दिक स्थित सघन अधिवासों के रूप में पाये जाते हैं। चीन में अधिकांश ग्रामों के बसाव का श्रेय किसी एक विशेष कुल या खानदान को जाता है जो बाद में बढ़कर कई उपकुलों में बंट जाता है एवं तदनुरूप अधिवासों के क्षेत्र (खेत), बाग–बगीचे आदि भी बट जाते हैं। यहाँ ग्राम की इकाई परिवार होता है न कि व्यक्ति जो एक प्राथमिक सामाजिक एवं आर्थिक गाँव के सार्वजनिक क्षेत्र बंजर भूमि एवं संसाधनों आदि में भी हिस्सा होता है। समूचे निवासियों को पूजास्थलों, कब्रगाहों आदि की भी देख–रेख करनी पड़ती है। एकता का आधार पर्व–त्यौहारों, मेलों, सिंचाई, कृषिगत कार्यो तथा आपातकालों में दिखाई पड़ता है। बहुधा मत्स्य पालन–क्षेत्र, सिंचाई के स्रोत, मार्ग एवं चौपाल आदि सार्वजनिक होते हैं।

(स) जापान – पूर्वी एवं दक्षिणी एशिया के अन्य देशों की ही भाँति जापान में भी मुख्यतः संहत अधिवासों का वितरण पाया जाता है। विशेषकर समुद्रतटीय मैदानी भागों में जहाँ चावल की खेती के साथ–साथ मछली पालन तथा रेशम कीट पालन व्यवसाय अधिक लोकप्रिय है सामूहिक गाँव जापानी सामाजिक व्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इन गाँवों के लोग प्रायः साथ–साथ काम करते हैं तथा मनोंरंजन आदि के लिये सामूहिक खेलों में साथ–साथ भाग लेते हैं। मितव्ययी प्रकृति के कारण ग्रामीण निवासियों एवं श्रमिकों की मजदूरी जापान में कम पाई जाती है जिसके कारण जापान की बनी वस्तुएँ विश्व बाजार में सस्ती होती हैं। हॉल महोदय के अनुसार जापान के अधिकांश संहत गाँवों

में धान–क्षेत्र की जीवन निर्वाहक पद्धति को अच्छी तरह से अपनाया गया है।

(द) जावा– जावा में भी जापान की ही भाँति उपजाऊ निचले मैदानी भागों की कमी पाई जाती हे। यहाँ की ग्रामीण बस्तियाँ सामान्यतः संहत रूप में पाई जाती है जिसमे एक स्थान पर कई आवास पास–पास पाये जाते हैं। यहाँ के लोग अधिकांशतः कृषि कार्य करते हैं। धान की कृषि की प्रधानता एवं प्रचलित सामाजिक व्यवस्था से सामूहिक अधिवासों के विकास को बल मिला है। ग्रामवासियों का समुदाय भू–स्वामी–कृषक पट्टेदार और कृषि श्रमिक मे बंटा होता है जिनमें परस्पर सहयोग की भावना पाई जाती है। इनमें कोई सामाजिक वर्ग विभेद नहीं दिखाई पड़ता है।

(य) पाकिस्तान– पाकिस्तान में भी सामान्य सघन अधिवासों की अधिकता है जिसमें सुरक्षा की भावना, जलापूर्ति एवं सामाजिक व्यवस्था ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वस्तुतः अर्द्धशुष्क भागों में जल का विशेष महत्व होता है अतः जलापूर्ति एवं क्षेत्रों ने सामूहिक अधिवासों के विकास को प्रेरणा प्रदान किया। इसी प्रकार पंजाब मैदान के नगर सिंचित क्षेत्र में भी संहत ग्रामीण अधिवास पाये जाते हैं जिन्हें नहर–ग्राम कहते हैं।

अर्द्धसघन ग्रामीण अधिवास–अर्द्ध सघन अधिवास प्रविकीर्ण एवं संहत अधिवासों के बीच की अवस्था हैं, जो समाजोन्मुखी एवं समाजभिमुखी शक्तियों की अन्योन्य क्रिया के परिणाम स्वरूप पनपते हैं। इनमें गाँव के केन्द्र या संस्थिति पर बसे प्रमुख अधिवास के अतिरिक्त गाँव की सीमा के अंतर्गत कुछ–कुछ दूरी पर एक या अनेक पुरवा बसे होते हैं। भारत के गंगा मैदान के निचले गंगा–यमुना द्वाब के उत्तरी–पश्चिमी भाग, नवीन क्षेत्र तथा यमुना के विषम खड्ड क्षेत्र में इस प्रकार के अधिवास दिखाई पड़ते हैं। वास्तव में मुख्य/खास गाँव के इर्द–गिर्द पुरवों के विकास की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था के दौरान मिला। इन पुरवों का बसाव यजमानी प्रथा के अन्तर्गत बहुधा सेवक जातियों के आधार पर मुख्य गाँव के सम्पूरक के रूप में किया गया। इनमें मुख्य गाँव को खास, बुजुर्ग आदि नामों से तथा पुरवों को 'नगला', 'खुर्द', 'पुर' आदि नामों से व्यवहत किया जाता है। आज पुराने संहत गाँवों में स्थानाभाव, खेतों एवं परिवहन मार्गो की ओर बढ़ती प्रवृत्ति एवं सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव के कारण भी विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिल रहा है जिससे सघन अधिवास अर्द्ध सघन रूप में परिणत होते जा रहे हैं।

पुरवा युक्त ग्रामीण अधिवास– इन ग्रामीण अधिवासों में मौजे की सीमा के भीतर बसाव का आपेक्षाकृत अधिक विखराव देखा जाता है। वस्तुतः यहाँ कोई मूल केन्द्र या प्रमुख बस्ती नहीं होती है बल्कि इसके स्थान पर गाँव का समूचा क्षेत्र छोटे–छोटे कई नगलों/पुरवों में विभक्त होता है। लेकिन विखराव के बावजूद गाँव के सामुदायिक जीवन में मेल–मिलाप तथा परस्पर सहयोग की भावना में कोई कमी नहीं दिखाई पड़ती है तथा खेती–बारी के कार्यो, श्रम सहयोग तथा सहकारिता की भावना सघन अथवा अर्द्ध सघन अधिवासों की तरह ही निर्मित होती है। ऐसे अधिवास सघन एवं प्रविकीर्ण अधिवासों के संक्रमण क्षेत्र में विशेष रूप से पाये जाते हैं भारत में गंगा–घाघरा दोआब के पूर्वी भाग, ट्रांस घाघरा मैदान के अर्द्ध दक्षिणी भाग तथा विन्ध्य उच्च भू–भाग में इनका विस्तार दिखाई पड़ता है। विशेषकर गंगा–घांघरा के मध्वर्ती क्षेत्र में ऊसर भूमि एव आपेक्षतया उच्च भू–जल तल ने इनके विकास को प्रोत्साहित किया है। इसी प्रकार इलाहाबाद के पूर्व गंगापार क्षेत्र में आपेक्षतया आर्द्र जलवायु दशाओं एवं उच्च भू–जलतल एवं मटियार भूमि भी पुरवों के विकास में विभिन्न रूपों में सहायक सिद्ध हुई हैं।

प्रविकीर्ण ग्रामीण अधिवास– इन प्रकार के अधिवासों में मुख्यतः एक झोपड पट्टी से लेकर एक परिवार का अवास गृह तथा पशुशाला, गोदाम, खलिहान आदि सम्बद्ध इकाइयों को सम्मिलित करते

है। इस तरह छोटे आकार तथा एकाकीपन इन अधिवासों के प्रमुख विशेषता हैं। इनमें आवास गृह एक दूसरे से दूर–दूर समूचे ग्राम में बिखरे होते हैं जिनके बीच में खेत, बाग–बगीचा, ऊसर आदि गैर आवासीय क्षेत्र में भी पाये जाते हैं। इस प्रकार के अधिवास जहाँ विषम धरातलीय परिस्थितियों एवं आर्थिक ओर सामाजिक दृष्टि से पिछड़ेपन वाले होते हैं वहीं नयी दुनिया के देशों (अमेरिका, कनाडा आदिद्ध एवं यूरोप में खेत पर आर्थिक समृद्धि के प्रतीक माने जाते हैं जिनमें सभी आधुनिक जीवनोपयोगी भौतिक सुविधायें उपलब्ध होती हैं। वास्तव में पूर्व और पश्चिम के प्रविकीर्ण अधिवासों के बसाव प्रतिरूप में बहुत बड़ा अन्तर भी पाया जाता है। जैसे गंगा घाटी क्षेत्र में ये अधिवास संहत होने के बजाय दूर–दूर बिखरे होते हैं। एक दूसरे के बीच अधिक दूरी पाई जाती है। इसके विपरीत उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया एवं अर्जेन्टाइना के क्षेत्र में प्रत्येक आवास गृह बड़े–बड़े निजी फार्मो पर बने होते हैं जिनका उपयोग कृषि कार्यो के अतिरिक्त आवास, मनोरंजनन हेतु बना होता है। इसी प्रकार जहाँ एक ओर साधनहीन आदिवासी, आखेटक, वन्य वस्तु संग्राहक, पशुचारक, मछुआरे, आदिम पद्धति से खनिज निकालने वाले, पत्थर तोड़ने वाले या ढालों पर पिछड़े ढंग की आत्मपूरक कृषि करने वाले लोगों के एकांकी झोपड़े विश्व के विभिन्न भागों में मिलते हैं वहीं दूसरी ओर साधन–सम्पन्न क्षेत्रों के समुन्नत संस्कृति वाले निवासी भी छावनीनुमा झोपड़ों में मनोरंजन, आखेट, व्यापारिक पशुपालन, व्यापारिक कृषि आदि के लिये अस्थायी या स्थायिवत् रूप में रहते हैं। कई पश्चिमी देशों में नगरों के सम्भ्रान्त लोग नगरीय कोलाहल, भीड़–भाड़ तथा प्रदूषण से बचने के लिये ग्रामीण अंचलों में कृषि आवासों में निवास कर रहे हैं। वास्तव में पिछड़े क्षेत्रों का एकांकी निवास्य साधन हीनता–जन्य मजबूरी के कारण है किन्तु दूसरे प्रकार का निवास्य अधिकाधिक आर्थिक लाभ तथा बहुत कुछ व्यक्तिगत और पारिवारिक स्वातंत्र्य चेतनता, साहस, परम्परागत सामाजिक बन्धनों से मुक्त होकर जीवन यापन की लालसा और बहुत कुछ स्वावलम्बन का परिणय है। इस प्रकार अधिवासों के निवासियों में जहाँ स्वालम्बन, साहस, स्वतंत्र निर्णय आदि की भावना पायी जाती है लेकिन इनमें परस्पर निर्भरता, सामाजिक सरोकार का अभाव पाया जाता है।

प्रकीर्ण एकल अधिवासों में फैलाव के लिये भूमि की उपलब्धता काफी बड़ी मात्रा में संभव नहीं है। इसमें आवास गृह के अलावा पशुपालन, मुर्गीघर, बीज भण्डारण, उर्वरकों का भण्डारण, गाड़ियों का गैरेज, खलिहान, बगीचा और सब्जियों के खेत हेतु पर्याप्त भूमि उपलब्ध हो जाती है। बेकरी जैसी दैनिक आवश्यकता के सामान, चर्च, स्कूल, कॉलेज, क्लब, पोस्ट ऑफिस, लाण्ड्री, सैलून आदि सुविधायें समीपस्थ नगलों, कस्बों एवं नगरों से प्राप्त हो जाती है। परिवहन के माध्यम आवागमन बना रहता है और जुड़े होते हैं।

भारत में जोतों की चकबन्दी, सिंचाई तथा परिवहन की सुविधाओं के विकास के कारण विसरण की प्रवृत्ति को नया आयाम मिला है जिसके कारण किसान पुराने घने बसे आवास क्षेत्रों से बाहर की ओर निकलकर खेतों और सड़कों की ओर आपने आवासों को बना रहे हैं।

1. प्रकीर्णन कारक– प्रकीर्ण अधिवास विश्व के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में पाये जाते हैं तथा सभी प्रकार के प्राकृतिक धरातल एवं आर्थिक सांस्कृतिक भिन्नता वाले भागों में भी पाए जाते हैं अतः में इनके बसाव प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारकों को तीन प्रमुख वर्गों में रख सकते हैं–

(अ) प्राकृतिक कारक– प्राकृतिक कारकों में धरातल के कटे–फटे या विघटित हुए, तीव्र ढलान, जलाधिक्य, ऊसर एवं अनुपजाऊ भूमि, गृह निर्माण हेतु उपयुक्त स्थानों की कमी, उपजाऊ मिट्टी के क्षेत्रों के बिखरे एवं एवं सीमित होने, मिट्टी की संरचना के पतली, पथरीली तथा खेती के अनुपयुक्त होने आदि का प्रभाव पड़ता है। वास्तव में डेल्टा, दलदल, जंगल, मरूस्थलीय क्षेत्र तथा पहाड़ी ढलानों पर जहाँ कहीं मनुष्य अवास में पर्यावरण के साथ आपनी आवश्यकताओं हेतु समायोजन करने का

प्रयत्न करता है, इसी प्रकार के अधिवास मिलते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में धरातल के ऊबड़–खाबड़ तथा कटे–फटे होने तथा संसाधनों के सीमित और बिखरे होने के कारण इस प्रकार का बसाव अकसर देखा जाता है। इन भागों में निवास, कृषि योग्य भूमि एवं चरागाही भूमि, बिखरी तथा विभिन्न ढाल पर छोटे–छोटे टुकड़ों में बँटी होती हैं, जल स्रोत घिरे होते हैं तथा उपजाऊ अच्छी मिट्टी छोटे–छोटे टुकड़ों में दूर–दूर तक पाई जाती है। इससे प्रकीर्णन की प्रवृत्ति को बल मिलता है। यही कारण है कि आल्पस, पिरेनीज, एप्पेनाइन, हिमालय, कार्पेथियन आदि क्षेत्रों में इस प्रकार के बसाव देखे जाते हैं। परन्तु भारत, चीन आदि के पर्वतीय भागों में सुरक्षा के अभाव और सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं।

(ब) सांस्कृतिक कारक– सांस्कृतिक कारकों में सुरक्षा की सुविधा, सामाजिक परिस्थिति, सांस्कृतिक परम्परा तथा आधुनिक परिवर्तन आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते। विशेषकर सामाजिक परिवेश का बसाव प्रतिरूप पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता हैं। भारत में जमीन्दारी प्रथा ने सघन अधिवासों के विकास को पनपाया था। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त जमीन्दारी उन्मूलन, कृषकों को भूस्वामित्व का अधिकार दिये जाने, चकबन्दी, और सिंचाई के निजी उत्तम साधनों के विकसित होने से विखराव की प्रवृत्ति का प्रभाव बढ़ता गया। गंगा के मैदानी क्षेत्रों में संहत अधिवास के क्षेत्रों में कोइरी, कोरी, मुराव, काछी, कुर्मी, खटिक आदि खेतिहर जातियाँ जो गहन कृषि कार्य करते हैं जिसमें जोतकर कम और गोड़कर अधिक कार्य होता है खेतों के समीप रहना पसन्द करते हैं। सामाजिक परिस्थितियों के रूप में दक्षिणी–पूर्वी नाइजीरिया का उदाहरण उल्लेखनीय है। यहाँ मुखिया की निर्देशानुसार नगवा (चरवाहा) जाति के लोग बिखरे घरों में रहते हैं जबकि इकबेरी (कृषक) जातियाँ गाँवों और टोलों में निवास करती हैं। संयुक्त राज्य, कनाडा, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टीना आदि विश्व के नए बसे क्षेत्रों में विस्तृत भूमि की उपलब्धता, सड़कों रेलमार्गों, बाजार, कस्बा और नगरीय केन्द्रों के विकास, बैंकों, तथा विभिन्न कम्पनियों से धन, मशीन, उर्वरक, बीज आदि सुविधाओं के आसानी से प्राप्त होने, निजी एवं पारिवारिक सुरक्षा हेतु किसानों के पास स्वयं बन्दूकों आदि के उपलब्ध होने और सामान्य सुरक्षा के लिये सरकारी संस्थाओं के भरपूर सहयोग के कारण प्रविकीर्ण अधिवासों के विकास को बल मिला। दूसरी ओर ब्रिटेन, स्कैडिनेविया और बाल्टिक राज्यों में लोग कृषि के समुचित देखभाल के लिये गाँवों को छोड़कर अपनी चकों में जा बसे। इंग्लैण्ड का इन्क्लोजर एक्ट तथा स्वीडन का चकबन्दी अधिनियम इसी दिशा में प्रयास थे। इसी प्रकार पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी एवं डेन्यूब के कई मैदानी भागों में बड़ी जमीन्दारियों के टूटने से किसानों को निजी चक मिल गये और वे गाँव छोड़कर उन पर जा बसे। भारत, चीन, जापान आदि पुरानी दुनिया के देशों में सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ गाँवों और नगलों के बसाव के अनुकूल रही हैं। इन क्षेत्रों में 1940 ई0 के बाद से ही कुछ किसान संहत गाँवों से निकलकर एकल आवास की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

(स) आर्थिक कारक– आर्थिक कारकों में भू–स्वामित्व क्रान्तिकारी कृषकों की आर्थिक स्थिति आदि का विशेष महत्व है। सामान्यतया खेतिहर किसानों को जमन्दारी उन्मूलन आदि भूमि सुधारों के तहत भू–स्वामित्व के अधिकार को दिये जाने के कारण प्रकीर्णन की प्रवृत्ति को बल मिला है। इंग्लैण्ड में मध्य युग तथा पूर्वी यूरोप के कई देशों में अभी हाल तक जमीन्दारी प्रथा के समाप्त किये जाने के कारण किसान स्वतः भूमिधर होकर अपनी चक पर एकल अधिवासों में बसने लगे। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों में आर्थिक उन्नति के कारण प्रविकीर्ण अधिवासों के विकास में सहायता मिली। इसी वजह से बड़े–बड़े कृषि फार्मो में मशीनों, उन्नतशील बीजों, रासायनिक उर्वरकों आदि का प्रयोग हो रहा है परन्तु भारत जैसे विकासशील देशों में पिछड़े क्षेत्रों में जीवन के निर्वाहक साधनों की कमी, खेतिहर किसानों, आदिवासियों आदि के भूमि पर पूर्ण स्वामित्व के अधिकार का न होना भी एकल एवं लघु अधिवासों के विकास को बल मिलता है। मुख्यतः पिछड़ी जातियाँ, आदिवासी और आर्थिक दृष्टि

से पिछड़े लोग गाँवों में समृद्ध समुदाय के संहत अधिवासों से दूर निवास करते हैं। छोटा नागपुर के पहाड़ी अंचलों में परहियास, विरिजास, कोरवास ऐसे अनेक आदिवासी समुदाय निर्वाहक अर्थ व्यवस्था को आपनाये हुए हैं तथा व्यक्तिगत से लेकर पारिवारिक स्तर तक स्वावलम्बिता का आश्रय लेते हुए ये लोग सामूहिक जीवन की बाध्यता को नहीं स्वीकार्य नहीं करते हैं।

संक्षेप में (i) उपजाऊ, कृषि योग्य मिट्टी, (ii) समतल, चौरस आसानी से जोतने योग्य धरातल, (iii) पेय जल की सर्व सुलभता, (iv) सार्वजनिक सुरक्षा, (v) परिवहन के निजी अथवा सार्वजनिक साधन, (vki) निजी–भू–स्वामित्व, (vkii) चकबन्दी ऐसे भूमि सुधार, (vkiii) सामूहिक, आर्थिक–व्यावसायिक तथा क्रय–विक्रय हेतु बाजार या कस्बों की सुविधा आदि से प्रविकीर्ण अधिवासों के विकास हेतु समुचित परिस्थितियाँ पैदा होती हैं।

2. वितरण– विश्व स्तर पर प्रविकीर्ण ग्रामीण अधिवास U.S.A कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, अर्जेन्टाइना, नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड, ब्रिटिश द्वीप समूह, पश्चिमी फ्रांस, दक्षिणी पुर्तगाल, मध्य यूरोप के उच्च क्षेत्र, रूप के कुछ भाग, उत्तरी जापान, उत्तरी मंचूरिया, चीन के सेचवान प्रान्त, मेक्सिको, पश्चिमी पनामा, कोस्टारिका, कोलम्बिया, बेनेजुएला, युरूग्वे आदि में देखे जाते हैं।

भारत यद्यपि मूलतः संहत एवं सामूहिक अधिवासों का देश है लेकिन भारत के कुछ क्षेत्रों में प्रकीर्ण एवं अर्द्ध प्रकीर्ण बस्तियाँ कहीं–कहीं दिखाई पड़ती है। इनमें मुख्य रूप में (i) हिमालय के कटक और पर्वत–स्कन्ध (ii) असम एवं अरूणाचल प्रदेश के नये बसे वन क्षेत्र, (iii) पश्चिमी घाट के सहारे सतारा से केरल तक के पहाड़ी क्षेत्र, (iv) पश्चिमी मालव पठार, (v) थार के मरूस्थल क्षेत्र (बीकानेर, जैसलमेर और बाड़मेर जनपद) , (vki) बिहार और उत्तर प्रदेश के बाढ़ ग्रस्त भागों में (vkii) पश्चिमी बंगाल के लघु जलाशयों के समीपवर्ती क्षेत्र सम्मिलित है।

(अ) संयुक्त राज्य अमेरिका– संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रविकीर्ण ग्रामीण अधिवासों के विकास का एक रोचक इतिहास है जिसकी शुरूआत यूरोपीय उपनिवेशियों के पूर्वी तट के सहारे तीन अलग–अलग क्षेत्रों – 1. न्यू इंग्लैण्ड, 2. मध्य अटलांटिक, एवं 3. दक्षिण–पूर्व में बसाव में होती है। इन तीनों क्षेत्रों के उपनिवेशी यूरोप के विभिन्न भागों से आये जिनकी धार्मिक भावनाओं, भाषाओं, राजनीतिक विचारों एवं समाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि में पर्याप्त अन्तर था। न्यूइंग्लैण्ड के उपनिवेशी इंग्लैण्ड से विभिन्न समूहों से आकर सघन बस्तियों का निर्माण कर बसने लगे। प्रत्येक समूह को 4 से 10 वर्ग मील का क्षेत्र अनुदान के रूप में प्राप्त होता था जिसके मध्य में रिहाइशी बस्तियों के अलावा गिरिजाघर, स्कूल कब्रिस्तान आदि सार्वजनिक संस्थान निर्मित हुए। इन गाँवों में प्रत्येक परिवार को व्यक्तिगत आवास के अलावा खलिहान, बगीचा, पशुशाला आदि के लिये 1 से 5 एकड़ भूमि प्रदान की गयी है। परन्तु अठारहवीं सदी में जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास के कारण प्रकीर्णन की शुरूआत हुई और लोग बिखरे खेतों को एक साथ कर अपनी–अपनी चकों को ओर अग्रसर होने लगे। न्यू इंग्लैण्ड क्षेत्र से अलग मध्य अटलांटिक प्रदेश के अधिवास प्रारंभ से ही प्रविकीर्ण किस्म के थे क्योंकि इस भाग का बसाव क्षेत्र के बजाय विभिन्न व्यक्तियों द्वारा हुआ जिनमें डच, स्वीड, स्काट, आइरिश, जर्मन एवं इंगलिश मूल के लोग सम्मिलित थे। दक्षिण के उपनिवेशों में भी प्रविकीर्ण अधिवासों की अधिकता थी जिससे बाद में तम्बाकू एवं कपास के बड़े–बड़े बागानों में काम करने के लिए अफ्रीका से नीग्रो श्रमिक लाये गये।

अमेरिकी फार्म गृह प्रविकीर्ण अधिवासों का एक सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसमें आवास गृह के अतिरिक्त खलिहान पशुशाला, अन्न भण्डार पाये जाते हैं। ऐसे अधिवासों में जीवनोपयोगी सभी सुविधायें मौजूद होती हैं ये परिवहन मार्गो के माध्यम से सेवा केन्द्रों, कस्बों एवं

नगरों में भली भाँति मिले रहते हैं। ये मानव की स्वतंत्र प्रवृत्ति और स्वावलम्बन के प्रतीक के रूप में जाना जाता हैं। जिनका उद्देश्य अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना होता है।

(ब) कनाडा :– कनाडा में ग्रामीण अधिवासों के वितरण में पर्याप्त भिन्नता दिखाई पड़ती है। जहाँ सेंटलारेंस नदी के किनारे क्यूबेक प्रान्त में फ्रांसिसी लाँग–लाट फार्म अधिवासों की अधिकता पायी जाती है जिनके निर्माण में फ्रांसीसी शासकों ने सामन्तों एवं चर्च को भूमि के आबंटन में मुख्य योगदान दिया। यहाँ किसानों को बसाव हेतु भूमि आवंटित करते समय भूमि विभाजन ऐसी समानान्तर पट्टियों में किया गया जिससे प्रत्येक को नदी का सामीप्य उपलब्ध हो सके। कालान्तर में फ्रांसीसी उत्तराधिकार के नियम के तहत पुत्रों को भी भूमि अधिकार प्राप्त होने के फलस्वरूप प्रत्येक फार्म छोटे–छोटे ऐसे टुकड़ों में विभाजित हो गये जिन्हें 'लाँग–लाट' कहा गया। ये नदी से समकोण स्थिति में दीर्घाकार में विभाजित हुए थे। तदुपरान्त विभाजित टुकड़ों तक पहुँचने के लिए नदी से समकोण बनाती हुई सड़कें निर्मित की गयी। इस क्षेत्र में फार्म गृह सड़क और नदी के किनारे–किनारे माला में पिरोये मोतियों की तरह प्रतीत होते है।

(स) यूरोप :– यूरोप में सघन एवं प्रविकीर्ण अधिवासों का मिला–जुला प्रतिरूप पाया जाता है। यहाँ फ्रांस के उत्तरी एवं पूर्वी भाग, दक्षिणी बेल्जियम, डेनमार्क, दक्षिणी स्वीडन, मध्यवर्ती पोलैण्ड, उत्तरी जर्मनी के मैदान, वेजर नदी के पूर्वी क्षेत्र, बोहेमिया, निचले बवेरिया, स्विस जूरा व डेन्यूब मैदान के आर–पार के क्षेत्र, हंगरी, सिसली, दक्षिणी इटली तथा यूनान आदि में सघन एवं सामूहिक अधिवासों की प्रधानता पायी जाती है। इसके विपरीत स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड, वेल्स, फ्रांस के ब्रिटानी, कार्पेथियन, आल्प्स, पिरेनीज, केन्टाग्रियन श्रेणियाँ, एपीनाइन्स एवं बालकान क्षेत्र में प्रविकीर्ण अधिवास प्रचलित हैं। कुल मिलाकर यूरोप के पहाड़ी क्षेत्रों में अधिवासों के वितरण में विक्षेपण की प्रवृत्ति अधिक प्रभावशाली देखी जाती है।

4.7. भारत में ग्रामीण अधिवासों के प्रकार

भारत के विशाल आकार, प्राकृतिक पर्यावरण में विविधता तथा सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों में अन्तर के कारण ग्रामीण अधिवासों के प्रकार में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। देश ग्रामीण भूदृश्य लगभग 6.41 लाख ग्रामों (मौजों) तथा उनकी सीमाओं में स्थित अनेकों पुरवों या नगलों और एकाकी गृहों से युक्त है जिन्हें अधिवासों (एकाकी गृहों) की पारस्परिक दूरी के आधार पर सघन, अर्द्धसघन, पुरवा युक्त, आदि कई भागों में विभाजित किया जा सकता है। क्योंकि प्राकृतिक धरातल ने अधिवासों के वितरण प्रतिरूप को प्रभावित करने में प्रमुख कारण के रूप में जाना जाता है अतः प्राकृतिक विभागों को अधिवासों के प्रकारों के अध्ययन हेतु ठोस आधार के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं जिससे प्रादेशिक वितरण के विश्लेषण का आधार बनेगा।

1. हिमालय प्रदेश :– भारत के उत्तरी भाग में जम्मू–कश्मीर से लेकर हिमाचल प्रदेश, उत्तरी पंजाब, उत्तरी उत्तर प्रदेश, सिक्किम, असम, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड आदि तक विस्तृत लगभग पांच लाख वर्ग किलोमीटर के विस्तृत, उच्च, एवं दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र मे मुख्यतः प्रविकीर्ण ग्रामीण अधिवासों की अधिकता है। विषम प्राकृतिक धरातल, शीत जलवायु, वनाच्छादन, उपजाऊ मिट्टी के अभाव, आवागमन एवं संचार के साधनों की न्यूनता आदि के कारण अतीत से ही यह पर्वतीय क्षेत्र मानव बसाव की दृष्टि से अनुकूल नहीं रहा है। आज भी पशुचारण, आखेट, फलोत्पादन, पर्यटन, पिछड़े ढंग की कृषि आदि की जाती है। यह भाग देश का आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ माना जाता है। वास्तव में आर्थिक सुविधाओं के सीमित क्षेत्रों–समतल घाटियों, कम ढाल के क्षेत्रों, सपाट गिरि श्रृंगों, पर्वत स्कन्धों एवं जलधाराओं आदि के समीप–में उपलब्धि के कारण इन क्षेत्रों में प्रमुख रूप से एकाकी या

लघु आकार के ग्रामीण अधिवासों का विकास हुआ है। परन्तु यहाँ भी जहाँ कहीं घाटियों या दून क्षेत्रों में खेती आदि के लिए विस्तृत समतल भूमि उपलब्ध हैं। अधिवासों का समूहन पाया जाता है।

भारत के पूर्वोत्तर में मेघालय, नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा तथा मिजोरम राज्यों में धरातलीय उच्चावच की विषमता, अधिक ताप एवं आर्द्रता, घने वनाच्छादन तथा यातायात–परिवहन साधनों के अभाव के कारण अधिवासों के प्रकीर्णन को बल मिला है। यहाँ स्थानान्तरित कृषि, फल संग्रह, पशुचारण आदि आर्थिक क्रियाओं के कारण भी जनजातीय समुदाय छोटे–मोटे विकीर्ण या एकाकी ग्रामीण अधिवासों में निवास करता है।

2. उत्तरी विशाल मैदान– समलत धरातल, उपजाऊ मिट्टी, पर्याप्त जलापूर्ति, विकसित संचार एवं परिवहन, एवं अनुकूल जलवायु दशाओं के कारण भारत का उत्तरी विशाल सामूहिक एवं सघन ग्रामीण अधिवासों का एक पारंपरिक क्षेत्र रहा है। इतिहास में समृद्धि एवं अभिगम्यता के कारण यह क्षेत्र विदेशी आक्रमणकारियों से प्रभावित होता रहा जिससे समूहन की प्रवृत्ति को बल मिला। परन्तु धरातलीय और जलवायु संबंधी स्थानीय विशेषताओं में भिन्नता के कारण इसमें अर्द्ध सघन, पुरवा युक्त तथा प्रविकीर्ण अधिवासों के प्रतिरूप भी पाये जाते है।

राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में जलाभाव के कारण पिछड़ी कृषि और पशुचारण आदि आर्थिक दशाओं की प्रधानता है जिसने छोटी–छोटी और दूर–दूर बसी ग्रामीण बस्तियों के विकास को प्रोत्सहित किया है। यहाँ बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, आदि अतिशुष्क पश्चिमी जिलों में बालुका स्तूपों की प्रचुरता के कारण जल की उपलब्धता के आधार पर दूर–दूर विखरे पुरवे सदृश ग्रामीण अधिवास पाये जाते हैं। परन्तु मरूस्थीलय प्रदेश के पूर्वी एवं उत्तरी पूर्वी भागों में, जहाँ कृषि अधिक विकसित है, बड़े–बड़े सामूहिक ग्रामीण अधिवास देखे जाते हैं। शुष्कता के कारण यद्यपि समूचे राजस्थान की ग्रामीण अधिवासीय संरचना में अस्थायित्व, असन्तुलन तथा प्रकीर्णन की प्रवृत्ति है परन्तु इन्दिरा नहर के निर्माण कारण इसमें स्पष्ट रूप से परिवर्तन देखा जा रहा है।

पंजाब, हरियाणा राज्यों तथा चण्डीगढ़ और दिल्ली के संघीय क्षेत्रों के सतलज, व्यास, यमुना आदि नदियों के विस्तृत मैदानी भू–भाग में समुन्नत कृषि व्यवस्था ने सघन एवं सामूहिक ग्रामीण अधिवासों के विकास को बढ़ावा मिला है। यहाँ कृषि कार्य में आपसी सहयोग के साथ–साथ वाह्य आक्रमणों से सुरक्षा, उपजाऊ समतल भूमि एवं पेय जल की उपलब्धता आदि ने इस प्रकार अधिवासन को प्राचीन काल से ही प्रभावित किया है। यहाँ गाँव का औसत क्षेत्रफल 5 वर्ग किमी0 और औसत जनसंख्या 1000 व्यक्ति पाई जाती है।

भारत में गंगा नदी का मैदानी क्षेत्र ग्रामीण अधिवासों का एक अनोखा परिणाम है जहाँ प्रविकीर्ण एकाकी गृहों से लेकर, पुरूवा युक्त, अर्द्ध सघन तथा सघन सभी प्रकार के ग्रामीण अधिवासों का प्रतिरूप पाया जाता हैं। लेकिन कुल मिलाकर सघन एवं अर्द्ध सघन अधिवासों की ही प्रधानता पायी जाती है जिनके विकास में समतल धरातल, उपजाऊ मिट्टी, पर्याप्त जल, कृषि कार्य में पारस्परिक सहयोग की भावना, सुरक्षा, सुविकसित आवागमन एवं संचार के साधनों आदि ने योगदान किया है। प्राचीनकाल से ही यह क्षेत्र अनेक सांस्कृतिक समूहों, धर्मों, सम्प्रदायों एवं भाषाई समूहों का मिलन स्थल रहा है जिनका अधिवासों के बसाव प्रतिरूप पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। वास्तव में इस क्षेत्र में ग्रामीण अधिवासों का वितरण प्रतिरूप एवं समूहन प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही कारकों का महत्वपूर्ण योगदान का ही परिणाम है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश का पूर्वी क्षेत्र एवं पश्चिमी बिहार में विस्तृत गंगा नदी के मध्यवर्ती मैदानी भाग में आपेक्षाकृत छोटे–छोटे परन्तु पास–पास बसे ग्रामीण अधिवास मिलते हैं। कर्मनाशा नदी के करैल

मिट्टी के क्षेत्र तथा गंगा–सोन के समतल सिंचाई सम्पन्न भागों में सघन, घाघरा और गण्डक नदियों के मध्य सरयू के मैदान तथा गंगा–घाघरा द्वाब के बलिया के पूर्व में पुरवा युक्त सघन, गंगा–घाघरा द्वाबा में बलिया के पश्चिम और सरयू मैदान में राप्ती के पश्चिम स्थित क्षेत्र में अर्द्ध विकीर्ण एवं गंगा और घाघरा के सन्निकट स्थित खादर या तराई क्षेत्र में विकीर्ण या एकाकी ग्रामीण अधिवासों का भू–दृश्य दर्शनीय है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं बिहार के सीमावर्ती भाग में स्थित बघेल खण्ड पठार में जहाँ बेलन एवं घाघर की घाटियों के उपजाऊ एवं समतल क्षेत्र में गुच्छित ग्रामीण अधिवास पाये जाते हैं वहीं ऊँचे पठारी भागों के अर्द्ध विकीर्ण तथा अधिक विषम धरातलीय भाग में विकीर्ण क्षेत्र पर जन जातीय अधिवासों की प्रधानता है। छत्तीसगढ़ मैदान के बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग एवं रायगढ़ जनपदों में स्थित महानदी का मध्यवर्ती बेसिन आपने समतल प्राकृतिक धरातल, उर्वर लाल मिट्टी एवं जलापूर्ति के कारण मुख्यतः सघन ग्रामीण अधिवास वाला क्षेत्र रहा है जिसकी तुलना ऊपरी गंगा मैदान से दी जा सकती है। परन्तु यहाँ भी विलासपुर के उत्तर–पश्चिम के उच्च पठारी भाग में विकीर्ण ग्रामीण अधिवासों की अधिकता है।

प्रायद्वीपीय क्षेत्र के दक्कन के पठारी प्रदेश में महाराष्ट्र का लावा पठारी क्षेत्र उपजाऊ मिट्टी, जलापूर्ति एवं विकसित कृषि के कारण गुच्छित ग्रामीण अधिवासों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। शोलापुर के दक्षिण–पश्चिम में तथा पुणे के निकट के पठारी क्षेत्र में विषम प्राकृतिक धरातल के कारण अर्द्ध विकीर्ण ओर विकीर्ण्र ग्रामीण अधिवास की बहुलता है। इसी प्रकार पेनगंगा एवं बघौरी के संगम के पास, वर्धा ओर वेनगंगा के संगम के पूर्व, ताप्ती एवं उसकी सहायक नदियों के उद्‌गम क्षेत्र तथा सहयाद्रि के निकट के उच्च पठारी एवं वनाच्छादित भाग में विकीर्ण ग्रामीण अधिवासों बहुतायत रूप में पाये जाते हैं।

तमिलनाडु राज्य के पठारी क्षेत्र के समतली क्षेत्र में विसधन गाँव पाये जाते हें परन्तु सलेम के आस–पास के समतल क्षेत्र पर विकीर्ण गाँवों की प्रधानता हैं, पठारी प्रदेश के मध्यवर्ती भाग में कावेरी नदी के समीपवर्ती भाग में अनियमित रूप से विखरे विर्कीण एवं अर्द्ध सघन अधिवास मिलते हैं। आन्ध्र प्रदेश के रायलसीमा क्षेत्र में शुष्क दशाओं के कारण दूर–दूर बिखरे बड़े–बड़े गुच्छित गाँवं पाये जाते हैं एकाकी गृहों की प्रधानता होती है।

4.8. उत्तर प्रदेश में ग्रामीण अधिवासों के प्रकार

उत्तर प्रदेश राज्य, जिसका अधिकांश भाग गंगा और उसकी सहायक नदियों के द्वारा निक्षेपित हुई उर्वर जलोढ़ मिट्टियों से मिलकर बना है, आपने सघन एवं अर्द्ध सघन ग्रामीण अधिवासों के लिये प्रसिद्ध है जिनकी उत्पत्ति एवं विकास में प्राकृतिक धरातल, मृदा उर्वरता, जलापूर्ति, कृषि में पारस्परिक सहयोग, भू–जोतों के बिखराव, सुरक्षा आदि कारकों का महत्वपूर्ण योगदान है। अहमद, सिंह तथा भट्टाचार्य आदि ने सूक्ष्म स्तरीय विश्लेषण के आधार पर उत्तर प्रदेश में चारों के ग्रामीण अधिवासों (सघन, अर्द्ध सघन, पुरवायुक्त एवं प्रविकीर्ण) का उल्लेख मिलता है।

उत्तर प्रदेश में ग्रामीण अधिवास सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र पर फैला हैं जिसमें सम्पूर्ण द्वाब, यमनुपार मैदान, बुन्देलखण्ड उच्च भूमि, ऊपरी गंगा–घाघरा द्वाब, तराई तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में गंगा, घाघरा, राप्ती आदि नदियों के तटबंध और उच्च भूमि सम्मिलित करते है। मुख्य रूप से गंगा के मैदानी का पश्चिमी क्षेत्र तथा द्वाब के कम वर्षा के क्षेत्र में बड़े और संहत गाँवों की प्रधानता पाई जाती है। अर्द्ध सघन ग्रामीण अधिवासों का वितरण गंगा–घाघरा द्वाब के मध्यवर्ती क्षेत्र, गंगा–यमुना द्वाबा के अल्प क्षेत्र तथा इलाहाबाद के पूर्व के गंगा के दक्षिण के गंगापार भाग में पाया जाता है। यह क्षेत्र सघन

और पुरवायुक्त ग्रामीण अधिवासों के बीच संक्रमण मेखला के रूप में स्थित है जिसके वितरण प्रतिरूप को प्रभावित करने में ऊसर भूमि तथा भूमिगत जल–तल की ऊँचाई का प्रमुख योगदान है।

उत्तर प्रदेश में प्रविकीर्ण ग्रामीण अधिवासों के प्रमुख क्षेत्र उत्तर के पर्वतीय भाग (वर्तमान में उत्तराखण्ड) और मिर्जापुर के पठारी भाग से सम्बद्ध हैं। इनमें लघु हिमालय, दून, भावर, शिवालिक श्रेणी, सोनपार तथा घाघरा, गंगा आदि नदियों के खादर क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है। परन्तु यहाँ अधिवासों का प्रकीर्णन नवीन बसे देशों–उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया एवं अर्जेण्टिना– की भाँति नहीं पाया जाता हैं जहाँ प्रत्येक आवास कृषि गृह के रूप में दिखाई पड़ता है। यहाँ आवास अलग रूप में होते हुए भी पृथक कृषि फार्मो के बीच नहीं पाये जाते हैं। मैदानी क्षेत्रों की तुलना में केवल इनके बीच भौतिक दूरी का अन्तर पाया जाता है।

4.9. सारांश

इस इकाई में अधिवासों के प्रकार एवं उनके वितरण को आप भली भाँति समझ गये होगे कि अधिवासों के प्रकारों के निर्धारण में भौतिक, सामाजिक अर्थिक कारको द्वारा कैसे निर्धारित किया जाता है। इसके बावजूद सुरक्षा, सामुदायिक परस्पर निर्भरता आर्थिक सामाजिक संगठन, कृषि ने स्थायी ग्रामों के विकास के साथ–साथ सामूहिकता की भावना को कायम किया है। इसी आधार पर समूहन की प्रवृति को बढावा मिला।

आप इस इकाई में ग्रामीण अधिवासों के प्रमुख प्रकारों में जिसमें सघन, अर्द्धसघन, पुरवा प्रविकीर्ण ग्रामीण अधिवासों की अवधारणाओं को समझ गये होगें। भारत जैसे विशाल देश में सामूहिक अधिवासों की प्रमुखता का क्या कारण है तथा मैदानी भागों में सघन अधिवास अतिसघन है क्योंकि अधिकांश भाग गंगा और उनकी सहायक नदियों के उर्वर जलोढ मिट्टी से बना आपने सघन एवं अर्द्ध सघन ग्रामीण अधिवासों के लिए प्रसिद्ध है।

4.10. स्व मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. जनसंख्या का विखरा व कृषि भूमि का अभाव किस प्रकार के अधिवास को जन्म देता है।

   (अ) अर्द्ध–सघन (ब) प्रकीर्ण

   (स) अर्द्ध–प्रकीर्ण (द) सघन

2. सघन बस्तियों को निम्नांकित में से किस नाम में नही पुकारा जाता है –

   (अ) अपकेन्द्री (ब) अर्द्ध प्रकीर्ण

   (स) न्यास्टिक (द) इनमें से कोई नहीं

3. सघन अधिवास किस शक्ति का परिणाम होती है –

   (अ) आपकेन्द्री शक्ति (ब) विर्वतनिक शक्ति

   (स) केन्द्रोन्मुखी (द) जाति विभेदन शक्ति

5. सघन अधिवास किस प्रकार के जनघनत्व का परिणाम होती है।

   (अ) उच्च जन घनत्व (ब) कम जन घनत्व

   (स) सामान्य जनघनत्व (द) इनमें से कोई नही

आदर्श उत्तर –

(1) ब (2) अ (3) स (4) अ

4.11. सन्दर्भ सूची

1. Singh R.B. 1975 : Rajput Clan Settlements in Varanasi District.
2- Tiwari R.C. 1984 : Settlement system in Rural India Allahabad Geographical Society Allahabad.
3- Ahmad E. 1952 : Rural Settlement Types in the Uttar Pradesh.
4- Singh L.R. 1965 : The Tarai Region of Uttar Pradesh A Study in Human Geography.
5- Sinha . V.N.P. 1976 : Chota Nagpur : A Study in settlement. Geography.
6. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
7- करन, एम0पी0,ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।
8. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

4.12. अभ्यास प्रश्न (संत्रात परीक्ष की तैयारी हेतु)

प्रश्न–1. ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों को बताइए तथा उन पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–2. भारत में ग्रामीण अधिवासों के प्रमुख प्रकारो का निर्धारण कीजिए तथा उनकी व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–3. सघन अधिवास समतल उपजाऊ प्रदेश की विशेषता है। इस पर प्रकाश डालिए।

इकाई–05 ग्रामीण सेवा–केन्द्र

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.3 ग्रामीण सेवा–केन्द्र एवं केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त

5.4 केन्द्रीय प्रकार्य

5.5 सेवा केन्द्र की केन्द्रियता

5.6 सेवा केन्द्रों की स्थानिक वितरण

5.7 सेवा केन्द्रों का सेवा केन्द्र

5.8 सेवा केन्द्रों में स्थानिक प्रकार्यात्मक अन्तराल

5.9 सेवा केन्द्र नियोजन

5.10 सारांश

5.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

5.12 सन्दर्भ सूची

5.13 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

5.0 प्रस्तावना

अधिवासों में सेवा–केन्द्रों का मूल्यांकन उनकी क्रियात्मक विशेषताओं से होता हैं यह अवधारणा इस तथ्य पर आधारित है कि सभी अधिवास आपने चारो ओर के निवासियों को विभिन्न आवश्यकताये की सेवा सेवा करते हुए आपने आस–पास एक प्रभाव क्षेत्र का आधार तैयार करता है जो उसकी सेवाओं द्वारा संचित होता हैं। इस सेवित क्षेत्र का प्रभाव उस अधिवास के स्वरूप तथा उससे प्रदत्त सेवाओं के स्तर पर आधारित करता हैं। किसी क्षेत्र में अधिवासों के प्रबंधन तथा सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के विकास में इन सेवा केन्द्रों का अमूल्य योगदान रहता है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से नवाचार एवं नवीन विचार महानगरों से नीचे छनते हुए सुदूर स्थति गाँवों तक पहुँच पाता है। जिस क्षेत्र में इस सेवा केन्द्रों की जितनी ही मजबूत एवं नियेाजित व्यवस्था पाई जाये उतना ही विकास प्रक्रिया को उतना ही बल मिलेगा। ग्रामीण सेवा केन्द्र में जो नगर गाँवों के सबसे निचले स्तर पर कार्य करते है। अतः वर्तमान ग्रामीण प्रबन्धन में काफी महत्वपूर्ण हो रहा हैं ये सेवाकेन्द्र मुख्यतः ग्रामीण हाटों, अंचलों में और छोटे कस्बों के रूप में पाये जाते हैं। जिनमें ग्रामीण निवासी आपनी सुविधानुसार वस्तुओं का खरीदते बेचते हैं जहाँ वे इनकी सेवाओं की प्राप्ति हेतु आवागमन करते हैं तथा जहाँ से सामाजिक आर्थिक विचारों तथा नवाचारों को फैलने का मौका मिलता है। विकास प्रक्रिया में योगदान के कारण नियोजनकर्ताओं ने कई प्रकार सेवा केन्द्रों (विकास केन्द्रों) को विकसित करना प्रारम्भ किया है ताकि गाँवों के विकास को बढ़ावा दिया जा सके।

5.1 उद्देश्य

यह अधिवास भूगोल की पाँचवीं इकाई है इस इकाई में आप अध्ययन कर कि–

- अधिवासों का सेवा केन्द्रों के रूप में उनके किए गए कार्यों के आधार पर आकलन करेगें।
- ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विकास सिद्धान्तों की वर्णन कर सकेगें।
- ग्रामीण सेवा केन्द्र के प्रबंधन के आकार की व्याख्या कर सकेगें।

5.2 ग्रामीण सेवाकेन्द्र एवं केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त

केन्द्रीय स्थल जो सेवा केन्द्र का पर्यायवाची है ऐसे स्थायी अधिवास को दिखाता है जिसमें उसके आस–पास के क्षेत्र की सामाजिक–आर्थिक जरूरतों को पूर्ण करने के लिए विभिन्न सेवाओं/प्रकार्यों का संकेन्द्रण पाया जाता है। वास्तव में उन सेवाओं/प्रकार्यो को जिन्हें एक कस्बा या केन्द्र आपने लिए न ही बल्कि आपने चारों तरफ स्थित प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले लोगों की सामाजिक–आर्थिक जरूरतों को पूरा करता है। केन्द्रीय प्रकार्यों के रूप में जाना जाता है तथा इन सेवाओं/प्रकार्यों को देने करने वाले केन्द्रों को केन्द्रीय स्थल कहते हैं। इसकी स्थिति आमतौर पर प्रभाव क्षेत्र के बीच में पायी जाती है। जहाँ क्षेत्र की आर्थिक क्रियाओं की अधिकता पायी है। केन्द्रीय स्थल शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1931 ई0 में मार्क जेफरसन महोदय ने किया था परन्तु इसकी सैद्धान्तिक व्याख्या 1933 ई0 में जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान वाल्टर क्रिस्टालर के केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त से मानी जाती है। इस सिद्धान्त का मूल अर्थ यह है कि प्रत्येक नगरीय केन्द्र का परिपालन उसके चारों तरफ स्थित उपजाऊ क्षेत्र द्वारा होता है जिसके निवासियों को यह विभिन्न आवश्यकताएं पूरी करता है। किसी सजातीय क्षेत्र में केन्द्रीय स्थलों का वितरण समान रूप से पाया जाता है तथा उनके पृष्ठ प्रदेश का आकार षटकोणीय रूप से प्राप्त होता है। इन केन्द्रीय स्थलों का एक समान क्रम पाया जाता है जिससे सबसे निचले स्तर पर बाजार, ग्राम और उच्चतम स्तर पर प्रादेशिक राजधानी नगर स्थित होते है। निचले स्तर के केन्द्रीय स्थल अपने उच्च स्तर के उस स्थल पर निर्भर होता है। जिसके सहायक क्षेत्र में यह स्थित होता है। क्रिस्टालर के अनुसार किसी क्षेत्र में केन्द्र स्थलों का वितरण एवं उनकी अन्योन्याश्रिता विपणन अथवा प्रशासनिक सिद्धान्तों से प्रभावित होती है।

अधिकांश क्षेत्र में स्थानिक कार्यात्मक ढाँचा का एक तंत्र पाया जाता है जिसमें पुरवा से लेकर नगर तक के सभी अधिवास आपस में जुड़े होते है। समान वितरण और समुचित संख्या वाले विभिन्न स्तर के केन्द्र स्थलों से निर्मित तंत्र द्वारा विकास का प्रभाव समान रूप से प्रत्येक क्षेत्र में देखा जाता है। वास्तव में किसी क्षेत्र में निम्न स्तर की ओर अधःस्राव क्रियाविधि द्वारा होता है। केन्द्रीय स्थल तंत्र में होने वाले स्थानिक क्रियात्मक अन्तराल के कारण यह क्रियाविधि बाधित होती है। इससे समुचित विकास में अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथा आन्तरिक विषमता बढ़ने लगती है। अतः नियोजित प्रादेशिक विकास हेतु केन्द्रीय स्थलों को फिर से संगठित कर उनमें स्थानिक प्रकार्यात्मक अन्तराल को दूर करने की जरूरत है। इससे जहाँ एक तरफ क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर किया जा सकता है। वहाँ दूसरी तरफ नये विचारों और नियोजित विकास को राष्ट्रीय और प्रान्तीय प्रशासन स्थलों से दूर–दराज क्षेत्रों में स्थित गाँवों एवं पुरवों तक पहुँचाया जा सकता है। ग्रामीण विकास केन्द्र का सुदृढ़ तंत्र इस कार्य में बड़ा सहायक सिद्ध हो सकता है। यही कारण है कि ग्रामीण नियोजन के अन्तर्गत सभी गाँवों के बजाय कुछेक केन्द्रीय गाँवों को चुनकर उनमें शिक्षा, स्वास्थय प्रशासन वाणिज्य आदि सुविधाओं को विकसित कर उन्हें ग्रामीण सेवा केन्द्रों में परिवर्तित किया जा रहा है। अतः सेवा केन्द्रों के रूप में केन्द्रीय स्थलों का विकास गाँव के प्रबंधन का एक नव आयाम है जिसे प्रचारित करने की

आवश्यकता है। केन्द्रीय स्थल तंत्र के विश्लेषण से स्थानिक–कार्मिक अंतरालों को समझा जा सकता है। पुनर्गठन द्वारा विकास के स्तरों में विषमताओं को अभीष्ट संख्या एवं सेवाओं वाले सेवा केन्द्रों के विकसित कर दूर किया जा सकता है। इस प्रकार केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त किसी क्षेत्र की स्थानिक कार्मिक संरचना की व्याख्या हेतु एक आधारभूत संकल्पनात्मक रूपरेखा प्रदान करता है। तथा यह चुने हुए परन्तु विकेन्द्रित अवस्थिति वाले सेवा केन्द्रों का एक ऐसा प्रतिमान प्रस्तुत करता है जहाँ आवश्यक प्रकार्यों/सेवाओं को विकसित कर विकास की गति को बढ़ावा दिया जा सकता है। ग्लासन महोदय के अनुसार प्रादेशिक नियोजन में केन्द्र स्थलों के सौपानिक तंत्र के उपयोग में द्विवरावृत्ति एवं अपव्यय के रोकने में मदद मिलती हैं। इससे किसी क्षेत्र के अंतर्गत संसाधनों के आवंटन तथा प्रशासन को प्रभावशाली बनाने में सहायता मिलती है।

सभी से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण सेवा केन्द्र ग्रामीण नियोजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तथा इसके अविछिन्न एवं सुदृढ़ तंत्र के निर्माण द्वारा समन्वित ग्रामीण विकास को सफल बनाया जा सकता है।

5.3 ग्रामीण सेवा–केन्द एवं विकास ध्रुव सिद्धान्त

विकास ध्रुव सिद्धान्त के विकास का श्रेय पेराक्स महोदय को जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विकास सभी जगह एक साथ नहीं सम्पन्न होता है। इसकी शुरूआत गहनता वाले बिन्दुओं अथवा विकास ध्रुवों से होती है जहाँ से यह विभिन्न मार्गों द्वारा समूचे क्षेत्र में विकसित होता हे। इस प्रकार ये विकास ध्रुव किसी समांगी क्षेत्र में तेजी से विकास होता हैं जहाँ से केन्द्र प्रसारी बलों का उद्‌भव होता है जो विकास प्रक्रिया के फैलने में सहायक होते हैं। प्रत्येक विकास ध्रुव आकर्षण और निकर्षण का केन्द्र होता है तथा इसका एक प्रभाव क्षेत्र होता है। पेराक्स के द्वारा विकास ध्रुव को आर्थिक परिदृश्य से जोड़ा गया है। यही कारण है कि किसी स्थान पर एक बड़े उद्योग की स्थापना से ऐसे विकास केन्द्र का निर्माण होता है जिसके चारों तरफ विभिन्न सहायक उद्योगों की स्थापना होती है। ऐसा औद्योगिक समूह तब विकास ध्रुव बन जाता है जब इसके इर्द–गिर्द कई प्रमुख सहायक उद्योगों की स्थापना होने लगती है। इस प्रकार जब औद्योगिक संस्थानों की भलीभाँति स्थापना हो जाती है तो इसके स्वतः विकास ध्रुव का पृष्ठ प्रदेश विकासात्मक गतिविधियों से लाभान्वित हो उठता पेराक्स के विकास ध्रुव सिद्धान्त में स्थानिक उपागम का मिलाकर भौगोलिक दिशा देने का श्रेय बौडविल महोदय को जाता है जिन्होंने किसी भौगोलिक परिवेश में विकास ध्रुव को मानव क्रियाओं का संचय केन्द्र माना। इस प्रकार विकास ध्रुव प्रणोदी उद्योगों का ऐसा समूह है जिससे नगर प्रभाव क्षेत्र में लम्बे समय से नियोजित रूप से बढ़ावा दिया जा रहा है। प्रकार्यात्मक पर्यावेश एवं भौगोलिक पर्यावेश के बीच के द्वैत को समाप्त करने के लिए डरवेण्ट ने विकास ध्रुव के स्थान पर विकास केन्द्र शब्द का प्रयोग किया। ग्रामीण प्रबन्धन के क्षेत्र में ये विकास के विभिन्न मापन स्तरों के सूचक है–विकास ध्रुव जहाँ राष्ट्रीय महत्व का है वही विकास केन्द्र प्रादेशिक स्तर का है। भारत ऐसे विकासशील देशों के संदर्भ में विकास केन्द्र संकल्पना को उपयोगी हेतु आर0पी0 मिश्र ने इन विकास केन्द्रों में तीन आधारभूत स्तम्भों का पाया जाना आवश्यक माना है। जिसके अनुसार ये केन्द्र के रूप में सेवा केन्द्र विकास उत्प्रेरक केन्द्र एवं सामाजिक स्थानान्तरण केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं। क्षेत्रीय स्तर पर विकासात्मक गतिविधियों में अनेकों योगदान के आधार पर कुछ विद्वानों ने विकास ध्रुव को पाँच स्तरी क्रम में विभाजित किया है। (1) विकास ध्रुव (2) विकास केन्द्र (3) विकास बिन्दु (4) सेवा केन्द्र एवं (5) सेवा कोशिका। इनमें से अन्तिम दो मुख्य रूप से ग्रामीण विकास के अंग है इस प्रकार नियोजित विकास हेतु विकास ध्रुंव संकल्पना पर्यावेश के कमबद्ध संगठन का एक महत्वपूर्ण प्रतिमान है। सामान्यतया केन्द्रों की पहचान हेतु विभिन्न केन्द्रीय प्रकार्यों को आधार बनाया

जाता है। क्रिस्टालर ने टेलीफोन सेवा का उपयोग किया। परन्तु आज एक सेवा के बजाय विभिन्न प्रकार की सेवाओं का प्रयोग किया जाता है। जिनके आधार पर विभिन्न सेवा केन्द्रों की पहचान तथा उनके केन्द्रीयता मान एवं पदानुक्रम आदि का निर्धारण किया जाता है। इन सेवाओं को पॉच प्रमुख समूहों में विभाजित किया गया – (1) शैक्षिक (2) आयु वैज्ञानिक (3) परिवहन संचार (4) व्यापार वाणिज्यिक (5) प्रशासनिक सेवा केन्द्र की पहचान में विभिन्न सेवाओं के कार्यान्वयन हेतु माध्यिक सीमा धार जनसंख्या का उपयोग किया जाता है परन्तु अन्य विद्वानों ने इसके लिए बिन्दु समीाधार का उपयोग भी किया है।

लेखक ने भारत के गंगा–यमुना द्वाब क्षेत्र में सेवा केन्द्रों की पहचान हेतु उन अधिवासों का चयन किया है जो रेल एवं सड़क मार्ग के किनारे हो जिनमें कम से कम 20 कर्मचारी तृतीयक सेवाओं में लगे हो तथा जिनमें निम्नलिखित में से एक विशेषता हो– (1) पॉच में से किन्हीं तीन सेवाओं की उपस्थिति के साथ–साथ 7 प्रतिशत कार्यरत जनसंख्या का तृतीयक क्रियाओं से भरण–पोषण (यह 7 प्रतिशत का मापदण्ड क्षेत्रीय औसत के आधार पर निश्चित किया गया है। (2) पॉच में से किन्हीं दो सेवाओं के साथ 11 प्रतिशत जनसंख्या का तृतीयक सेवाओं पर आश्रित हो। (3) पॉच में से एक सेवा तथा 15 प्रतिशत जनसंख्या का तृतीयक व्यवसायों द्वारा पालन–पोषण। (4) बिना किसी सेवा के 19 प्रतिशत जनसंख्या का तृतीयक सेवाओं पर जीन यापन करती हो।

इन सुविकसित सेवा केन्द्रों के अतिरिक्त लेखक ने निम्नलिखित मापदण्ड द्वारा अध्ययन क्षेत्र में कतिपय विकासशील सेवा केन्द्रों की पहचान की है– (1) पॉच में से तीन सेवाएँ। (2) दो सेवाओं के साथ 3.5 प्रतिशत जनसंख्या के तृतीयक सेवाओं पर निर्भरता। (3) एक सेवा के साथ 7 प्रतिशत कार्यरत जनसंख्या का तृतीयक सेवाओं द्वारा भरण–पोषण एवं (4) सेवा विहीन अधिवास के 11 प्रतिशत जनसंख्या के तृतीयक व्यवसायों द्वारा भरण–पोषण।

ये विकासशील सेवा केन्द्र कच्ची अथवा पक्की सड़कों से जुडे होने चाहिए तथा इनमें कम से कम 10 कर्मचारियों का जीवन–यापन तृतीयक क्रियाओं द्वारा होना चाहिए।

5.4 केन्द्रीय प्रकार्य

वे सामाजिक–आर्थिक क्रियायें और सेवाएँ जो किसी सेवा केन्द्र पर उसके उसके आस–पास सम्पादित की जाती है केन्द्रीय प्रकार्यों के नाम से जानी जाती है। इन्हें प्राथमिक मूलभूत अथवा केन्द्र निर्णायक प्रकार्य भी कहा जाता हैं। इसके विपरीत किसी सेवा केन्द्र (अथवा नगर) के चारो ओर निवास करने वाले नागरिकों हेतु सम्पादित प्रकार्यों को गौण अनाधारभूत अथवा गैर केन्द्रीय नामों से उल्लेखित किया जाता है। किसी सेवा केन्द्र द्वारा सम्पादित सबसे प्रमुख कार्य उसके चारों ओर के क्षेत्र हेतु वस्तुओं एवं माल का आदान–प्रदान है। जिसके लिए इसे क्षेत्रीय राजधानी के नाम से जाना जाता है। यह विनियम वास्तव में कभी भी आवश्यकता के सिद्धान्त द्वारा प्रभावित होता है। इस प्रकार व्यापार एवं वाणिज्य किसी सेवा केन्द्र के प्रमुख आधारभूत केन्द्रीय प्रकार्य है। इसके अलावा किसी सेवा केन्द्र से लगे कई छोटे केन्द्र है। जिनका विकास वाणिज्य जैसे प्रधान प्रकार्यों के साथ–साथ सम्पन्न होता है। इन्हें परिवहन, प्रशासन, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजनन, प्रतिरक्षा, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि वर्गो में सम्मिलित किया जाता है। ये उपसंगी प्रकार्य कभी–कभी पहले भी स्वेच्छ कारणों से भी उत्पन्न हो जाते हैं।

किसी सेवा केन्द्र की केन्द्रीयता पदानुक्रम एवं प्रभाव क्षेत्र में सम्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार्यों की संख्या, विविधता और स्तर आदि से प्रभावित होते हैं जैसे की ग्राम सेवा केन्द्र पदानुक्रम के सबसे निम्न स्तर पर स्थित केन्द्रीय ग्राम में साप्ताहिक बाजार, प्राइमरी स्कूल, ब्रांच पोस्ट, बस स्टाप, न्याय

पंचायत मुख्यलय, बीज–उर्वरक वितरण। विक्रय केन्द्र आदि केन्द्रीय प्रकार्य स्थित हो सकते हैं। इसके विपरीत उच्च स्तर के जिला केन्द्र में नियमित प्रतिदिन बाजार, जनपदीय न्यायालय, जिलाधिकारी कार्यालय हेड पोस्ट आफिस, बस, रेलवे स्टेशन, डिग्री कॉलेज, व्यवसायिक संस्थान, अस्पताल, बैंक आदि के उच्च स्तरीय केन्द्रीय प्रकार्य पाये जाते हैं जिसके लिए लोग यहाँ दूर–दूर से आते हैं। उल्लेखनीय है कि एक वृहत सेवा केन्द्र आपने मध्य स्थित निम्न स्तरीय सेवा केन्द्रों के सामान्य केन्द्रीय प्रकार्य सम्पादित करते हुए कतिपय विशिष्ट एवं उच्च स्तरीय सेवाओं को भी प्रदान करता है। जिसके लिए उच्च स्तरीय सेवा केन्द्र जाना जाता है तथा जो उसके प्रभाव क्षेत्र के विस्तार में सहायता होती है।

5.5 सेवा केन्द्रों की केन्द्रीयता

सेवा केन्द्र के रूप में किसी केन्द्र के अन्य केन्द्रों की तुलना में आपेक्षिक महत्व को उसकी केन्द्रीयता कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसे किसी सेवा केन्द्रों के महत्व के सूचकांक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। खान कहते है केन्द्रीयता किसी क्षेत्र को जनसंख्या के उपभोक्ता व्यवहार की एक अभिव्यक्ति है। जिसके कारण सेवा केन्द्रों को पदानुक्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है। सेवा केन्द्रों के संदर्भ में इसे किसी एक प्रकार्यो की केन्द्रीयता तथा सेवा केन्द्र द्वारा किए गए सभी प्रकार्यों की केन्द्रीयता अर्थात् पूर्ण केन्द्रीयता के रूप में व्यक्त किया जाता है। सामान्यताः किसी सेवा केन्द्र की केन्द्रीयता और उसके जनसंख्या आकार के बीच सीधा संबंध पाया जाता है। ऐसा इसीलिए होता है क्योंकि जनसंख्या आकार के वृद्धि के साथ–साथ विभिन्न सेवाओं एवं प्रकार्यों हेतु मॉग बढ़ती जाती है जिससे सेवा केन्द्र के आकर्षक की मात्रा में भी वृद्धि होती है। केन्द्रीयता के निर्धारण हेतु विभिन्न परिमाणात्मक विधियों का उपयोग किया जाता है। क्रिस्टालर ने एतदर्थ टेलीफोन संयोजनों, की संख्या का उपयोग करते हुए निम्न सूत्र का उपयोग किया है–

सूत्र= - $Zz = Tz - Eg \frac{Tg}{Eg}$

यहा Wa Zz -केन्द्रीयता सूचकांक

Tz = स्थानीय टेलीफोन की संख्या

Ez = स्थानीय निवासियों की संख्या

Tg = क्षेत्रीय टेलीफोन की संख्या, एवं

Eg = क्षेत्रीय निवासियों की संख्या।

चूँकि टेलीफोन सेवा का उपयोग अकेन्द्रीय कार्यों में भी होता है तथा निम्न स्तरीय सेवा केन्द्रों में इनका अभाव पाया जाता है अतः आलोचना से बचने के लिए क्रिस्टालर ने केन्द्रीयता मापन हेतु एक–दूसरे सूत्र का प्रयोग किया जो फुटकर व्यापार पर आधारित था।

$$Ct = st - Pt \frac{Sr}{Pr}$$

जहाँ Ct = केन्द्रीयता सूचकांक, St = फुटकर व्यापार में लगे हुये स्थानीय व्यक्तियों की संख्या Pt = प्रदेश की जनसंख्या Sr = प्रदेश में फुटकर व्यापार में लगें व्यक्तियों की संख्या, Pr प्रदेश की जनसंख्या गोडलुण्ड ने आर्थिक क्रियाओं के आधार पर केन्द्रीयता मापन हेतु निम्न सूत्र का उपभोग किया–

$$C = \frac{N \times 100}{P}$$

जहाँ C = केन्द्रीयता सूचकांक, N = सेवा केन्द्र पर व्यापार में लगे व्यक्तियों की संख्या तथा P = प्रदेश की कुल वाणिज्यिक जनसंख्या। काशीनाथ सिंह ने मध्य गंगा घाटी के केन्द्रीय स्थलों के अध्ययन हेतु इसको लागू किया। ओम प्रकाश सिंह ने इसे संशोधित कर उत्तर प्रदेश के केन्द्रीय स्थलों के अध्ययन में किया।

$$R.C.I. = \frac{Pc_1 - Pt_1 \cdot \frac{Rc}{Rt}}{SPc - SPt \cdot \frac{Rc}{Rt}}$$

जहाँ R.C.I. आपेक्षिक केन्द्रीयता सूचकांक Pc_1 = केन्द्र की ग्रामीण वाणिज्यिक जनसंख्या Pt_1 = केन्द्र की कुल ग्रामीण जनसंख्या, Rc = प्रदेश की गामीण वाणिज्यिक जनसंख्या, Rt = कुल प्रोदशिक जनसंख्या k S Pc = Pc_1, ...Pc_2.....Pc_n का संकलन तथा SPt = Pt_1 .....Pt_2..... Pt_n का संकलन दत्त एवं उनके साथियों ने एतदर्थ परिवहन सूचकांक का उपयोग किया है। लेम्बक ने गोडलुण्ड के सूत्र का उपभोग करते हुए निचले गंगा–यमुना दाब के 401 सेवा केन्द्रों के केन्द्रीयता सूचकांक मानों का परिकलन विस्तार 0.0144 से 42,911 के मध्य पाया जाता है। स्पियरमैन के सहसंबंध गुणांक विधि द्वारा केन्द्रीयता मानों एवं जनसंख्या के बीच सह संबंध परिकलित करने पर इनके मध्य तीव्र धनात्मक (0.9) सहसंबंध की पुष्टि होती है।

सेवा केन्द्रों का मध्य केन्द्र ज्ञात करने की उपरोक्त सभी विधियॉ जनसंख्या आकार पर आधारित है। इसके साथ ही साथ सेवा केन्द्रों में होने वाले प्रकार्यों के आधार पर भी उनकी केन्द्रीयता का ज्ञात किया जा सकता है। एतदर्थ सेवा केन्द्रों द्वारा प्रदत्त 33 समूहों में विभाजित करते हुए प्रत्येक सेवा के लिए क्षेत्र में उसकी आवृत्ति के आधार पर प्राप्तांक मान निर्धारित किया गया है। किसी सेवा केन्द्र के सभी प्राप्तांक मानो के आधार पर उसकी केन्द्रीयता ज्ञात किया जा सकता है।

केन्द्रीय सेवा–समूह एवं सेवाऍ–

	सेवा समूह		सेवाऍ	प्राप्तांक मान
अ)	शिक्षा	1)	जूनियर बेसिक स्कूल	1
		2)	सीनियर बेसिक स्कूल	2
		3)	उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	3
		4)	डिग्री कॉलेज/पॉलीटेक्निक	5
		5)	विश्वद्यिालय	20
		6)	सार्वजनिक पुस्तकालय	3
		7)	सार्वजनिक वाचनालय	5
c)	स्वास्थ्य	8)	सामान्य चिकित्सक	2
		9)	मातृ एवं शिशु कल्याण	3

		10)	परिवार कल्याण केन्द्र	3
		11)	पशु चिकित्सक केन्द्र	3
		12)	डिस्पेन्सरी	3
		13)	स्वास्थ्य केन्द्र	4
		14)	अस्पताल	5
		15)	क्षयरोग निदान गृह	7
स)	परिवहन एवं	16)	पोस्ट ऑफिस	2
	संचार	17)	बस स्टाप	2
		18)	बस स्टेशन	3
		19)	रेलवे स्टेशन	3
		20)	पोस्ट एवं टेलीग्राफ कार्यालय	3
		21)	टेलीफोन केन्द्र	5
द)	वित्त एवं	22)	सहकारी समिति	2
	व्यापार	23)	बाजार–साप्ताहिक	3
			द्वि– साप्ताहिक	4
			त्रि– साप्ताहिक	7
		24)	सहकारी बैंक	10
		25)	बैंक	5
य)	प्रशासन	26)	पुलिस स्टेशन	3
		27)	विकास खण्ड मुख्यलय	3
		28)	तहसील मुख्यलय	5
		29)	जनपद मुख्यलय	10
		30)	टाउन एरिया	5
		31)	म्यूनिसिपल बोर्ड/कन्टोनमेण्ट	10
		32)	म्यूनिसिपल कारर्पोरेशन	20
		33)	नगरीय समूह	20

इस सारिणी में प्रत्येक सेवा हेतु मानक प्राप्तांक मान निर्धारित करते समय इस सिद्धान्त को ध्यान में रखा गया है कि जो सेवा जितनी ही स्वल्प है उसका मान उतना ही अधिक है।

5.6 सेवा केन्द्रों का स्थानिक वितरण

इसके अन्तर्गत मानचित्र पर सेवा केन्द्रों को चिन्हित कर विभिन्न सांख्यिकीय विधियों द्वारा

अनेक स्थानिक वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह जानने का प्रयास किया गया हैकि उनका वितरण अनियमित, नियमित एवं संगुच्छित में से किस प्रकार का है। इस सन्दर्भ में क्लार्क तथा इवांस द्वारा प्रयोग निकटतम पड़ोसी विश्लेषण विशेष महत्व का है इस विधि द्वारा परिकलित अनियमितता संकेतांक अथवा Rn के मान के आधार पर सेवा केन्द्रों के वितरण प्रतिरूप की व्याख्या की जा सकती है। अधिवासों की ही भॉति सेवा केन्द्रों के वितरण प्रतिरूप पर भी विभिन्न भौतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारकों का प्रभाव देखा जाता है। एक समतल, समांगी एवं समान सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं वाले क्षेत्र में यह वितरण नियमित पाया जाता है। चूँकि सेवा केन्द्र किसी क्षेत्र के सामाजिक–आर्थिक विकास में तेजी लाने का कार्य करते हैं किसी क्षेत्र में इनका अभाव विकास की प्रक्रिया को रोक सकता है इसे नये केन्द्रों की स्थापना द्वारा पूरा किया जा सकता है।तिवारी एवं यादव ने इलाहाबाद जनपद के सेवा केन्द्रों के अध्ययन में वितरण की असमानता को दिखाया है। उनके अनुसार सरसवॉ, कौशाम्बी, नेवादा, जसरा, शंकरगढ़, कॉधियारा, कोराव, मेजा एवं माण्डा विकास खण्डों में फैले जनपद के 45 प्रतिशत क्षेत्र में कुल सेवा केन्द्रों का मात्र 21.1 भाग स्थित है। कौशाम्बी विकासखण्ड में केवल एक तिहाई श्रेणी के सेवा केन्द्र की स्थिति पाई जाती है जबकि करछना विकासखण्ड में विभिन्न श्रेणी के सेवा केन्द्रों की संख्या 13 है। अध्ययन क्षेत्र में सेवा केन्द्रों की अधिक संख्या ग्राण्ड ट्रंक रोड, उत्तरी रेलवे की मुख्य शाखा उत्तर–पूर्व रेलवे के सहारे देखी जाती है। परिवहन एवं संचार के साधनों के अतिरिक्त मृदा उर्वरता, कृषि उत्पादकता तथा नगरीकरण आदि का इनके वितरण पर स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है। जहाँ जनसंख्या घनत्व अथवा ग्रामों के घनत्व तथा सेवा केन्द्रों के घनत्व के मध्य सीधा धनात्मक सह सम्बन्ध पाया जाता है। वहीं दूर बसे गाँवों एवं सेवा केन्द्रों के घनत्व के बीच यह सम्बन्ध ऋणात्मक है। निर्धारित अन्तर से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में 1.60 मान की सम अन्तरण रेखा सेवा केन्द्रों के वितरण को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस रेखा के उत्तर स्थित निम्न घनत्व वाले क्षेत्रों में सेवा केन्द्रों का अधिक सान्द्रण देखा जाता है जबकि सेवा केन्द्रों का वितरण निम्न है। 1.80 मान वाली सम अन्तरण रेखा के दक्षिण का अधिकांश क्षेत्र इस दृष्टि से एक निषेधक भाग है।

इलाहाबाद जनपद में सेवा केन्द्रों का स्थानिक प्रतिरूप 1981

तहसील	ग्रामीण अधिवास (संख्या)	ग्रामीण सेवा केन्द्र (संख्या)	नगरीय सेवा केन्द्र (संख्या)	विकासशील सेवा केन्द्र (संख्या)
सिराथु	250	15	2	20
मंझनपुर	269	8	2	23
चायल	309	21	4	24
सोरॉव	415	26	2	44
फूलपुर	502	21	2	29
हंडिया	601	20	1	31
बारा	286	10	1	13
करछना	296	23	0	19
मेजा	603	18	2	27
जनपद योग	3531	162	16	230

सेवा केन्द्रों का सेवा–केन्द्र–

सेवा केन्द्रों के सेवा क्षेत्र को पूरक क्षेत्र, पोषक क्षेत्र, पृष्ट प्रदेश, प्रभाव क्षेत्र आदि कई नामों से व्यवहत किय जाता है। इसे पातिक अथवा ध्रुवित क्षेत्र भी कहा जाता है। यह सेवा केन्द्र के चारों तरफ स्थित वह क्षेत्र. होता है जो सेवा केन्द्र की अनेक सेवाओं को प्राप्त करता है तथा जो सेवा केन्द्र की विभिन्न संसाधनों की आपूर्ति करता है। यह एक विषमांगी क्षेत्र हो सकता है। जिसमें नगरों, कस्बों एवं गाँवों की स्थिति पाई जाती है। यह अभिकेन्द्री और आपकेन्द्री उभय बलों से प्रभावित होता है। इसमें प्रथम द्वारा संगृहीत तथा द्वितीय द्वारा वितरक सेवाओं को पोषण मिलता है। इस प्रकार सेवा केन्द्र क्षेत्रीय वस्तुओं के संग्रह एवं केन्द्रीय वस्तुओं के वितरण का कार्य करता है। जहाँ यह आपने अस्तित्व हेतु प्रभाव क्षेत्र के संसाधनों पर निर्भर रहता है। वही सेवा क्षेत्र के निवासी आपनी बहुत सी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सेवाओं हेतु सेवा केन्द्र पर आश्रित रहते हैं। इस प्रकार एक सेवा केन्द्र आपने पृष्ठ प्रदेश से कुछ लेता है और बदले में उसे कुछ देता है। इस आदान–प्रदान की क्रिया पर ही सेवा केन्द्र और उसके सेवा क्षेत्र की समृद्धि एवं प्रत्याशंसा निर्भर करती है।

इस सेवा क्षेत्र के सीमा निर्धारण हेतु कई गणितीय विधियों का उपयोग किया गया है। क्रिस्टालर एवं लॉश ने सेवा केन्द्रों के सौपानिक सम्बन्ध पर आधारित आगमनिक उपागम का प्रयोग किया है। गोडलुण्ड (1956) और ग्रीन (1952) ने बस सेवाओं के ऑकड़ों का इस परिसीमन में प्रयोग किया है। एमेल्स (1944) के डिकीन्सन (1964) प्रभृत्ति ने निगमनिक प्रक्रमों द्वारा इस सीमा क्षेत्र के निर्धारण का प्रयास किया है। जबकि ब्रेसी (1953 एवं 1956) ने एतदर्थ केन्द्रीयता के ग्रामीण उपादान का प्रयोग किया है। हाल में बेरी (1967) ने रीले (1931) के स्रोत केन्द्राकर्षण नियम एवं विच्छेद बिन्दु समीकरण का प्रयोग कर इस कार्य को आसान बना दिया है। उनके द्वारा प्रयुक्त सूत्र का विवरण निम्नवत है–

$$Ls = \frac{D}{1 + \frac{AC}{BC}}$$

जहाँ D = केन्द (A और B) सेवा केन्द्रों के मध्य दूरी

Ac = केन्द्र A का केन्द्रीयता गणन

BC = केन्द्र B का केन्द्रीयता गणन

Ls = A के सेवा क्षेत्र का B से विस्तार

उपरोक्त सूत्र का प्रयोग करते हुए इलाहाबाद जिले के पाँच स्तरी सेवा केन्द्रों के सेवा क्षेत्रों को प्रदर्शित किया गया है। जहाँ प्रथम स्तरीय सेवा केन्द्र इलाहाबाद का प्रभाव समूचे जनपद पर फैला है वही सिराथू, सोरॉव और जसरा क्रमशः छाव, गंगापार और यमुनापार क्षेत्रों में द्वितीय स्तर के प्रभावशाली सेवा केन्द्र है।

सिराथू सेवा–क्षेत्र

इस क्षेत्र का विस्तार चायल और नेवादा विकास खण्डों को छोड़कर समूचे गंगा यमुना दाब क्षेत्र पर फैला है। इसके अन्तर्गत तीन स्तर के सात सेवा केन्द्रों (अझुवा, सैनी, कड़ा, कनैली, सरसवा, पल्हना, उपरहार एवं चखा) के क्षेत्र समाहित है इस सेवा क्षेत्र में इतनी ही संस्था के चतुर्थ और पंचम स्तरीय सेवा केन्द्र भी पाए जाते हैं जहाँ चरवा के पूरक क्षेत्र में केवल चतुर्थ स्तरीय सेवा केन्द्र स्थित है वही सरसवा का प्रभाव क्षेत्र 5 चतुर्थ स्तरीय और 4 पंच स्तरीय सेवा केन्द्रों के प्रभाव क्षेत्रों में

विभाजित है।

सोरॉव सेवा–क्षेत्र

इस सेवा क्षेत्र का विस्तार गंगा पार भाग में पाया जाता है। इसमें अधिकतर संख्या में सेवा केन्द्र पाये जाते है। जिनमें 16 तृतीय स्तरीय 22 चतुर्थ स्तरीय और 33 पंचम स्तरीय केन्द्र समाहित है। ये सभी तृतीय स्तरीय केन्द्र पक्की सड़कों और रेलमार्गों द्वारा इलाहाबाद नगर से भली भॉति सम्बद्ध है तथा इनमें दैनिक बाजार, डिस्पेन्सरी, उच्चतर माध्यमिक और माध्यमिक विद्यालय पोस्ट एवं टेलीग्राफ कार्यालय ग्रामीण बैंक आदि की सुविधाएं प्राप्त है।

जसरा सेवा–क्षेत्र

इसका फैलाव जिले के सबसे वृहद् क्षेत्र पर पाया जाता है। जिसमें सम्पूर्ण यमुनापार और द्वाब का पूर्वी भाग समाहित है। इसके प्रभाव क्षेत्र में 12 तृतीय 28 चतुर्थ औरा 28 पंचम स्तरीय सेवा केन्द्र आते है। तृतीय स्तर के सेवा केन्द्रो में कोरांव, सिरसा, भारतगंज, शंकरगढ़, घूरपुर, जारी, नेवादा, चायल और मनौरी आदि प्रमुख है।

5.8 सेवा केन्द्रों में स्थानिक प्रकार्यात्मक अन्तराल

सेवा केन्द्रों का समान एवं क्रमबद्ध वितरण एक सैद्धान्तिक परिकल्पना है जिसे वास्तविक जगत में सच कर दे पाना एक कठिन कार्य है परन्तु चूँकि संतुलित प्रादेशिक विकास में इसकी मुख्य भूमिका है। अतः नियोजन में इसे विशेष महत्व दिया जाता है। किसी क्षेत्र में सेवा केन्द्रों के समान वितरण और उसके तंत्र को प्रभावशाली बनाने के लिए उसमें क्षेत्रीय कार्यात्मक अन्तरालों को खोजना और उनको पूरा करना जरूरी होता है। इसमें स्थानिक अन्तरालों को ढूँढने के लिए क्षेत्र में सेवा केन्द्रों के स्थानिक प्रतिरूप का विश्लेषण किया जाता है अर्थात् इसमें अनके स्तर के विकास के बीच की दूरी और उनके वितरण प्रतिरूप की व्याख्या महत्वपूर्ण होती है। इस प्रक्रिया में निकटतम पड़ोसी विश्लेषण काफी सहायक होता है। इससे एक तरफ जहाँ सेवा केन्द्रों के वितरण के अनियमित, नियमित एवं गुच्छित होने का आभास मिला है। वहीं दूसरी तरफ सेवा केन्द्रों के बीच औसत दूरी भी व्यक्त किया जा सकता है। अर्थात वे विरल बसे है अथवा सघन? सेवा केन्द्रों के प्रबंधन द्वारा इन दूरियों को तर्क संगत बनाया जा सकता हैं। यह कार्य विरल सेवा केन्द्र वाले क्षेत्रों में नये सेवा केन्द्रों को विकसित कर अथवा सघन सेवा केन्द्र के क्षेत्रों में कुछ सेवा केन्द्रों को अवनत कर के किया जा सकता है।

प्रकार्यात्मक अन्तराल के अन्तर्गत जनसंख्या के आधार पर किसी क्षेत्र के अधिवासों में यह पता लगाने का प्रयास किया गया हैकि उसमें किस प्रकार्य का अभाव है। अधिकतर कार्यकारी जनसंख्या का उपयोग किय जाता है। क्षेत्रीय–कार्यात्मक अन्तरालों के निर्धारण हेतु उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त कई अन्य उपाय भी सुझाए गए हैं। जानसन (1905) ने सबसे निचले स्तर (ग्रामीण बाजार) के सेवा केन्द्र के सेवित और असेवित क्षेत्र के बीच परिसीमन हेतु 8 किमी. की त्रिज्या की दूरी का प्रस्ताव किया है जबकि सेन इत्यादि (1971) ने इसके लिए 30 वर्ग मील (777 वर्ग किलोमी0) क्षेत्र और 6545 की जनसंख्या का सुझाव दिया है।

5.9 सेवा केन्द्र नियोजन

सेवा केन्द्र प्रबंधन सेवा केन्द्रों के अध्ययन का एक प्रमुख विषय है। इसके दो प्रमुख उ्देश्य है–

(1) क्षेत्र में सेवा केन्द्रों के एक विशेष तंत्र का विकास करना।

(2) क्षेत्र के प्रत्येक भागों को समान रूप से विभिन्न स्तर के सेवा केन्द्रों की सुविधाएं प्रदान करना। इस प्रकार के नियोजन के तीन प्रमुख आयाम है– (1) स्थानिक प्रकार्यात्मक नियोजन (2) अधः संस्तरीय नियोजन एवं (3) सेवा क्षेत्र नियोजन। इसमें प्रथम के अंन्तर्गत इस बात पर बल दिया जाता है कि क्षेत्र के प्रत्येक भाग में सेवा केन्द्रों का समान वितरण उपलबध हो तथा उनमें एक समान केन्द्रीय सेवाएं पाई जाती हैं यहाँ इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि एक समान के सेवा केन्द्रों के संचित क्षेत्र सेवित जनसंख्या और केन्द्रीय प्रकार्यों में विभिन्नता नहीं पाई जानी चाहिए। एतदर्थ प्रत्येक सेवा केन्द्र द्वारा सेवित क्षेत्र जनसंख्या तथा दो समान स्तरीय केन्द्रों के बीच दूरियों की जानकारी आवश्यक होती है जिसके आधार पर क्षेत्रीय प्रकार्यात्मक अन्तरालों का पता लगाया जाता है। सेवा केन्द्रों द्वारा अन्तरालों को विकसित कर सुव्यवस्थित प्रभावशाली और विकासोन्मुख बनाया जा सकता है। स्थानिक अन्तरालों के परिपूरक हेतु जहाँ कुछ विद्वानों ने वर्तमान लघु अधिवासों में एतदर्थ नये केन्द्रीय प्रकार्यों के विकास हेतु प्रस्ताव किया है वही दूसरों ने ऐसे पिछड़े क्षेत्रों को पड़ोस के सेवा केन्द्रों से परिवहन मार्गो द्वारा सुअभिगम्य बनाने का सुझाव दिया है। जानसन (1965) महोदय ने सबसे निम्न स्तर के सेवा केन्द्र हेतु 8 किमी0 की त्रिज्या की दूरी का प्रस्ताव किया है जबकि सेन इत्यादि (1971) ने सेवित क्षेत्र का क्षेत्रफल 30 वर्ग मील (77.7 वर्ग किमी0) एवं जनसंख्या 6545 उचित पाया है। लेखक ने गंगा यमुना द्वाव क्षेत्र में सेवा केन्द्रों के नियोजन हेतु सेवा तन्त्रों के बीच 5 किमी0 (सेवित जनसंख्या 7500) सेवा केन्द्रों के मध्य 10 किमी0 (जनसंख्या 30,000) विकास बिन्दुओं के बीच 20 किमी. (जनसंख्या 1 लाख) विकास केन्द्रों के बीच 32 किमी0 (जनसंख्या 4 लाख), विकास केन्द्रों के बीच 32 किमी. (जनसंख्या 4 लाख) तथा विकास ध्रुवों के मध्य 70 किमी. (जनसंख्या 20 लाख) की दूरियों का सुझाव दिया है। सेवा केन्द्रों में निम्न प्रकार नियोजन हेतु लेखक ने सेवा के छोटे तन्त्रों का विकास केन्द्रीय ग्रामों के स्तर पर करने का प्रस्ताव दिया है, जिसमें, सीनियर बेसिक स्कूल, ब्रान्च पोस्ट आफिस ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्र, अनुरोध बस स्टाप, प्राथमिक ऋण समिति, कुटीर एवं लघु उद्योग, साप्ताहिक बाजार, उर्वरक बीच और कृषि उपकरण की दुकानें, फुटकर स्टोर, नाई, लोहार, बढ़ई, दर्जी, कुम्हार आदि की दुकानों की सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए इससे उच्च स्तर के सेवा केन्द्रों की स्थिति न्याय पंचायत स्तर पर की जानी चाहिए। जिनमें उच्चतर प्राथमिक विद्यालय ग्रामीण पालीटेक्निक, उप डाकघर, ग्रामीण डिस्पेन्सरी (मातृ एवं शिशु परिचर्चा इकाई सहित) बस स्टाप, सहकारी बैंक ग्रामीण औद्योगिक स्थान, द्वि साप्ताहिक बाजार, पशुपालन, उपकेन्द्र, कीटनाशक, विक्रय केन्द्र सामान्य आवश्यक वस्तु की दुकानों की सुविधाएं उपलबध होनी चाहिए।

तीसरे स्तर के विकास बिन्दुओं की स्थापना विकास खण्ड स्तर पर की जानी चाहिए जिनमें डिग्री कॉलेज तकनीकी संस्थान, औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र, आपरेशन सुविधाएं सहित अस्पताल, डाक, एवं तार घर, टेलीफोन एक्सचेंज, बस स्टेशन, रेल स्टेशन, राष्ट्रीयकृत बैंक, मध्यम स्तरीय उद्योग पशु संवर्धन केन्द्र, थोक विनियमित बाजार, पुलिस स्टेशन, दवा खाना आदि सेवाएं उपलब्ध हो। विकास केन्द्रों का विकास तहसील स्तर पर किया जाना चाहिए जो तकनीकी वैज्ञानिक संस्थान, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पब्लिक पुस्तकालय, वाचनालय, अस्पताल, पशु चिकित्सालय, डाक एवं तार कार्यालय, टेलीफोन सेवाएं, रेल स्टेशन, शीतालय व्यवसायिक बैंक, भूमि विकास बैंक, पुलिस स्टेशन, नगर निगम आदि सुविधाओं से उपलब्ध हो। प्रथम स्तर के विकास ध्रुव की अवस्थिति जिला मुख्यलय पर की जानी चाहिए जिनमें विशिष्ट सेवाओं जैसे विश्वविद्यालय, इंजीनियरिंग कॉलेज, कम्प्यूटर केन्द्र, पूर्ण विकसित अस्पताल, पशु अस्पताल, कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र, क्षयरोग अस्पताल, कुष्ठ अस्पताल, सिनेमा, खेलकूद केन्द्र, प्रधान डाक घर, टेलीफोन एक्सचेंज, तारघर, रेलवे जंक्शन परिवहन डिपो, बीमा

कार्यालय औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रतिष्ठान आदि का सकेन्द्रण पाया जाय। इसी आधार पर तिवारी एवं यादव ने वर्ष 2001 ई0 तक इलाहाबाद जनपद में विकास ध्रुव, 7 विकास केन्द्रों 28 विकास बिन्दुओं, 84 सेवा केन्द्रों तथा 252 सेवा कोशिकाओं के विकसित किए जाने का सुझाव दिया है जिनका विवरण सारणी में दिया गया है।

इलाहाबाद जनपद में 2001 ई0 तक सम्भावित एवं प्रस्तावित सेवा केन्द्र

	वर्तमान संस्था संस्था (1981)	आपेक्षित संस्था	सभावित संस्था	प्रस्तावित अन्तरकेन्द्र संस्था	सेवाकेन्द्र औसत दूरी (किमी.)	सेवित (वर्ग किमी.) (हजार में)	जनसंख्या
1 विकास ध्रुव	1	2	1	1	60	3600	2000
2 विकास केन्द्र	3	9	9	7	28	784	400
3 विकास बिन्दु	35	32	67	28	15	225	100
4 सेवा केन्द्र	64	90	101	84	9	81	30
5 सेवा कोशिका	75	580	230	252	4	16	5
योग	178	713	408	372	—	—	—

इस संस्था के निर्धारण में सेवा केन्द्रों की वर्तमान (1981) संस्था आपेक्षित संस्था, सन् 2001 तक सभावित संस्था के साथ–साथ उनके स्थानिक कार्यात्मक अन्तराल आदि को दृष्टिगत किया गया है। यद्यपि अधिकतर प्रयास किया गया है कि वर्तमान सेवा केन्द्रों को सभी प्रस्ताव में सम्मिलित कर लिया जाय पर आवश्यकतानुसार पिछड़े क्षेत्रों के विकास, केन्द्रीय अवस्थिति एवं अधिगम्यता हेतु नये अधिवासों को भी सेवा केन्द्र बनाया जाए। इसी प्रकार क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप कतिपय सेवा केन्द्रों के सौपानिक क्रम में भी परिवर्तन करने का प्रयास किया गया।

सेवा केन्द्र नियोजन का एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू अधः संरचनात्मक प्रबंधन से सम्बद्ध है। इसके लिए सेवा केन्द्रों की अभिगम्यता नियोजन से सम्बद्ध है। इसके लिए सेवा केन्द्रों की यातायात में वृद्धि के साथ–साथ उनमें ऊर्जा, पेयजल, स्वच्छता, जल निकास, प्रदूषण आदि की सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए। ऊर्जा आदि के क्षेत्र में बाह्य स्रोत के बजाय यदि स्थानीय संसाधनों का प्रयोग कर आत्म निर्भरता प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य होगा।

सेवा केन्द्र नियोजन का तीसरा पहलू इनके सेवा क्षेत्र के नियोजन से जोड़ता है। वास्तव में यह सेवा क्षेत्र ही हैं जो सेवा केन्द्रों के उद्भव एवं विकास हेतु सहायक होता है इस क्षेत्र की समृद्धि सेवा केन्द्र को भी प्रगति के मार्ग पर बढ़ावा मिलता है तथा उसे नवीन उच्च स्तरीय सेवाओं को शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करती है। सेवा क्षेत्र के नियोजन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इस क्षेत्र में आर्थिक सामाजिक उन्नति की नई संभावनाओं की शुरूआत हो सके। विशेषकर इसके ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिकरण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कृषि पदार्थों को समीप के नगरीय केन्द्रों को सीधे भेजने के बजाय उन्हें परिष्कृत करने की अवस्था ग्रामीण क्षेत्रों में होनी चाहिए। भारत सहित अनेक अविकसित देशों का सेवा केन्द्र तंत्र, जिसका विकास अतीत की सामन्तवादी व्यवस्था के दौरान हुआ है। शोषण प्रधान कर्षण कारक से प्रभावित है जिसके कारण लगातार संसाधनों एवं प्रतिभा का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर पलायन हो रहा है। इसे रोककर बदलने की आवश्यकता है ताकि दबाव कारक के प्रबल होने के साथ–साथ सेवा केन्द्र सही तौर पर सामाजिक–आर्थिक विकास के उत्प्रेरक की भूमिका अदा कर सके। ऐसा सेवा क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास वैज्ञानिक द्वारा किया जाए। उसे सेवा केन्द्र के पूरक प्रदेश के बजाय एक समान महत्व के क्षेत्र के रूप में विकसित किया जाना

चाहिए। जिसकी आपनी कुछ विशिष्टताऐं हो तथा जो सेवा केन्द्रों से लोगों को स्वतः आपनी ओर आकर्षित कर सके। ऐसे क्षेत्र परिवहन एवं संचार सहित समस्त आवश्यक सुविधाओं से सम्पन्न होने चाहिए।

5.10 सारांश

इस इकाई में ग्रामीण सेवा केन्द्रों उनके कार्यात्मक विशेषताओं के आधार को आप जान गये होगें। ग्रामीण सेवा केन्द्र में जितनी ही सुदृढ़ एवं अविछिन्न व्यवस्था पाई जाती है वह क्षेत्रीय विषमता पायी जाती है। क्योंकि सेवा केन्द्र आपने लिए नही बल्कि आपने चतुर्दिक स्थित प्रभाव निवासियों की सामाजिक–आर्थिक आवश्यकाताओं की पूर्ति करता है।

आप भलीभाँति समझ गये होगें कि ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विकास में केन्द्रीय सिद्धांत, ध्रुव सिद्धांत मील का पत्थर साबित हो रहा है। संतुलित प्रादेशिक विकास में इन सिद्धान्तों का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सेवा केन्द्रों को प्रकार्यात्मक केन्द्रीयता तथा पूर्ण केन्द्रियता के रूप में व्यक्त किया जाता है। आप जान गये होगें कि सेवा केन्द्र की केन्द्रियता और उसके जनसंख्या आकार के बीच सीधा सम्बन्ध पाया जाता है। क्योंकि जनसंख्या आकार के बढ़ने के साथ–साथ विभिन्न सेवाओं और प्रकार्यों मॉग बढ़ती जाती है ताकि सेवा केन्द्र सही तौर पर सामाजिक–आर्थिक विकास के उत्प्रेरक की भूमिका अदा कर सकें।

5.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श नगर

(1) ग्रामीण सेवा केन्द्र का समीपवर्ती क्षेत्र में किस प्रकार का सम्बन्ध होता है।

अ) प्राकृतिक ब) सामाजिक स) कार्यात्मक द) भौतिक

(2) ग्रामीण सेवा केन्द्र किस नाम से नहीं पुकारा जाता है ?

अ) ग्रामीण केन्द्रीय स्थान ब) वृद्धि केन्द्र

स) कृषि गाँव द) ग्रागर केन्द्र

(3) किस विद्वान ने ग्रामीण सेवा को परिभाषित नहीं किया ?

अ) आर.एल सिंह ब) ओ.पी. सिंह

स) मो0 शफी द) कोई नहीं

(4) विकास ध्रुव सिद्धान्त किसने दिया–

अ) हार्टशोन ब) पेराक्स स) डिकिन्सन द) कुहन

आदर्श उत्तर–

1) स 2) स 3) स 4) ब

5.12 सन्दर्भ सूची

1. Glasson J.1974 : An Intoducation to Regional Planing : concetps, Theory and Pratice, Huthecinon London.
2. Mishra, R.P. 1971 : Growth Poles and growth centres in Urban and Regional Planning in India Development studies.

3, Tiwari R.C. 1984 : Settlement system in Rural India, Allahabad geographical society allahabad.
4. Singh. Kashi N. 1966 : Sptial patterns of centrall placesin middle ganga valley.
5. Yadav H.S. 1988 : Intergrated Rural Development : A case study of AllahabadDistrict.
6. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
7- करन, एम0पी0,ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।
8. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

5.13 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

प्र0–1 सेवा केन्द्र से क्या तात्पर्य है, इसके सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

प्र0–2 सेवा केन्द्रों की केन्द्रियता पर प्रकाश डालिए?

प्र0–3 सेवा केन्द्र के स्थानिक वितरण प्रतिरूप को समझाइये?

प्र0–4 सेवा केन्द्र नियोजन पर टिप्पणी लिखिए?

इकाई–06 ग्रामीण नियोजन

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 ग्रामीण नियोजन : ऐतिहासिक दृष्टिकोण

6.3 ग्रामीण नियोजन के उपागम

6.4 ग्रामीण नियोजन के कार्यक्रम

6.5 ग्रामीण नियोजन के संघटक

6.6 ग्रामीण नियोजन के प्रतिमान

6.7 ग्रामीण नियोजन हेतु युक्तियॉ

6.8 सारांश

6.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

6.10 सन्दर्भ सूची

6.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

6.0 प्रस्तावना

किसी क्षेत्र अथवा देश के संसाधनों के इष्टतम् उपयोग द्वारा आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने की विधि को नियोजन कहते हैं। दूसरे शब्दों में नियोजन विशेष लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया गया एक सुव्यवस्थित, सतर्क और सतत् प्रयास है। जिसमें यथार्थ एवं प्रत्याशा के मध्य अन्तर को कम करने में मदद मिलती है। यह आत्मनिर्भर होने, आसपास के क्षेत्रों की विषमताओं को दूर करने तथा विकास हेतु उन विशेष दशाओं के तैयार करने का प्रयास है। जिसमें सभी लोगों को बेहतर खाद्य सामग्री, दूसरे के प्रति आदर और आत्म सम्मान की भावना, अत्याचार और शोषण से मुक्ति तथा ऐसे सामुदायिक जीवन का विकास जिसमें सम्बद्धता की भावना उत्पन्न हो सके। भारत जैसे विकासशील देश में अधिकतर जनसंख्या ग्रामीण (भारत 2001 में ग्रामीण जनसंख्या 72.2 प्रतिशत) है तथा जहाँ भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का प्रमुख योगदान है, ग्रामीण नियोजन सभी विकास कार्यक्रमों का मुख्य आधार है। इसके अनेक उद्देश्य है जिनमें से दो प्रमुख है–

1. क्षेत्रीय संसाधनों के नियोजित उपयोग द्वारा आर्थिक विकास को बढ़ावा देना।
2. ग्रामीण क्षेत्रो में जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना।

इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नियोजन का प्रमुख विचारं स्थानीय एवं सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन देखा जाता है। उदाहरणार्थ, भारत में आज ग्रामीण नियोजन के अन्तर्गत कृषि विकास, ग्रामीण रोजगार और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी हटाने ऐसे कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। परन्तु भविष्य में आने वाले वर्षों में सामाजिक विकास, सामुदायिक सहयोग, मानव कल्याण

ऐसे मुद्दे प्रधान महत्व के हो सकते है।

6.1 उद्देश्य

यह अधिवास भूगोल की षष्ठम् इकाई है, इसमें आप यह समझ सकेगें कि–

- संसाधनों के इष्टतम उपयोग से आर्थिक समृद्धि नियोजन के द्वारा ही सम्भव होगा इसका आकलन कर सकेंगें।
- ग्रामीण नियोजन ही सभी विकास कार्यक्रमों का मुख्य आधार होता है आप जान जायेगें।
- भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के शुरूआत से ही ग्रामीण नियोजन विकास के लक्ष्यों को प्राप्त कर रहा है।
- ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक भिन्नता के कारण ग्रामीण नियोजन में अन्तर दिखाई पड़ता है यह आप व्याख्या कर सकेगें।

6.2 ग्रामीण नियोजन : ऐतिहासिक दृष्टिकोण

भारत में ग्रामीण नियोजन की प्राचीन समय से होता आ रहा है। वैदिक साहित्य में अधिवासों और उनके समीपवर्ती क्षेत्रों में नियोजन के प्रमाण मिलते हैं। वास्तुशास्त्र, मानसरा, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, में ग्रामीण नियोजन सम्बन्धी अनेक साक्ष्य प्राप्त हुए लेकिन आधुनिक तरीके से योजनाबद्ध ग्रामीण नियोजन की शुरूआत 19वीं सदी में ही हुई। इसका श्रेय रवीन्द्रनाथ टैगोर को जाता है जिन्होंने 1920 ई0 में शान्ति निकेतन के पास स्थित कुछ गाँवों के विकास हेतु योजना बनाई।

महात्मा गाँधी ने इसे अधिक यथार्थवादी रूप दिया। इन्होंने ग्रामीणों के आपसी सहयोग और सद्भाव से ग्रामीण परिवेश की विभिन्न समस्याओं और पिछड़ेपन को दूर करने का सुझाव दिया। गाँधी जी गाँवों के सम्पूर्ण रूपान्तरण के नियोजक थे, परन्तु यह कार्य वे ग्रामवासियों के नगरों में जा करके नहीं बल्कि आन्तरिक तौर पर उनका विकास कर उन्हें वास्तविक रूप प्रदान करना चाहते थे। गाँधी जी के राजनीतिक वारिस पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने प्रधानमंत्री के रूप में नियोजित विकास के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कदम उठाया। इसकी जानकारी उनके द्वारा अलबर्ट मेयर को लिखे गये, 17 जून 1946 के पत्र से होती है। जिसमें उन्होंने बिना पुराने आधारों को क्षति पहुँचाये सामुदायिक जीवन के विकास में भारतीय संसाधनों और भारतीय परम्पराओं से तालमेल रखती हुई उच्च स्तरीय आधुनिक तकनीक के उपयोग का जिक्र किया है। इसी के तहत 1948 ई0 में उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद में पाइलट प्रयोजना का आरम्भ हुआ जो देश की ग्रामीण नियोजन की प्रथम प्रायोजना कही जा सकती है। इस प्रायोजना में मेयर महोदय ने ग्रामीण नियोजन के कतिपय बुनियादी मुद्दों–अच्छा और मजबूत आवास, विकसित परिवहन एवं संचार तंत्र, ग्रामीण उत्पादों की नियमित और शीघ्र खपत, जल आपूर्ति एवं सिचाई व्यवस्था और स्कूल, अस्पताल आदि खोलने पर ध्यान आकृष्ट है।

देश में योजनाबद्ध रूप में ग्रामीण नियोजन कार्यक्रमों का प्रारम्भ 1951–52 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ हुआ। उस समय खाद्य समानों, और आयात की कठिनाईया थी। अतः प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि, सिंचाई एवं ऊर्जा विकास को ध्यान दिया गया। इसके बाद में 2 अक्टूबर 1952 को महात्मा गाँधी के विचारों के कार्यान्वयन हेतु सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की शुरूआत की गई। द्वितीय (1956–57 से 1960–61 तक) और तृतीय (1961–62 से 1965–66 तक) पंचवर्षीय योजनाओं में

भी आधारभूत उद्योगों एवं कृषि के विकास पर सर्वाधिक जोर दिया गया। बाद में यह महसूस करते हुए कि हमारी योजनाओं का अधिक सुझाव नगरीय क्षेत्रों की ओर है। स्थानिक विकास में साम्यता ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के अलग–अलग विकास से नहीं सम्भव है तथा विकास का सर्वाधिक लाभ ग्रामीण क्षेत्रों में केवल उन लोगों तक ही पहुँच रहा है जो भूमि संसाधनों में सम्पन्न है चौथी और पाँचवीं पंचवर्षीय योजनाओं में विकास के समन्वित उपागम पर बल दिया गया। इन कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण संसाधनों विशेषकर मानव श्रम के भरपूर उपयोग द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी (पूर्ण और अंशकालिक) गरीबी आदि पर काबू पाना है। चूँकि (1977–78) में देश की कुल ग्रामीण जनसंख्या का 50.82 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा था। इन कार्यक्रमों में गरीबी के जीवन के स्तर में वृद्धि का मुख्य उद्देश्य सातवी पंचवर्षीय योजना (1985–90) में पूर्व क्रियान्वित कार्यक्रमों के अतिरिक्त सामाजिक न्याय के साथ प्रगति को प्रमुख लक्ष्य बिन्दु बनाया। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97) में शताब्दी के अन्त तक पूर्ण रोजगार लोक सहयोग से जनसंख्या नियंत्रण प्राथमिक शिक्षा का सर्व सामान्यीकरण, शुद्ध पेयजल और स्वास्थ्य सेवाओं की सबके लिए सुलभता, कृषि में आत्मनिर्भरता के साथ–साथ निर्यात हेतु अतिरिक्त उत्पादन विकास की गति को तीव्र करने के लिए बुनियादी जरूरतें भी सम्मिलित है। हाल के वर्षों में पंचायतों के ग्रामीण विकास में योगदान से ग्रामीण नियोजन को एक नया आयाम मिला है। आर्थिक उदारीकरण की वतह से जहाँ एक ओर विकास का लाभ गाँवों तक पहुँच रहा है वहीं ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था आज विश्व की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत कर रही, ऐसे में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब! भूमिहीन और पिछड़े वर्ग का क्या सामाजिक–आर्थिक विकास सम्भव है। इसका सही आभास अगली सदी के प्रारम्भ में दिखाई पड़ेगा।

ग्रामीण नियोजन के उपागम–

पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारम्भ से ही भारत में नियोजनकर्ताओं का ध्यान ग्रामीण नियोजन की ओर रहा है परन्तु बदलती हुई सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों, विकास लक्ष्यों और अध्ययनों के द्वारा नियोजन के उपागमों में भिन्नता और बदलाव देखा जाता रहा है। यहाँ ग्रामीण नियोजन के कुछ उपागमों का संक्षिप्त वितरण दिया जा रहा है।

6.3 सामुदायिक विकास के उपागम

सामुदायिक विकास कार्यक्रम, जिसकी शुरूआत 1952 में की गई थी, इसका मुख्य उद्देश्य किसी क्षेत्र के भौतिक और मानव संसाधनों का वहाँ के निवासियों और राज्य के सहयोग से क्रमबद्ध विकास करना है। यह कार्यक्रम शैक्षिक और संगठनात्मक प्रक्रिया से सम्बद्ध था। क्योंकि इसके अन्तर्गत लोगों की आदतों और कार्य करने के तरीकों में बदलाव लाया जो सामाजिक–आर्थिक विकास की मुख्य बाधायें थी। गाँधी जी के ग्रामीण नियोजन के सिद्धान्त पर आधारित था। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामवासियों के शैली में बदलाव लाना, सामाजिक कल्याण, सामाजिक न्याय एवं साम्प्रदायिक मेल–जोल में वृद्धि करना तथा गाँवों में प्रजातांत्रिक संगठनों और संस्थाओं की स्थापना करना था। इनमें मुख्यतः ग्राम कृषि, सिंचाई, पशुपालन, सहकारिता, और लघु उद्योग, शिक्षा स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, संचार और आवास आदि से संबंधित कार्यक्रमों को समायोजित किया गया था। जिसके अलावा मानव विकास को प्रेरित करना भी था। परन्तु कतिपय व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण इस बहु उद्देशीय उपागम को आपना लक्ष्य प्राप्त करने में कोई खास सफलता न मिल सकी और बाद में यह केवल विकास का कार्यक्रम ही बन कर रह गया।

लक्ष्य समुदाय उपागम–

इस उपागम की शुरूआत चतुर्थ पंचवर्षीय योजना से मानी जाती है। जिसका उद्देश्य पिछड़े ग्रामीण समाज के लोगों की सामाजिक–आर्थिक दशाओं में रोजगार और शिक्षा के जरिए विकास करना है। इसके अन्तर्गत लघु कृषक विकास अभिकरण, सीमान्त कृषक एवं कृषि विकास अभिकरण, सूखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम, मरूक्षेत्र विकास कार्यक्रम, आदिवासी क्षेत्र विकास कार्यक्रम ग्रामीण रोजगार हेतु त्वरित योजना आदि कायक्रमों को प्रारम्भ किया गया। इन कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन और कमजोर वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि करना गरीबी और आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करना था। ये कार्यक्रम पंचवर्षीय योजना में भी जारी रहे तथा इनमें कमजोर वर्ग के लोगों को आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को भी सम्मिलित कर लिया गया। इनमें वस्तुओं के न्यूनतम स्तर के अतिरिक्त पेयजल, स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा आदि सेवाओं को भी सम्मिलित किया गया है।

विकास केन्द्र उपागम–

विकास केन्द्र की संकल्पना, जो सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं के विकेन्द्रीकरण के विचार पर आधारित है, ग्रामीण विकास के संतुलित कार्यक्रम हेतु कार्य पद्धति प्रस्तुत करती है जो कि विकास प्रक्रिया चयनात्मक के आधार पर निर्धारित होती है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी प्रादेशिक नियोजक फ्रैकोइस पेराक्स के विचार से विकास का प्रादुर्भाव एक साथ स्थानों पर नहीं होता है। इसका प्रभाव कुछ अनुकूल बिन्दुओं पर विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार बाहर की ओर होता है। इन बिन्दुओं को जहाँ से विकास क्रियाओं का विसरण बाहरी भागों की ओर होता है। जिसे विकास का पतिक बिन्दु के रूप में जाना जाता है।

बोडविलो – ने पेराक्स के सिद्धान्त में बड़ा बदलाव कर भौगोलिक दृष्टिकोण प्रदान किया इनके अनुसार एक विकास ध्रुव किसी नगरीय क्षेत्र में अवस्थित विकासोन्मुख उद्योगों का समूह होता है जहाँ से इसके प्रभाव में आर्थिक क्रियाओं का प्रसार होता रहता है।

भारत ऐसे विकासशील देश में विकास की समस्याओं में डॉ. आर. पी. मिश्रा (1971 एवं 1983) ने विकास ध्रुव के तीन मुख्य कार्यों का बताया है– (1) सेवा के रूप में। (2) विकास कार्यों के प्रवर्तक एवं उत्प्रेरक के रूप में। (3) सामाजिक अन्योन्यक्रिया बिन्दु के रूप में।

चूँकि विकास ध्रुव सिद्धान्त की सम्पूर्ण गतिशीलता नवाचारों पर केन्द्रित है इसका सम्बन्ध हैगरट्रैण्ड विकास ध्रुवों के अभिज्ञान तथा उनके पृष्ठ क्षेत्र के परिसीमन कार्य में यह सिद्धान्त क्रिस्टालर के केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त से मेल खाता है। विकास ध्रुव उपागम ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण तथा सामाजिक–आर्थिक विकास हेतु विकास ध्रुवों (कस्बा या केन्द्रीय ग्राम) का उपयोग करता है जहाँ समुचित मात्रा में आवश्यक सेवाओं को संग्रहीत कर क्षेत्र में होने वाले विकास कार्यों को बढ़ावा देता है।

भारत में इस उपागम के समर्थकों के रूप में ललित के.सेन, बी.एल.एस. प्रकाश राव, आर. पी. मिश्र, एल.एस. भट्ट आदि का उल्लेख किया जाता है। विकास ध्रुव पर गठित केन्द्रीय पायलट शोध प्रायोजना की सिफारिश के अनुसार प्रत्येक विकास ध्रुव द्वारा लगभग 5000 हेक्टेयर (विकास केन्द्र से 3–5 किमी. की दूरी में स्थित 6 से 8 गाँव क्षेत्र और 6–10 हजार की जनसंख्या को सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए। विकास ध्रुव की संकल्पना क्रोड एवं परिधि के बीच सम्पूरक सम्बन्ध पर आधारित है परन्तु पिछड़े क्षेत्रों में यह सम्बन्ध शोषणात्मक पाया जाता है। जिससे विकास के प्रसरण में व्यवधान होता है।

पिछड़ा क्षेत्र विकास–

इस उपागम के अन्तर्गत सबसे पहले पिछड़े क्षेत्रों की पहचान की जाती है। इसके संसाधनों और मूलभूत सुविधाओं को ध्यान में रखकर विकास कार्यक्रम का बनाया जाता है। इस उपागम में निम्न तीन नीतियों का उपयोग किया जाता है–

अ) अर्न्त प्रादेशिक आवण्टन नीति।

ब) प्रोत्साहन नीति।

द) निवेश अनुदान नीति।

बहुस्तरीय जनपद नियोजन उपागम–

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में जनपद स्तरीय नियोजन को सर्वप्रथम सूक्ष्म स्तरीय नियोजन के रूप में अधिक महत्व प्रदान किया गया क्योंकि सभी भौतिक आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक, संगठनात्मक प्रशासनिक दशाओं के बारे में जनपद स्तर पर पूर्ण जानकारी सम्भव हो पाती है स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इस स्तर पर विकास योजनाओं का निर्माण और क्रियान्वयन करते है। एक बहुस्तरीय नियोजन संबंधी में जिले को नियोजन की अधः स्तरीय स्तर पर विकास के कार्यक्रमों में शुरू किये जाने चाहिए।

ग्राम गुच्छ उपागम–

इनमें तीन बातों– उत्पादन पद्धति, सामाजिक परिवर्तन तथा स्थानिक संगठन का मुख्य रखा जाता है। एल.के. सेन प्रभूति ने सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं भूमि उपयोग एवं परिवहन जाल हेतु तीन पृथक प्रतिमानों का प्रयोग किया है। इस उपागम में पृथक तौर पर एक–एक गाँव के विकास के स्थान पर 5–6 ग्रामों के समूह को नियोजन हेतु विकसित किया जाता है। इस ग्राम गुच्छ को ग्रामीण नियोजन की सबसे छोटी इकाई के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस उपागम के समर्थकों में बी0एम0राव, एच0 रामचन्द्रन, आर0एल0 सिंह तथा एम0 विवेकानन्द आदि विद्वानों का उल्लेख किया जाता है।

न्यूनतम आवश्यकता उपागम–

इस उपागम की शुरूआत पांचवी पंचवर्षीय योजना से मानी जाती है। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसे प्रयास किये जाते हैं। जिससे गाँवों में सबसे निचले स्तर पर रहने वाली 30 प्रतिशत जनसंख्या की प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा में वृद्धि हो सके। इसके कार्यक्रमों में इन प्रमुख बातों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है–

1. 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए उनके घर के समीप प्राथमिक शिक्षा की सुविधा।
2. जलाभाव और असुरक्षित पेयजल के स्रोत वाले गाँवों में शुद्ध पेयजल की व्यवस्था करना।
3. 1500 या अधिक जनसंख्या वाले सभी गाँवों को सभी वस्तुओं में प्रयोज्य सड़कों से जोड़ना।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन श्रमिकों के लिये मकान बनाने हेतु भूमि का आवंटन।
5. गाँवों में विद्युत सुविधा का विस्तार जिससे लगभग 30 से 40 प्रतिशत लोगों को बिजली प्रकाश उपलब्ध हो सके।
6. यूनिसेफ आदि संस्थाओं के सहयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में पोषाहार के कार्यक्रम लागू करना।

ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक असमानता दूर करनें में इस उपागम का प्रमुख योगदान

माना जा सकता है। इससे गरीब और कमजोर लोगों के विकास की सुविधाओं में आशातीत वृद्धि तथा उनके लिए सार्वजनिक सेवाओं का विस्तार करना प्रमुख उद्देश्य है।

समन्वित विकास उपागम–

समन्वित विकास उपागम का प्रमुख लक्ष्य प्रादेशिक/सामाजिक/क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करना तथा सामाजिक न्याय एवं आर्थिक समानता की नयी व्यवस्था के तहत सभी क्षेत्र के लोगों को विकास का अवसर प्रदान करना है। इस उपागम निम्न तीन मान्यताओं पर केन्द्रित है– अ–ग्रामीण विकास हेतु कृषि विकास पूर्वापेक्षित दशा है। ब–कृषि विकास हेतु द्वितीय और तृतीय खण्डों के विकास की सहभागिता आवश्यक है, तथा स–कृषि विकास में सामाजिक शक्तियों का महत्वपूर्ण उत्कृष्ट होता है। यह एक पश्चिमी विचार है जिसमें ग्रामीण उत्पादन और उत्पादकता वृद्धि सामाजिक–आर्थिक मान्यता, सामाजिक–आर्थिक विकास में स्थानिक संतुलन, विकास प्रक्रिया में सामुदायिक सहभागिता के उद्देश्य निहित है। यही कारण है कि इनमें गहन कृषि विकास कार्यक्रम सूखाग्रस्त एवं जलग्रहण हेतु कार्यक्रम तथा लघु कृषकों, सीमान्त कृषकों, भूमिहीन श्रमिकों, शिल्पकारों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है। यह एक बहुआयामी कार्यक्रम है। जिसके अन्तर्गत सिंचाई प्रसार, बहुफसली खेती और कृषि में नवाचार, कुटीर, लघु एवं वृहत् उद्योगों का विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता आदि में सुधार के कार्यक्रम शामिल किये गये है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों को सामाजिक–आर्थिक असमानता हेतु उत्तरदायी कारकों–स्थानिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक को एकीकृत करना है।

मुख्य सैद्धान्तिक तौर पर समन्वित विकास के अन्तर्गत स्थानिक, प्रकार्यात्मक और कालिक तीनों को एक किया जाता है। स्थानिक समन्वय का सम्बन्ध विकास सुविधाओं के स्थानीय कारकों से निर्धारित होता है। जिसमें क्षेत्र के सभी अधिवास सम्मिलित होते है। प्रकार्यात्मक समन्यव के अन्तर्गत क्षेत्र में विद्यमान सभी सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं–कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, परिवहन आदि को सम्मिलित करते है। क्योंकि इन सामाजिक, आर्थिक, क्रियाओं का वितरण सेवा केन्द्रों के पदानुक्रम एवं उनके स्थानिक स्वरूप से प्रभावित होता है। इसके अन्तर्गत क्षेत्र में नये विकास केन्द्रों का विकास किया जाता है। इसी प्रकार कालिक समन्वय के अन्तर्गत समयबद्ध विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को सम्मिलित किया जाता है।

भारत में 1976 से समन्वित विकास को लागू किया गया है। जिसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के भरपूर उपयोग करके स्थानीय संसाधनों (मानवीय, पशु, पादप, मृदा आदि) का अधिकतम उपयोग कर प्रत्येक व्यक्ति की जीविकोपार्जन और अपनी मूल आवश्यकताओं को पूरा करने का अवसर प्रदान करना है। आमतौर पर ग्रामीण नियोजन के सम्बन्ध में यह एक मुख्यतः गरीबी हटाओं कार्यक्रम के रूप में ही अपनाया गया। जिसका प्रमुख उद्देश्य गरीब निर्धन तथा पिछड़े लोगों की आर्थिक–सामाजिक स्थिति में बदलाव लाना है।

विकास खण्ड स्तरीय नियोजन उपागम–

छठवीं पंचवर्षीय योजना में विकास खण्ड को स्थानीय नियोजन का एक प्राथमिक क्षेत्र माना गया है। इस उपागम के अन्तर्गत निम्न दो उपागमों का समन्वय किया गया है–

1. समन्वित ग्रामीण विकास उपागम जो समान वितरण वला बहुउद्देश्यी उपागम है।
2. समन्वित क्षेत्र विकास उपागम जिसके तहत विकास खण्ड स्तरीय नियोजन का प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तरीय नियोजन से सामंजस्य बना रहे है। इन दोनों उपागमों में ग्रामीण निर्धनों तक

पहुँचने का प्रयास किया गया है।

पंचायत राज उपागम–

यह उपागम महात्मा गाँधी की ग्रामीण नियोजन की संकल्पना पर आधारित है जिसमें उन्होंने देश के आर्थिक विकास एवं स्वर्णिम भविष्य हेतु पंचायत स्तरीय लोकतंत्र और नियोजन की वकालत की थी। इसी के तहत 1950 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत की गई थी। सातवीं पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार पंचायत राज उपागम को ग्रामीण विकास को लागू करने तथा बेरोजगारी और गरीबी की समस्या के समाधान का सबसे अच्छा तरिका है। इसी के तहत जवाहर रोजगार योजना का विशाल कार्यक्रम शुरू किया गया है जिसके लिए 2100 करोड़ (1989) की धनराशि केन्द्रीय सरकार ने सीधे ग्राम प्रधानों को उपलब्ध कराई है। पंचायत राज्य के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत है–

1. ग्रामीण 'स्वायत्त' शासन के पुनीत आदर्श की प्राप्ति हेतु प्रजातंत्र के लिए एक विस्तृत आधार प्रस्तुत करना (शक्ति के केन्द्र का नगरीय क्षेत्र से ग्रामीण क्षेत्र की ओर स्थानान्तरण)।
2. भविष्य के प्रशिक्षण हेतु आवश्यक स्थल तैयार करना।
3. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के बारे में ग्रामवासियों में जानकारी और अभिरूचि पैदा करना।
4. ग्रामीण मामलों के प्रबन्धन में समाज के कमजोर वर्ग के लोगों की भागीदारी हेतु प्रयास करना।
5. ग्रामों में सामुदायिकता और आत्मनिर्भरता की भावना का विकास करना।
6. ग्रामीण क्षेत्रों में में नये विचारों की शीघ्र स्वीकृति सुनिश्चित करना।
7. ग्रामीण क्षेत्रों के व्यापक संतुलित विकास हेतु प्रबन्धन करना जिसमें ग्रामवासियों के जीवन स्तर में सुधार हो सके। इस उपागम के उद्देश्य ग्रामीण नियोजन हेतु अत्यन्त उपयोगी है परन्तु बिगड़ती सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों में इनकी सफलतापूर्वक प्राप्ति में बहुतो को सन्देह है। वर्तमान परिस्थितियों में ग्राम पंचायतों के राजनीतिक दाँवपेच के अखाड़े के बनने की भी सम्भावना है। राजनीतिक के आपराधीकरण तथा जातीय दुर्भावना के कारण स्थिति और भी खराब होती जा रही है।

सेवा क्षेत्र उपागम–

यह उपागम अप्रैल 1989 से लागू किया गया। जिसमें राष्ट्रीयकृत बैंकों को ग्रामीण विकास बैंक को ग्रामीण विकास में सक्रिय योगदान के लिए निर्देश दिये गए है। इसके अन्तर्गत बैंक को आपनी शाखा कार्यालय के पास एक निश्चित कमान क्षेत्र के गाँवों का नियोजन प्रक्रिया द्वारा समुचित विकास करना है। इस उपागम विशेषताएं इस प्रकार है–

1. ग्रामीण क्षेत्र में स्थित प्रत्येक बैंक की शाखा को एक निश्चित कमान क्षेत्र सौंप दिया जाता है।
2. इसमें बैंक के शाखा प्रबन्धक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि वह ग्रामीण ग्राहकों के नजदीकी तौर पर जुड़ा होता है। अतः वहाँ कमान क्षेत्र की समस्याओं के निराकरण में अपना योगदान दे सकता है। उसे कमान क्षेत्र के संसाधनों और आवश्यकताओं के नियमित सर्वेक्षण का उत्तरदायित्व दिया जाता है। जिसके आधार पर गाँवों के लिए क्रेडिट योजना तैयार करता है। जो जनपद क्रेडिट योजना के निर्माण में सहायक होती है।
3. ग्रामीण विकास की अन्य योजनाओं से भिन्न सेवा क्षेत्र उपागम में अन्य अभिकरणों से सहयोग

को बढ़ावा मिलता है। इसमें गाँवों की सम्भाव्यता के निरंतर सर्वेक्षण से पर्याप्त वास्तविक ऑकड़े उपलब्ध होते रहते हैं जिसमें गाँवों की अर्थव्यवस्था को सुधारा जा सकता है।

भारत में गाँवों की संख्या 576000 है। जिनमें कुल 42000 व्यवसायिक और प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों की शाखाएं कार्यरत है। इस प्रकार औसतन प्रत्येक ग्रामीण बैंक शाखा के जिम्में 15–25 गाँवों के देखरेख की जिम्मेदारी बनती है। यह उपागम ग्राम अभिग्रहण योजना से इस माने में भिन्न है। कि इसके द्वारा सेवित कमान क्षेत्र में किसी अन्य बैंक की शाखा को कार्य का अवसर नहीं दिया जाता है।

6.4 ग्रामीण नियोजन के कार्यक्रम उपागम

वर्तमान सदी के छठवें दशक से ग्रामीण विकास के कई योजनाओं की शुरूआत की गयी है। जिनका मुख्य उद्देश्य देश के ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामवासियों की आय में वृद्धि और उन्हें रोजगार के अवसर प्रदान करना है। इन कार्यक्रमों को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित कर सकता है– अ– व्यक्तिगत लाभार्थी अभिमुख कार्यक्रम– इसमें लघु और सीमान्त कृषकों की आर्थिक दशा में सुधार हेतु कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है। ब– ग्रामीण रोजगार सम्बन्धी कार्यक्रम इनमें ग्रामीण रोजगार की त्वरित योजना, काम के लिए अनाज कार्यक्रम राष्ट्रीय, ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम ग्राम भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम तथा जवाहर रोजगार योजना आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। स– भिन्न क्षेत्र विकास कार्यक्रम इनमें पारिस्थितिक दृष्टि से असुविधापूर्वक क्षेत्रों– सूखा प्रभावित, मरूस्थल आदि को सम्मिलित किया गया है। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम– इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की न्यूनतम मूलभूत जरूरतों को पूरा करना और अधः संरचना का विकास कर आर्थिक स्तर को सुधारना है।

बीस सूत्री कार्यक्रम–

इसकी घोषणा सर्वप्रथम 1975 में हुई जिसके अन्तर्गत ग्रामीण नियोजन में ऐसी योजनाओं का संचालन किया गया जिससे गाँवो के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में सुधार होता है। इस कार्यक्रम को 1982 एवं 1986 में संशोधित किया गया। 2006 में इसमें नये बदलाव लाये गये। संशोधित बीस सूत्री कार्यक्रम का विवरण निम्नवत् है–

1. **गरीबी हटाओ–** इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र, मनरेगा, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार एवं नगरी क्षेत्र में स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजनाओं को शामिल किया गया है।
2. **जनशक्ति–** इनमें पंचायत एवं नगरीय संस्थाएं शामिल है।
3. **किसान मित्र–** इनमें जल विभाजक विकास, शुष्क, कृषि, विपणन, सिंचाई कृषि ऋण, भूमिहीनों को बंजर आवंटन आदि के कार्यक्रम सम्मिलित है।
4. **श्रमिक कल्याण–** इसमें सामाजिक सुरक्षा, न्यूनतम मजदूरी, बालश्रम, महिला श्रमिक कल्याण को महत्व दिया गया है।
5. **खाद्य सुरक्षा–** इसमें लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली, अन्त्योदय अन्न योजना, अन्न बैंक निर्माण शामिल है।
6. **सबके लिए आवास–** इसमें इंदिरा आवास योजना एवं नगरों में मकानों का निर्माण शामिल है।
7. **शुद्ध पेयजल–** इसमें स्व जलधारा तथा ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों हेतु शुद्ध पेयजल है।

8. **जन–जन का स्वास्थ्य–** इसमें एड्स, टी.बी., मलेरिया, कुष्ठ, अन्धापन नियंत्रण, शिशु टीकाकरण, सफाई, बालिका, भ्रूण हत्या पर नियंत्रण पोषण एवं दो शिशु मानक पर बल दिया गया है।

9. **सबके लिए शिक्षा–** इसके अन्तर्गत सर्व शिक्षा अभियान, दोपहर भोजन की योजनाएँ प्रमुख है।

10. **अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक एवं अन्य पिछड़ा वर्ग कल्याण–** इसमें सफाई कर्मी, वनवासी, आदिम जनजातियों, अल्पसंख्यकों एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के कल्याण हेतु योजनाएँ सम्मिलित है।

11. **महिला कल्याण–** इसमें महिला कल्याण हेतु आर्थिक सहायता के साथ–साथ उन्हें पंचायत आदि आरक्षण की व्यवस्था है।

12. **बाल कल्याण–** इसमें आँगनबाड़ी प्रमुख कार्यक्रम है।

13. **युवा विकास–** इसके अन्तर्गत खेलकूद, राष्ट्रीय सेवा योजना को शामिल किया गया है।

14. **बस्ती सुधार–** इसमें निर्धन परिवारों को आवास हेतु सहायता के साथ–साथ मलिन बस्ती पर बल दिया गया है।

15. **पर्यावरण संरक्षण एवं वन वृद्धि–** इसमें वानिकीय रोपड़ के साथ–साथ प्रदूषण के रोकथाम पर जोर दिया गया है।

16. **सामाजिक सुरक्षा–** इसमें विकलांगों एवं अनाथों के पुनर्वासन एवं वृद्धों के कल्याण का ध्यान दिया गया है।

17. **ग्रामीण सड़क–** इसके अन्तर्गत प्रधानमंत्री सड़क योजना प्रमुख है।

18. **ग्रामीण ऊर्जा–** इसमें जैव डीजल उत्पादन, राजीव गांधी विद्युतीकरण योजना, नवीकरण ऊर्जा, मिट्टी तेल, रसोई गैस एवं विद्युत आपूर्ति शामिल है।

19. **पिछड़ा क्षेत्र विकास–** इसमें पिछड़ा क्षेत्र विकास फण्ड की व्यवस्था की गई है।

20. **ई–शासन–** इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय ई–शासन कार्यक्रम के अधीन केन्द्र एवं राज्य स्तर पर 27 योजनाओं को शामिल किया गया है। इसे राष्ट्रीय सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम संयुक्त राष्ट्र संघ के सहस्राब्दी विकास लक्ष्य एवं सार्क के सामाजिक पत्र के अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम –

समन्वित ग्रामीण विकास मुख्यतः संतुलित ग्रामीण विकास की अवधारणा से प्रेरित है। इसका प्रयोग आज ग्रामीण अंचलों में गरीबी हटाओं कार्यक्रम के रूप में कर रहे है। यह मुख्यतः एक लाभार्थी परक कार्यक्रम हैं जिसमें लक्ष्य समूह को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का प्रयास किया जाता है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की शुरूआत 1976–77 में की गई तथा 2 अक्टूबर 1981 को इसमें ट्रायसेम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, परिगणित जातियों/जनजातियों के लिए विशेष संघटक कार्यक्रम सितम्बर–अक्टूबर 1980, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम आदि को भी सम्मिलित कर लिया गया। इस कार्यक्रम के लक्ष्य समूह के अन्तर्गत लघु कृषकों 5 एकड़ से कम भूजोत कृषि और अकृषि श्रमिकों, ग्रामीणों, शिल्पकारों, दस्तकारों, परिगणित जातियों एवं परिगणित जनजातियों को सम्मिलित किया गया है जिनकी कुल वार्षिक आय 11000 रूपये से कम गरीबी रेखा

पाई जाती है। इस कार्यक्रम से पोषित परिवारों को कम से कम 50 प्रतिशत परिगणित जातियों/जनजातियों 40 प्रतिशत महिलाओं और 3 प्रतिशत विकलांग वर्ग से आते हैं।

यह एक केन्द्रीय योजना है जिसमें केन्द्र और राज्य का योगदान 50–50 प्रतिशत का होता है। केन्द्र शासित प्रदेशों में केन्द्र द्वारा शत प्रतिशत इसका क्रियान्वयन जिला ग्रामीण विकास अभिकरण और विकास खण्ड स्तरीय अभिकरण द्वारा किया जाता है। इसकी प्रबन्ध समिति में स्थानीय सांसद, विधायक, चेयनमैन जिला परिषद् जिला विकास विभागों के अध्यक्ष तथा परिगणित जाति/जनजाति एवं महिलाओं के प्रतिनिधि होते हैं।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम–

इसे सितम्बर 2005 में संसद द्वारा पारित किया गया तथा 2 अक्टूबर, 2009 से इसे महात्मा गाँधी के नाम से जोड़ दिया गया 1 आप्रैल, 2008 से देश के सभी जिलों में लागू) इसके अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे के प्रत्येक इच्छुक ग्रामीण परिवार के एक स्वस्थ व्यक्ति को एक वित्त वर्ष में 100 दिन के लिए रोजगार की गारण्टी दी गयी है। इसमें सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना एवं राष्ट्रीय काम के बदले अनाज कार्यक्रम भी शामिल कर लिया गया है। इसमें प्रत्येक जिले में 5 वर्षों के लिए स्थानीय स्तर के जल संरक्षण सूखा निवारण वृक्षारोपण सहित, भूमि विकास, बाढ़ नियंत्रण जलाक्रान्त क्षेत्रों में जल निकास ग्रामीण संयोजना सड़क निर्माण आदि कार्यक्रमों को शामिल किया गया है।

अधिनियम में कार्यक्रमों के क्रियान्वयन, मास्टर रोल, परिसम्पत्ति रजिस्टर, रोजगार रजिस्टर आदि अभिलेखों के रखरखाव, शिकायत निवारण तथा अनुश्रवण समितियों को व्यवस्था है। वर्ष 2007–08 में इस योजना के तहत 3.39 करोड़ परिवारों को रोजगार मिला।

भारत : गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या

वर्ष	ग्रामीण जनसंख्या लाख में	नगरीय जनसंख्या लाख में	प्रतिशत	प्रतिशत
1973–74	2613	56.4	600	49.0
1977–78	2642	53.1	646	45.2
1987–88	2319	39.1	752	38.2
1993–94	2440	37.3	763	32.4
1999–2000	1932	27.1	670	23.6
2004–05	1703	21.8	682	21.7
2004–05	2209	28.3	808	25.7
2011–12	2167	25.7	531	1.7

1. ट्रायसेम योजना –

इस केन्द्रीय योजना की शुरूआत 15 अगस्त 1979 को ग्रामीण क्षेत्रों में नवयुवकों को स्वतः रोजगार हेतु प्रशिक्षण देने के लिए हुई। इन प्रशिक्षार्थियों की आयु 18–35 वर्ष के बीच होनी चाहिए तथा इसमें कम से कम 30 प्रतिशत परिगणित जातियों/जनजातियों तथा 33.3 प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है। यह प्रशिक्षण औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, पालीटेक्निक, कृषक प्रशिक्षण केन्द्र, प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र तथा मास्टर दस्तकार केन्द्र आदि द्वारा किया जाता है। प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को प्रशिक्षण के दौरान छात्रवृत्ति कें अलावा औजार की किट मुफ्त दी जाती है। 1 अप्रैल 1999 से इसे में सन्निविष्ट कर लिया गया है।

2. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम–

इस कार्यक्रम में केन्द्र और राज्य सरकार की बराबर आधा–आधा की भागीदारी है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिक अवसरों के पैदा करना साथ–साथ ग्रामीण अधः संरचना को मजबूत करना है। इस कार्यक्रम को एक गरीबी हटाओं कार्यक्रम के रूप में शुरू किया गया था। इसलिए यह भारत सरकार के संशोधित बीस सूत्रीय कार्यक्रम में भी शामिल किया गया था। छठवीं और सातवी पंचवर्षीय योजनाओं में इस पर क्रमशः 1620 और 5250 करोड़ रूपये का खर्च निर्धारित था।

इसके अन्तर्गत सम्मिलित कार्यक्रमों में पेयजल की सुविधाएं बनाना, तालाबों की खुदाई और गहरा करना, बाढ़ नियंत्रण बाधों का निर्माण, सड़क निर्माण, स्वच्छता और जल निकास, सामाजिक वानिकी आदि प्रमुख है। अगस्त 1982 के बाद यह जिम्मेदारी जनपद ग्रामीण विकास अभिकरण को सौंप दी गयी।

3. इंदिरा आवास योजना–

इन्दिरा आवास योजना का उद्देश्य अनुसूचित जातियों/जनजातिया, बंधुआ मजदूरों, अतिनिर्धन लोगों और युद्ध में शहीद सैनिकों की विधवाओं/आश्रितों के लिए मकान निर्माण हेतु 35000 रू0 से 38500 मैदान से पहाड़ी भाग रू0 की वित्तीय सहायता दी जाती है। इसकी शुरूआत मई 1985 से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अंतर्गत किया जा रहा है। इसमें 31 मई, 2008 तक 39900 करोड़ की लागत से 181.5 लाख मकानों का निर्माण कराया गया है। इस योजना का लक्ष्य गरीबो को स्वच्छ एवं स्वास्थ्य कर पर्यावरण में आवासों की प्रबन्ध करना है जो पहुँच मार्ग, आन्तरिक मार्गों, जल निकास, जल आपूर्ति, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, ऊर्जा शिक्षा, नागरिक आपूर्ति आदि सुविधाओं से सम्पन्न है।

इस योजना से निर्मित मकान का आवृत्त क्षेत्र 21 वर्ग मीटर होता है। जिसमें सामने बरामदा और रसोई घर सहित एक बड़ा कमरा शामिल है। रसोई घर मे धुँआ रहित चूल्हा की सुविधा के अतिरिक्त मकान का शौचालय और स्थान गृह आदि की सुविधा से सम्पन्न हो।

4. जवाहर रोजगार योजना–

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु 28 अप्रैल, 1989 से केन्द्रीय सरकार ने इस योजना को लागू किया है। इसमें केन्द्रीय सरकार की भागीदारी अंशदान 80 प्रतिशत है। इस योजना के तहत् प्रत्येक राज्य को धनरशि का आवण्टन उनकी गरीबी की सीमा रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या के अनुपात में किया जाता है।

सामान्यतया जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत 3–4 हजार जनसंख्या वाली ग्राम पंचायत को प्रतिवर्ष 80,000 से 1 लाख रू0 की धनराशि आवंटित की जाती है। इस रोजगार में 30 प्रतिशत अंश

महिलाओं का होता है। इसमें राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार कार्यक्रम का विलयन कर दिया गया है।

इस योजना की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें सभी लाभार्थी को रोजगार दिये गये दिनों एवं भुगतान की गई धनराशि की सभी को जानकारी होती है। किसी प्रकार की गड़बड़ी में उसकी आपत्ति पर कार्यवाई में गरीबी रेखा से नीचे की 19 वर्ष से अधिक आयु वाली गर्भवती महिलाओं को 2 संतान तक 300 रू0 की वित्तीय सहायता भी प्रदान किया जाता है।

5. अन्नपूर्णा योजना से वंचित वरिष्ठ नागरिकों (65 वर्ष या अधिक उम्र) को प्रतिमाह 10 किलो अनाज देने की योजनायें शामिल है। वर्ष 2002–03 में इन्हें राज्य योजना में स्थानान्तरित कर दिया गया है।

6. ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम–

यह एक केन्द्रीय योजना है जिसका मुख्य उद्देश्य स्वच्छ शौचालय बनाकर गाँवों को स्वच्छ बनाना है। स्वच्छता में सुधार करना है। इसमें शौचालयों के निर्माण एवं सुधार हेतु 80 प्रतिशत तक अनुदान की व्यवस्था है। जिसमें केन्द्र और राज्य सरकारों की बराबर की भागीदारी है। सत्र 2005–06 तक इसमें 14,481,807 शौचालय बनाए गए हैं।

7. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना–

इसकी शुरूआत 1 आप्रैल 1999 को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और सम्बद्ध कार्यक्रमों के पुर्नगठन के बाद की गई। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लघु उद्यमों के जरिए गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को स्वरोजगार प्रदान करना है। इसमें कुल लागत के 30 प्रतिशत या अधिकतम 75000 रू0 है। (एस.सी./एस.टी हेतु 50 प्रतिशत या अधिकतम 10,000 रू0 स्वयं सहायता समूह हेतु 50 प्रतिशत या अधिकतम 1.25 लाख रू0 अथवा प्रतिव्यक्ति 10,000 रू0) की सरकारी सब्सिड़ी और बैंक कर्ज की व्यवस्था है जिसमें केन्द्र और राज्य का अंशदान 75.25% है। लाभार्थियों के 50 प्रतिशत भाग परिगणित जाति/जनजाति 40 प्रतिशत महिलाओं और 3 प्रतिशत विकलांगों से सम्बन्धित होते हैं। दिसम्बर 2007 तक 27.37 लाख स्वरोजगार समूह बनाया जा चुका हैं और 93.21 लाख स्वरोजगारियों को 19,340.32 करोड़ रू0 धनराशि से सहायता प्रदान की गई है।

8. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना–

यह केन्द्र द्वारा प्रायोजित प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना 25 दिसम्बर, 2000 को शुरू की गई। इसका उद्देश्य 500 से अधिक जनसंख्या वाले गांव को पक्की सड़कों से जोड़ना है। इसमें वर्तमान ग्रामीण सड़कों का विकास भी सम्मिलित है। इस कार्यक्रम का निधि पोषण केन्द्रीय सड़क निधि में डीजल उपकरण की प्राप्तियों से होता है। 2009 जुलाई तक इस योजना के अन्तर्गत 81,717 करोड़ रूपये के कुल व्यय से लगभग 341,73 किमी0 लम्बी सड़कों का निर्माण किया गया है।

9. सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम–

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, जिसे प्रारम्भ में ग्रामीण कार्यक्रम कहा जाता था, इसका आरम्भ 1973 ई0 में हुआ है। इसका मुख्य उद्देश्य सूखाग्रस्त क्षेत्रों में श्रम प्रधान एवं उत्पादनोन्मुख कार्यों जैसे मध्यम एवं लघु सिंचाई मृदा संरक्षण वृक्षारोपण, सड़क, निर्माण, पेयजल, प्रायोजनाओं आदि के माध्यम से सूखे की भीषणता को कम करना है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है–अ) सूखा के प्रभाव के अधिकता को कम करना। ब.) लोगों विशेषकर निम्न आय वर्ग की आमदनी को स्थिर करना। स) पारिस्थितिक संतुलन को पुर्नस्थापित करना है।

इस समय वह कार्यक्रम देश के 16 राज्यों के 195 जनपदों के 972 विकासखण्डों में चलाया जा रहा है। सन् 1995–96 में इसे जल संभर विकास के योजनान्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया है।

10. मरूभूमि विकास कार्यक्रम–

मरूभूमि विकास कार्यक्रम की शुरूआत सन् 1977–78 में (मरूभूमिद्ध मरूस्थल के प्रसार को रोकने तथा मरूस्थलीय क्षेत्रों में उत्पादन, आय और रोजगार के अवसरों में वृद्धि हेतु की गयी। जिसने–

अ. वृक्षारोपण विशेषकर वनस्पति की रक्षक मेखला घासों को लगाकर तथा बालुका स्तूपों का स्थिरीकरण।

ब. भूगर्भ जल का विकास और उपयोग।

स. जलोपज संरचना का निर्माण।

द. नलकूपों एवं पंप सेटों के लिए ग्रामीण विद्युतीकरण।

य. कृषि, उद्यान–कृषि तथा पशु पालन के विकास के कार्यक्रम सम्मिलित है।

मरूभूमि विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत उष्ण और शीतल दोनों मरूस्थलों को सम्मिलित किय गया है। वर्तमान में यह कार्यक्रम देश के 7 राज्यों, 40 जिलों और 235 विकासखण्डों (क्षेत्रफल 457,432 वर्ग किमी0द्ध में जारी है। हाल में इसे जल संभर विकास कार्यक्रम में समाहित कर लिया गया है।

11. बंजर भूमि विकास कार्यक्रम–

इस कार्यक्रम को 1989–90 से बंजर भूमि क्षेत्र में उत्पादकता ह्रास को रोकने के लिए शुरू किया गया है। इसके अन्तर्गत 1995–96 से 2007–08 के बीच 107 लाख हे0 क्षेत्र पर 1877 परियोजनाओं की मंजूरी दी जा चुकी है। जिनके लिए केन्द्र से 2797.56 करोड़ रूपये अवमुक्त किए गए है। इसमें केन्द्र एवं राज्य को साझेदारी 11:1 की है।

वर्तमान में इसे जलसंभर विकास के अन्तर्गत समाहित कर लिया गया है।

6.5 ग्रामीण नियोजन के संघटक

इसके अन्तर्गत ग्रामीण आवासीय क्षेत्रों को, उनको जोड़ने वाली गलियों, मार्गों तथा उनके इर्द–गिर्द स्थित खेतों, खलिहानों, जल मैदानों, गृहों आदि को सम्मिलित किया जाता है। इनके नियोजन का उद्देश्य जहाँ एक तरफ ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक ग्रामीण परिवार हेतु आवास मुहैया करना है।

1. ग्रामीण आर्थिक तंत्र–

ग्रामीण आर्थिक विकास के तंत्र में कृषि का प्रमुख योगदान पारंपरिक जीवन निर्वाहक कृषि के स्थान पर नियोजन में इसे आधुनिक, व्यापारिक और बाजारोन्मुख दिशा देने की आवश्यकता है। कृषि को लाभकारी बनाने के साथ–साथ इसे इस प्रबन्धन की आवश्यकता है ताकि इससे ग्रामीण परिसर में द्वितीयक एवं तृतीयक क्रियाकलानों को विकसित करने की जरूरत है। इसके अंतर्गत औद्योगीकरण को भी समुचित महत्व दिये जाने की आवश्यकता है।

2. ग्रामीण सामाजिक तंत्र–

भारत गाँवों का देश है जहाँ का समाज सरल सीधे–सादे, मितव्ययी है यहाँ के आर्थिक जीवन में

विशेष योगदान है। ग्रामीण समाज के भिन्न समुदायों, जातियों आदि में विभक्त होने के बावजूद जजमानी प्रथाा के अन्तर्गत वह एक परिपूर्ण आर्थिक–सामाजिक तंत्र के रूप में कार्य करता है। ग्रामीण नियोजन का यह उद्देश्य होना चाहिए कि आर्थिक विकास के लाभ सब तक पहुँच सके तथा ग्रामीण समाज में फैली असमानता को जल्द दूर किया जा सके परन्तु इसके साथ ही साथ जातीय विद्वेष एवं जातीय संघर्ष का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बढ़ावा देना हानिकारक तथा कष्टकारी कदम होगा।

3. ग्रामीण प्रशासनिक तंत्र–

भारत में वैदिक, मौर्य वंश एवं गुप्त वंश के समय गाँवों को काफी हद तक प्रशासनिक छूट प्राप्त थी। उन्हें बहुत से प्रशासनिक फैसले लेने की आजादी थी। विदेशी आक्रमणकारियों की शासन व्यवस्था के दौरान इसमें व्यवधान उत्पन्न हो गया जिससे गाँव का आर्थिक–सामाजिक विकास प्रभावित हुआ। महात्मा गाँधी ने पंचायत व्यवस्था के तहत इसे पुर्नस्थापित करने का सपना देखा था। गाँवों के समाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण में परिवर्तन की आवश्यकता है। शुरूआती दौर में इसमें विकास की शुरूआत के लिए बाहर से पूँजी के निवेश की जरूरत है, परन्तु धीरे–धीरे इसमें यह प्रयास करना चाहिए कि स्थानीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग द्वारा हो तथा बाहरी निर्भरता धीरे–धीरे समाप्त हो जाए। यह कार्य ग्रामीण प्रशासनिक तंत्र को मजबूत और कारगर बनाकर बनाया जाए।

6.6 ग्रामीण नियोजन के प्रतिमान

ग्रामीण नियोजन में प्रमुख तीन आयामों का प्रयोग किया जाता है–

1. विकास केन्द्र प्रतिमान–

इसके अन्तर्गत किसी ग्रामीण क्षेत्र के कार्यात्मक तंत्र को प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय कार्यात्मक तंत्र से जुड़ कर इसमें विद्यमान स्थानिक–कार्यात्मक अन्तरालों के कम करने का प्रयास किया जाता है। इनके समर्थकों का विश्वास है कि विकास की प्रक्रिया और नवाचार ऊपर से नीचे को ट्रिपिंग विधि द्वारा प्रसारित होते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक–सामाजिक विकास हेतु विभिन्न विकास केन्द्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस केन्द्रों के क्रमबद्ध एवं नियमित वितरण से संतुलित ग्रामीण विकास को नये आयाम प्राप्त किया जा सकता है। इसमें सभी गाँव विकास की लघुतम ईकाई न माना जाए सम्पूर्ण ध्यान कुछ विकास केन्द्रों के विकास हेतु दिया जाता है।

2. गुच्छित ग्राम प्रतिमान–

इसमें किसी एक ग्राम के बजाय 5 या अधिक गाँवों के समूहो को ग्रामीण प्रबन्धन का आधार बनाया जाता है। चूँकि एक गाँव विकास सक्षम की उपयुक्त इकाई नहीं है तथा भारत ऐसे विकासशील देश के लिए अलग गाँव के आधार पर नियोजन नीतियों का निर्धारण और कार्यान्वयन एक कठिन और खर्चीला कार्य है।

क्षेत्र विस्तार, जनसंख्या और संसाधनों आदि सभी दृष्टियों से यह एक विकास की सम्पूर्ण ईकाई लगती है। जिसको आधार बनाकर सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं, भूमि उपयोग एवं अध संरचनात्मक विकास हेतु योजनाएं बनाई जा सकती है। ऐसे सामूहिक ग्रामीण केन्द्र को विकास केन्द्र की एक लघुतम इकाई के रूप में अधिक उपयुक्त है। क्षेत्र का विस्तार, जनसंख्या और

सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं, भूमि उपयोग एवं अधः संरचनात्मक विकास हेतु योजनायें बनायी जा सकती है।

लक्ष्य 2020 के तहत 'पुरा' द्वारा इस प्रतिमान को बल मिलने की संभावना है। इसके लिए गुच्छित ग्रामों के सम्पूर्ण संसाधनों को सहकारिता के तहत एक साथ करना भी एक कठिन कार्य है। इसी प्रकार विकास योजनाओं के निर्माण तथा उनके कार्यान्वयन हेतु खर्च किये गये धन को भी लेकर गाँवों के मध्य प्रतिद्वन्दिता शुरू हो सकती है। जिससे विकास कार्यक्रमों में बाधा हो सकती है।

3. अधः संरचनात्मक प्रतिमान–

इस प्रतिमान के अनुसार ग्रामीण विकास हेतु यातायात, ऊर्जा, बैंक, बाजार, भण्डारन, प्रशीतन आदि अधः संरचनात्मक सुविधाओं का विकास किया जाना आवश्यक है। इनके आधार पर ही ग्रामीण क्षेत्र में कृषि, उद्योग, व्यापार आदि के समुचित विकास के नये अवसर बनेगें। भारत के अधिकांश गाँव अधः संरचनात्मक सुविधाओं सें विहीन विकास केन्द्रों से अलग–थलग पड़े है।

जहाँ ये विकास के लिए प्रेरणा का कार्य करेगी जिसमें विकास संबंधी गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलेगा वहीं दूसरी तरफ अन्य के अनुसार सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन के कारण इनमें नगरीय शोषणात्मक प्रवृत्तियों का बल मिलेगा जिससे गाँव के संसाधन का तेजी से पलायन होना शुरू हो जायेगा।

6.7 ग्रामीण नियोजन हेतु युक्तियाँ

ग्रामीण नियोजन हेतु विद्वानों द्वारा विभिन्न योजनाओं का प्रस्ताव दिया किया गया है। राजयेका ने एतदर्थ एक भू–प्रायोजना उपागम का सुझाव दिया है जिसके अन्तर्गत–

1. सामाजिक आर्थिक पिछड़े क्षेत्रों का परिसीमन।
2. ग्रामीण क्षेत्रों के वर्तमान संसाधन सम्भाव्यता का उपयोग।
3. सर्वोपयुक्त संस्थितियों पर संसाधन–आधारित उद्योगों की स्थापना।
4. संसाधन उपयोग में समय कारक।
5. समस्याग्रस्त क्षेत्रों के विकास पर विशेष बल।
6. समाज के सामाजिक–आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए सुविधाएं और अनुदान।

सेन और उनके सहयोगियों (1971) ने आन्ध्र प्रदेश में मिरयालगुड़ा तालुका के अध्ययन के आधार पर सूक्ष्म स्तरीय नियोजन पर बल देने का सुझाव दिया है। उन्होंने सन्तुलित प्रादेशिक विकास हेतु विकास केन्द्रों के पदानुक्रम से सम्पन्न स्थानिक कार्यात्मक तंत्र के सुझाव में विकास का प्रमुख स्थान दिया। **सी0आर0 पाठक** (1975) ने राष्ट्रीय नियोजन में ग्रामीण नियोजन के महत्ता को स्वीकार्य किया और कहा कि शीघ्र निम्नगामी के स्थान पर तलोच्चगामी उपागम को आपनाना चाहिए जहाँ यथार्थता के आधार पर स्थानीय संसाधनों पर आधारित सफल योजनाओं का निर्माण हो सकता है। साथ ही दूसरों प्रादेशिक संतुलन को स्थापित करने में भरपूर मदद मिलती है।

एस0एस0 भट्ट और उनके साथियों ने हरियाणा के करनाल क्षेत्र. के अध्ययन के आधार पर सूक्ष्म स्तरीय ग्रामीण नियोजन पर विशेष बल दिया है। जिसका मुख्य लक्ष्य सबसे निम्न वर्ग की आर्थिक दशा के सुधारने के लिए रोजगार के अवसरों को पैदा करना आवश्यक बताया है।

बी0के0आर0वीं राव के अनुसार ग्रामीण (1977) एक समन्वित ग्रामीण विकास योजना के अन्तर्गत– (1) क्षेत्र उसके संसाधन तथा उनके मध्य पूरक सम्बन्ध। (2) उनके निवासी और मध्य पूरक अथवा स्पर्धात्मक सम्बन्ध। (3) आत्म निर्भरता की सम्भाव्यता के साथ–साथ अनिवार्य वाह्य निर्भरता का परिणाम। (4) विकास के लिए आवश्यक वस्तु एवं मानव सम्बन्धी अधःसंरचना। (5) उत्पादन तकनीक या प्रौद्योगिकी जिसमें रोजगार, उत्पादकता और उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ विकास के लाभों को सभी लोगों को समान रूप से मिल सके तथा गरीब पिछड़े लोगों के जीवन स्तर में बदलाव लाया जा सके।

जी0के मिश्र (1987) ने विकासखण्ड स्तरीय नियोजन का समर्थन करते हुए निम्न दो उपागमों के एकीकरण पर बल दिया है– (1) आर्थिक उत्पादन अधिक रोजगार तथा आय के साम्यिक वितरण ऐसे बहुउद्देश्यीय एकीकृत विकास का उपागम तथा (2) प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित लक्ष्यों के अन्तर्गत विकासखण्ड स्तर पर नियोजन के परिचालित विवरणों को सम्पादित करना।

विकास स्तरीय नियोजन के मुख्य संघटक इस प्रकार है–

1. कृषि, पशुपालन, वानिकी, ग्राम एवं लघु उद्योग आदि विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन सम्भाव्यता में विस्तार हेतु योजना बनाना।
2. आय में वृद्धि करना जो गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करते है।
3. मानव श्रम नियोजन तथा दासता के आधार पर उत्पादन से विकास करना।
4. न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यक्रम बनाना/चलाना।
5. संस्थात्मक समर्थन हेतु कार्यक्रम बनाना।

गंगा–यमुना दोआब क्षेत्र में ग्रामीण नियोजन हेतु निम्न सुझाव देते हुए (पुर्नअनुस्थापन की आवश्यकता है) प्रस्तुत किये है–

1. समूची नियोजन प्रक्रिया में ग्रामीण नियोजन को केन्द्र में रखा गया है।
2. सूक्ष्म स्तरीय नियोजन पर बल दिया जाना चाहिए जिसकी शुरूआत पृथक गाँव के बजाय ग्राम गुच्छ से की जानी चाहिए तथा जिससे जनपद राज्य अथवा राष्ट्रीय नियोजन के सम्पूरक के रूप में कार्य करना चाहिए।
3. इसमें उद्योगों कृषि आदि के नियोजन विकास हेतु ग्रामीण संसाधनों का नियोजित उपयोग करना चाहिए जिसमें आत्म निर्भरता की ओर बढ़ा जा सके।
4. इसमें बड़े पैमाने पर सामाजिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा ग्रामीण रोजगारी हेतु पर्याप्त अवसर की आवश्यकता है।
5. इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत आवश्यक सुविधाओं की आपूर्ति की जानी चाहिए तथा इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान आर्थिक सामाजिक विषमता को समाप्त करना चाहिए।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्न निर्देशों पर ध्यान देना आवश्यक है–

अ. ग्रामीण क्षेत्रों की संसाधन उपलब्धता, सामाजिक–आर्थिक संरचना वर्तमान एवं भावी जरूरतों, स्थानिक, क्षेत्रों का विस्तृत सर्वेक्षण।

ब. सामाजिक आर्थिक विकास हेतु ग्राम पंचायत को अधिकारों का हस्तानतरण।

स. समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नये भूमि सुधारों की शुरूआत।

द. योजनाओं के नियोजन एवं संचालन हेतु ग्रामीण युवकों, शिल्पकारों आदि का अवसर देना चाहिए।

य. ग्रामीण और नगरीय उत्पादों के विनिमय को सरल बनाने के लिए उपर्युक्त सुधार करना।

र. लघु एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ाव देना तथा उत्पादों के उत्पादन हेतु वृहद् उद्योगों पर प्रतिबन्ध।

ल. सड़क, रेल, तार, दूर, संचार, सिंचाई एवं ऊर्जा सुविधाओं को विकसित करना।

व. शोध संगठनों को ग्रामीण समस्याओं के अध्ययन तथा उनके सम्पूर्ण निवारण हेतु उपायों के लिए प्रोत्साहन।

श. उद्योगों, कृषि, ग्रामीण, स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा आवास आदि के क्षेत्र में नवीन वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग हेतु इन संगठनों और ग्रामीण नियोजकों के बीच नजदकी संबंध।

ष. सामाजिक बैठकों और अर्न्तजातीय सम्पर्को द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक समूहों के बीच समरस सम्बन्धों का निर्माण किय जाना चाहिए।

6.8 सारांश

इस इकाई में ग्रामीण नियोजन के विकास तथा इष्टतम प्रयोग से ग्रामीण अंचलों के विकासात्मक दिशा में महत्वपूर्ण कदम होता है। नियोजन विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया सतत् प्रयास है। आप समझ गये होगें कि नियोजन के माध्यम से भौतिक और मानव संसाधनों और उनके निवासियों का विधिवत विकास किया जा सकता है। ग्रामीण नियोजन सभी विकास कार्यक्रमों का मुख्य आधार होता है। जिससे मानव के जीवन में तेजी से सुधार आ रहा है।

ग्रामीण नियोजन की अवधारणा प्राचीन समय से ही चली आ रही है लेकिन योजनाबद्ध तरीके की शुरूआत कराने का श्रेय रवीन्द्रनाथ टैगोर को जाता है। महात्मा गाँधी ने इसे यथार्थ रूप प्रदान किया और जवाहर लाल नेहरू ने नियोजित विकास में नई ऊँचाई दी।

इस इकाई में देश में योजनाबद्ध रूप में ग्रामीण नियोजन कार्यक्रमों का प्रारम्भ 1951–52 प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ हुआ हाल के वर्षों में पंचायतों के ग्रामीण विकास में सहभागिता से ग्रामीण नियोजन को एक नया रूप मिला है। जिसका लाभ गाँवो तक पहुँच रहा है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था आज देश की अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग बनती जा रही है।

6.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. वर्तमान सदी में क्रमबद्ध रूप से ग्रामीण नियोजन की शुरूआत किसने की–

   (अ) रवीन्द्रनाथ टैगोर (ब) महात्मा गाँधी

   (स) सरदार पटेल (द) राजेन्द्र प्रसाद

2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत हुई–

   (अ) 1950 (ब) 1955

   (स) 1952 (द) 1960

3. बीस सूत्री कार्यक्रम की शुरूआत हुई–

(अ) 1970 (ब) 1972

(स) 1978 (द) 1975

4. गंगा कल्याण योजना कब शुरू की गई–

(अ) 01 जनवरी 1996 (ब) 01 जनवरी 1955

(स) 01 जनवरी 1997 (द) इनमें से कोई नहीं

आदर्श उत्तर–

(1) स (2) द (3) द (4) स

6.10 सन्दर्भ सूची

1. Mishra RP : 1982 : The changing perceptiom of development problems, pariyojan.
2. Patel A.R. 1984 : Rural Development : Experience is the best teacher, kurukshetra.
3. Lal N. 1989 : Rural settlement planing and development (Allahabad : Change Publication)
4. Pathak. CR : 1975 : District Development planning in India, Indian Journal of Regional science.
5. Tiwari R.C. A84 : settlement system in Rural India : A Case study of the lower ganga- yamuna deep (allahabad geographical socity)
6. तिवारी राम चन्द्र :अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
7- करन, एम0पी0,ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।
8. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

6.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु

प्रश्न–1 ग्रामीण नियोजन से आप क्या समझते है इसके विकास पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–2 ग्रामीण नियोजन के विकास में इनके उपागमों को समझाइये।

प्रश्न–3 ग्रामीण नियोजन के कार्यक्रमों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–4 ग्रामीण नियोजन के प्रतिमानों की व्याख्या कीजिए।

इकाई–7 नगरीय अधिवास एवं नगरीय भूगोल

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 नगर परिभाषा संकल्पना

7.2.1 भारतीय जनगणना में नगर

7.2.2 वैधिक नगर भौगोलिक नगर

7.3 नगरों के प्रकार

7.4 नगर एवं नगरीय भूगोल

7.5 नगरीय भूगोल का अर्थ एवं परिभाषा

7.6 नगरीय भूगोल के विषय क्षेत्र

7.7 नगरीय भूगोल के अध्ययन के उपागम

7.8 नगरीय भूगोल का विकास

7.9 सारांश

7.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न तथा आदर्श उत्तर

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.12 अभ्यास प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

ऐसे आवास जिनके निवासी प्राथमिक व्यवसायों क्रियाओं के द्वारा आपना जीविकोपार्जन करते है ऐसे नगर को अधिवास नगर कह सकते है। नगरों में जनसंख्या और आवासों का सधन समूह पाया जाता है। गाँवों की तुलना में इनका आवास क्षेत्र अधिक फैले और संश्लिष्ट आन्तरिक स्वरूप वाला होता है। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से नगर अधिक विकसित क्षेत्र के रूप में होते है। उद्योग, परिवहन, वाणिज्य, शिक्षा, प्रौद्योगिक विकास आदि के केन्द्र होने के नाते नगर का मनुष्य के सांस्कृतिक विकास में प्रमुख योगदान होता है। मानव सभ्यता का विकास नगरों के विकास से पूर्णतः मिला हुआ है इसलिए यह कहा जाता है कि नगर उतने ही प्राचीन है जितनी मानव सभ्यता प्राचीन सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही नगरो में रहने वाले लोगो ने अपने प्रयासों, शोधो, योग्यताओं और वैज्ञानिक चिन्तनों से मानव जाति की आर्थिक–सामाजिक विकास को प्रभावित किया है। वर्तमान सदी

और औद्यौगिक और प्रौद्योगिक विकास का नगरो से सदा संबंधित रहा है। अपने इसी महत्व और बहुमुखी योगदान के कारण भूगोलविद्ो, सामाजिक वैज्ञानिकों, प्रशासकों, नियोजको आदि का ध्यान नगर और नगरीय समस्याओं की ओर आकर्षित हुआ है जिससे नगरीय भूगोल, नगरीय सामाजिकता, नगरीय नियोजन आदि शैक्षिक शाखाओं का उत्थान हुआ है।

7.1 उद्देश्य

यह आवास भूगोल की सातवीं इकाई है इसको पढ़ने के बाद –

- नगरीय आवास के निर्धारण में कार्यो की भूमिका को स्पष्ट कर सकेगें।
- नगरों के प्रकारों एवं समूहन को जान सकेगें।
- नगरों के विकास में विभिन्न देशों के विद्वानों का योगदान को जान सकेगें।
- भारत में नगरीय भूगोल के विकास को स्पष्ट कर सकेगें।

7.2 नगर : परिभाषा और संकल्पना

हिन्दी भाषा का 'नगर' शब्द अंग्रेजी के 'City' शब्द का पर्याय है जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'सिविटास' (Civkitas) शब्द से हुई है। इस शब्द का प्रयोग रोमन साम्राज्य के अधीन संगठनों के लिए किया जाता है। बाद में इसका प्रयोग ईसाई बिशप (Christian Bishops) के लिये किया जाने लगा। ब्रिटेन में आज भी 'सिटी' शब्द का प्रयोग मुख्य गिरिजाघर (Cathedral) वाले नगर के लिए किया जाता है। फ्रेंच का 'सिटे' (Cite) जर्मन का 'स्टाट' (Stadt) स्लाविक भाषा का 'गोरोड' (Gorod) डेनिस का 'बाय' (By) और स्वीडिश का 'स्टैडेन' (Staden) शब्द 'सिटी' के समानार्थी है। आज नगर से अभिप्राय ऐसे नगरीय केन्द्र से है जो कस्बा से बड़ा होता है एवं जिसके निवासी मुख्यतः वाणिज्य एवं उद्योग में लगे होते है। बैरोच (Paul Bairoch) एवं चाइल्ड (Vere Garden Child) आदि विद्वानों के अनुसार नगरों का उद्भव नवपाषाण काल के उपरान्त कृषि की विशिष्टता (Primacy) के कारण हुआ जबकि जैकोब (Jane Jacob) इसे कृषि से पहले का मानती है। ओफलैर्टी (Brendan O' Flaherty) के अनुसार लोग नगरों में इसलिए बसते है क्योकि यहाँ असुविधाओं की आपेक्षा सुविधाएं अधिक होती है।

यद्यपि 20वीं सदी शताब्दी में नगरों का सर्वाधिक विकास हुआ है तथा नगरीय भूगोल का महत्व एक वैज्ञानिक विषय के रूप में विकसित हुआ है परन्तु इसके बाद भी विश्व स्तर पर नगरों की कोई सर्वमान्य व्याख्या नही हो पाती। विश्व के विभिन्न देशों में जनगणना की दृष्टि से नगर एवं कस्बा की अलग–अलग व्याख्यायें दी जाती है। जानकारी को सरल बनाने हेतु निम्न दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे देश सम्मिलित है जहाँ आवास के आधार पर उसे नगर का दर्जा प्रदान किया गया हैपरन्तु इस जनसंख्या की सीमा में भी अत्यधिक अन्तर पाया जाता है। उदाहरणार्थ (i) डेनमार्क, स्वीडेन तथा फिनलैण्ड में नगर के लिए 250 की न्यूनतम जनसंख्या को आधार माना गया है जबकि आइसलैण्ड में एतदर्थ 300 की जनसंख्या निर्धारित की गयी है। (ii) कनाडा, वेनेजुएला और स्काटलैण्ड में 1000 की जनसंख्या वाले अधिवास को नगर का दर्जा दिया जाता है जबकि फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल, चेकोस्लोवाकिया, अर्जेण्टाइना आदि में 2000 की आबादी नगर हेतु आवश्यक है। (iii) संयुक्त राज्य अमेरिका, स्पेन, थाइलैण्ड आदि देशो में 2500 की

जनसंख्या तथा आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, धाना आदि में 5000 की जनसंख्या का बसाव नगर हेतु आवश्यक है। (iv) इसी प्रकार स्विटजरलैण्ड एवं मलेशिया में 10,000 रूप में 12000 नीदरलैण्ड में 20,000 तथा जापान में 30,000 की न्यूनतम जनसंख्या का किसी नगर में पाया जाना आवश्यक है।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत विश्व के शेष वे सभी देश सम्मिलित है जिन्होने किसी बस्ती को नगर का दर्जा देने के लिए जनसंख्या के साथ–साथ अन्य मानकों का उपयोग किया है। इसमें जनसंख्या घनत्व, जनसंख्या की व्यवसायिक संरचना, जन–सुविधाओं तथा नगरीय सेवाओं की उपलब्धता आदि मुख्य है। चिली में उसी बस्ती को नगर का दर्जा प्रदान किया है जो सार्वजनिक तथा म्युनिसिपल सेवा कार्य सम्पादित करते है इसी प्रकार ब्राजील, बोलिविया, कोस्टारिका एवं इक्वेडोर आदि में प्रशासनिक कार्य नगर का मूल आधार है। चीन में नगर का एक प्रशासनिक विभाग होता है यहाँ नगरो के तीन प्रकार है– म्यूनिसिपालिटी, प्रदेशस्तरीय एवं राष्ट्रस्तरीय – जिनमें कम से कम 1 लाख गैर कृषि जनसंख्या का होना आवश्यक है। भारत में 1961 की जनगणना के अनुसार कोई बस्ती तभी नगर की श्रेणी में समाहित की जाती है जबकि उसकी जनसंख्या के कम से कम 5000 होने के साथ–साथ उनकी कार्यशील जनसंख्या का कम से कम 75 प्रतिशत भाग अकृषित कार्यो में लगा हो तथा उनकी जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर से अधिक पाया जाता है। नगर निर्धारण के मापदण्डो से इस भिन्नता का मुख्य कारण जनसंख्या बसाव में अन्तर तथा सामाजिक आर्थिक विकास की विषमता से सम्बन्ध है। विकसित देशो में गैर प्राथमिक कार्यों की प्रधानता पायी जाती है। वहाँ के ग्रामीण बस्ती बिजली, पेयजल, परिवहन, संचार (टेलीफोन आदि) बैंकिग आदि की वे सभी समस्त सुविधांए उपलब्ध है जो भारत जैसे विकासशील देशो के बहुत से लघु स्तरीय नगरो में भी नही प्राप्त है। इसी के कारण यहाँ पश्चिमी देशों में लोग नगरो को भीडमय, कोलाहल एवं प्रदूषित पर्यावरण से हटकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानान्तरित हो रहे है। वही पूरब के देशों में ग्रामीण वासियों का नगरों की ओर प्रव्रजन एक गम्भीर समस्या बनी हुयी है। विद्वानों ने नगर को भिन्न–भिन्न तरीकों से समझाने का प्रयास किया है। प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता फ्रेडरिक रैटजेल के अनुसार नगर को एक सतत और सघन निवासियों तथा आवासो का समूहन बताया है जिसका विस्तृत क्षेत्र विस्तार हो तथा जहाँ वृहत् व्यापारिक मार्गो का संगम हो। उनके अनुसार नगर के लोगो की अजीविका वाणिज्य और उद्योग पर आधारित होती है वहाँ आवासो की सघनता पाई जाती है तथा उनकी जनसंख्या 2000 से अधिक पायी जाती है। पियरी जार्ज के मतानुसार नगर को एक आवासीय केन्द्र मानते है जो अपने चारो ओर विस्तृत कृषि क्षेत्र से भलीभाँति जुड़ा होता है। वाइडल डि ला ब्लाश नगर को एक सामाजिक समूह वाला अधिक महत्व का क्षेत्र मानते है जो सभ्यता के उस स्तर की अभिव्यक्ति है जहाँ तक अन्य क्षेत्र न तो पहुँच पाये है और न ही कभी पहुँच सकते है। आर0ई0डिकिन्सन का मानना है कि एक नगर की पहचान उसके निवासियों द्वारा किये जाने वाले कार्यो तथा समीप के ग्रामीण क्षेत्र के लोगो के आकर्षण द्वारा होती है। यदि इस समीपवर्ती क्षेत्र के निवासियों का अवागमन न हो तो एक विखंडित केन्द्र के रूप में नगर का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। अतः कह सकते है कि नगर का जन्म एकाएक नही होता है बल्कि विशिष्ट सेवाओं की उपलब्धता के आधार पर ही उसे नगर का दर्जा प्राप्त हो पाता है। लेक्सि ममफोर्ड के विचार में कला, संस्कृति एवं राजनीतिक उद्देश्य न कि जनसंख्या आकार किसी बस्ती को नगर का दर्जा प्राप्त करने में सहायक होते है।

संक्षेप में नगर की विभिनन परिभाषाओं में प्रयुक्त आधारो या मापदण्डो को निम्नवत वर्गीकृत कर सकते है –

1. अधिवास के कार्य, व्यवसाय एवं भूमि–उपयोग (Land use) के आधार पर।
2. नगर में आवासो या जनसंख्या का घनत्व जिसकी सघनता (Compactive) का आकलन आवासों

के मध्य दूरी से तय किया जाता है।

3. आवास का आकार विशेषकर जनसंख्या आकार।

4. अधिवास का प्रशासनिक दर्जा, सीमायें एवं महत्व।

7.2.1 भारतीय जनगणना में नगर–

भारतीय जनगणना विभाग द्वारा सन् 1891 से लेकर 1941 तक नगर की व्याख्या में बहुत कम परिवर्तन किया गया। 1951 की जनगणना के दौरान इसमें कुछ संशोधन किया गया जिसके अनुसार सभी नगरपालिकाओं को चाहे किसी भी जनसंख्या की हो तथा भवनों के अन्य नियमित समूहन को जिसमें कम से कम 5000 व्यक्ति स्थायी रूप से निवास करते हो तथा जिसको प्रान्तीय जनगणना अधिकारी आवासो के आपेक्षिक घनत्व, उसके व्यापार केन्द्र के रूप में मान्यता देने का निर्णय लेता है नगर कहते है। 1961 की जनगणना में नगर की परिभाषा में काफी बदलाव किया गया जिसके फलस्वरूप 1951 की जनगणना के बहुत से नगर वर्गावनत होकर पुनः ग्राम घोषित कर दिये गये। इसमें नगर हेतु 5000 की न्यूनतम जनसंख्या के अतिरिक्त जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना एवं घनत्व को भी अतिरिक्त मानकों के रूप में प्रयुक्त किया गया। 1961 से लेकर आज तक जनगणना विभाग द्वारा नगर के निर्धारण के मापदण्डों में कोई मौलिक बदलाव नही किया है। इसके अनुसार वे आवास या स्थान जो निम्नलिखित शर्तो को पूरा करते है, नगर की श्रेणी में रखे जा सकते है।

(v)सभी स्थान जिनमें नगर पालिका, नगर निगम, छावनी (Cantonment) अधिसूचित नगर क्षेत्र (Notified Area) या इसके समकक्ष की स्थानीय प्रशासन की कोई इकाई (Local Body) आपने साथ संलग्न नगरीय विस्तार या उद्वर्ध (Out growth) के साथ तथा इसके बिना भी (नगर कहे जायेगे)।

(c) अन्य सभी स्थानों जो निम्नलिखित मानकों को पूरा करते है।

(i) 5000 की न्यूनतम जनसंख्या।

(ii) पुरूषो की कार्यशील जनसंख्या का कम से कम 75 प्रतिशत भाग गैर कृषि कार्यो में लगा हो।

(iii) जनसंख्या का घनत्व कम से कम 1000 व्यक्ति प्रति वर्ग मील या 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो।

7.2.2 वैधिक एवं भौगोलिक–

नगर की व्याख्या का एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू भी है। विश्व में नगरो के दो रूप देखने को मिलते है। प्रथम वैधिक तथा द्वितीय भौगोलिक नगर अथवा भारत के नगर पालिका अथवा भारत के नगर पालिका या नगर निगम या छावनी क्षेत्र इसी श्रेणी में आते है इसे वैधानिक नगर औपचारिक नगर आदि नामो से जाना जाता है। दूसरी तरफ भौगोलिक नगर का विस्तार चारों ओर उस सीमा तक पाया जाता है जहाँ यह कृषि भूमि वन भूमि एवं अन्य अनगरीय क्षेत्र या जलाशयों द्वारा रेखांकित किया जाता है। इस सीमाओं का निर्धारण प्रशासकीय विशेषताओं के बजाय भौगोलिक मानकों के आधार पर करते है। बहुधा भौगोलिक नगर का क्षेत्र विस्तार नगर की आपेक्षा काफी अधिक होता है परन्तु कभी–कभी यह कम या बराबर भी होता है। इसे क्रमशः न्यून सीमांकित सत्य सीमांकित या अति सीमांकित आदि नामों से जाना जाता है। इन विवरण से स्पष्ट है कि नगर की कोई सर्वमान्य और स्पष्ट परिभाषा नही है। यह विश्व के विभिन्न देशों की भौतिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में अन्तर के कारण है यही नही एक ही देश में समय के साथ नगर की परिभाषाओं में भिन्नता देखने को मिलता है जिससे नगरीकरण की अवस्थाओं तथा उसके सामाजिक आर्थिक प्रभाव

का आभाव मिलता है।

7.3 नगरों के आकार

आकार विस्तार समूहन आदि के आधार पर नगरो के अनेक प्रकार से बताया जा सकता है। जैसे आकार की दृष्टि से नगरो के तीन प्रमुख रूप कस्बा नगर और महानगर इनके विकसित रूप से नगरीय जनसमूहन सन्नागर महानगर का विकास होता है।

इसी प्रकार समूहन के आधार पर नगरों को विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे युग्म नगर युगल नगर तथा नगर समूह आदि विशुद्ध नगर और ग्राम के बीच ग्राम नगर केन्द्र स्थित होते है जिन्हे ग्राम्य नगर नगरीय ग्राम अर्द्धनगरीय कस्बा या बाजार कस्बा आदि नामो से व्यक्त किया जाता है।

1. कस्बा–

कस्बा नगर की प्रारम्भिक इकाई है यह गाँव के विकास की उस अवस्था का परिचायक है जब उसमें नगरीय प्रवृत्तियॉ दिखाई पड़ने लगती है इन्ही प्रवृत्तियों से उद्‌भुत सेवाओं द्वारा समीप के ग्रामीण क्षेत्र की निर्भरता इस पर पड़ने लगती है और कस्बे का एक निश्चित प्रभाव क्षेत्र पर उभर कर विकसित अवस्था प्राप्त करने लगता है। धीरे–धीरे कस्बा व्यापार, शिक्षा प्रशासन, परिवहन, धर्म, कला, संस्कृति आदि केन्द्र बन जाता है। मेयर और कौन से कस्बा निर्माण की प्रक्रिया के बारे में लिखा है कि जब किसी स्थायी एवं सघन अधिवास में इन गतिविधियों का सम्मिश्रण समुदायिक संगठन के विकास हेतु होता है तो वो स्थान कस्बे का लक्षण प्राप्त कर लेता है। बर्गल महोदय के अनुसार कस्बा को एक नगरीय बस्ती के रूप में व्यक्त किया है जो काफी दूर तक के ग्रामीण क्षेत्र पर अपना प्रभाव रखता है। कस्बे में नगरीय कार्यो के साथ–साथ ग्रामीण की भी झलक मिलती है जिसके कारण ये पूर्ण नगरीय क्षेत्र वाले नगर से अलग दिखाई पड़ने लगते। अपनी अधिक क्रियाशीलता के आधार पर कस्बा समीपस्थ ग्रामीण क्षेत्र पर आर्थिक सांस्कृतिक और राजनैतिक प्रभाव रखता है। यहाँ ग्रामवासी अपने कृषि उत्पादों को बेचते है तथा बदले में अपने आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदते है।

2. नगर–

नगर कस्बा से बड़ा व्यापक क्षेत्र वाला केन्द्र होता है। इसकी सेवाये उच्च स्तरीय होती है तथा इसकी अकारिकी में अधिक विविधता पूर्ण और संश्लिष्ट होती है। इसलिए डिकिन्सन महोदय ने इसे कस्बो का राजा कहा है जो अपने समीपवर्ती क्षेत्रों का नेतृत्व करता है। संयुक्त राष्ट्र के सामाजिक कार्यो के ब्यूरो के जनसंख्या विभाग ने नगर के लिए 100,000 की न्यूनतम जनसंख्या की सीमा निर्धारित की है। मार्क जेफरसन ने नगर के लिए 10,000 व्यक्ति प्रतिवर्ग मील के घनत्व की सीमा निर्धारित की है। जिस्ट और हल्बर्ट के अनुसार बड़े कस्बे तक नगर का दर्जा नही प्राप्त कर पाते है जब तक की उनकी जनसंख्या 10 या 15 हजार नहीं पहुच जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में वैधानिक नगर के लिये न्यूनतम जनसंख्या 20,000 से 25,000 निधारित की गई है। संयुक्त राज्य के जनगणना ब्यूरो के एक विशेष प्रकार के नगर केन्द्रीय नगर) हेतु भी 25000 की न्यूनतम जनसंख्या का कम से कम एक तिहाई होता है। भारतीय जनगणना विभाग एक लाख या अधिक जनसंख्या वाले शहरों को नगर का दर्जा प्रदान करता है।

महानगर –

'मेट्रोपोलिस' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा से मानी जाती है जिसका अर्थ है 'मातृ नगर'

(Mother city)। मर्फी महोदय ने मेट्रोपोलिस को प्रादेशिक राजधानी रूप में नगर को बताया है। इसी आधार डिकिन्सन ने इसे पड़ोस के सहायक या छोटे नगरों का नेता मानते है। आकार और कार्य में यह प्राथमिक नगर (Primate or Primary city) की तरह ही एक विस्तृत क्षेत्र को प्रतिनिधित्व करते है परन्तु प्राथमिक नगरों की आपेक्षा इसकी संख्या एक से अधिक भी हो सकती है। लेविस मम्फोर्ड के अनुसार नगर अपने विकास की तृतीय अवस्था में मेट्रोपोलिस कहलाता है। मेट्रोपोलिस के लिए जनसंख्या की सीमा अलग–अलग रूप में पायी जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका का SMS। या Metropolian area की न्यूनतम जनसंख्या 50,000 पायी जाती है परन्तु डिकिन्स के अनुसार महानगर एक उत्कृष्ट नगर (Supar city) होता है। हान्स ब्लूमेनफेल्ड के अनुसार महानगर 5 लाख की न्यूनतम जनसंख्या का एक नगरीय क्षेत्र है जहाँ बाहरी भागो से केन्द्र तक पहुचने में 40 मिनट से अधिक का समय नही लगता है। भारत में 10 लाख या अधिक जनसंख्या वाले नगरो को 'महानगर की सूची' में रखा गया है। एक महानगर का विकास तब होता है जब वहाँ प्रादेशिक स्तर के कार्यो की अधिकता होने लगती है यहाँ व्यापार और वाणिज्य सम्बन्धी कार्य अधिक विकसित हो जाते है जिससे यहाँ थोक व्यापार, उद्योग परिवहन और संचार के मुख्यालय स्थापित हो जाते है। इस प्रकार महानगर वित्तीय, वाणिज्यिक, प्रशासकीय एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र हो जाता है। इन महानगरों का मध्य भाग में केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र स्पष्ट रूप से विकसित होने लगता है जिसे कोर उच्च शहर निम्न शहर आदि नामों से जाना जाता है। सघन बस्ती का यह क्षेत्र दिन में भीड–भाड कोलाहल पूर्ण होता है और व्यापारिक गतिविधियों से जुड़ा होता है परन्तु रात्रि मे शान्ति रहित हो जाता है। महानगर का प्रमुख व्यापारिक कार्य वस्तुओं को इकट्ठा करना और वितरण करना है यह अपने प्रभाव क्षेत्र से कच्चा माल उत्पादो को इकट्ठा करता है उन्हे कारखानो में संशोधित करता है और पुनः वितरित करता है।

महानगरीय क्षेत्र एवं नगरीय समूहन –

वह सम्पूर्ण क्षेत्र जिसमें महानगर विस्तृत होता है महानगरीय क्षेत्र कहलाता है। एक या अधिक बड़े नगरो उनसे मिले हुए नगरों एवं उपान्तो को मिलाकर विस्तृत नगरीय फैलाव को महानगरीय क्षेत्र कहते है। इसे नगरीय समूह के नाम से भी जाना जा सकता है। अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले की एक व्याख्या के अनुसार महानगरीय क्षेत्र कम से कम एक लाख व्यक्तियों का समूह है जिसमें 50,000 की न्यूनतम जनसंख्या का कम से कम एक नगर में स्थित हो तथा वे समीपवर्ती प्रशासकीय विभाग शामिल हो जिसकी सभी विशेषताएं समान हो तथा जिनमें कम से कम 65 प्रतिशत लोग गैर कृषि कार्यो में जरूर लगे हो। यह भौगोलिक महानगरी के लगभग समीप माने जाते है। संयुक्त राष्ट्र संघ की जनांकिकीय वार्षिक पुस्तिका के अनुसार नगरीय समूहन क्षेत्र कुल जनसंख्या एक लाख या अधिक पायी जाती है तथा इसके अन्तर्गत उच्च नगर, उपनगरीय उपान्त अथवा उसके समीव का जनसंकुल भाग सम्मिलित होता है। भारत में जनगणना विभाग नगरीय समूहन के अन्तर्गत सटे हुए छोटे नगरो को भी सम्मिलित करते है। महानगरीय क्षेत्र एक प्रमुख आर्थिक इकाई होता है जिसमें मुख्य नगर सा नगरों तथा उसके आस–पास के नगरीय क्षेत्रों के बीच प्रतिदिन आवागमन होता रहता है। यह एक प्रकार से व्यापारिक क्षेत्र ही नही होता बल्कि एक विभिन्न इकाईयो का संयुक्त इकाई वाला क्षेत्र होता है।

सन्नगर –

एकल या बहुल नगरों और उनके आस–पास स्थित नगरीय क्षेत्रो को मिलाकर बने हुए नगरीय प्रदेश की इकाई को ही सन्नगर कहते है। दूसरे शब्दो में सन्नगर एक ऐसा नगरीय प्रदेश है जिसमें भिन्न–भिन्न नगर और नगरीय क्षेत्र अपना अलग अस्तित्व रखते हुए भी एक वृहद समूह का निर्माण

करते है। एक सन्नगर के बीच में कई छोटे अनगरीय या कमनगरीय क्षेत्र पाये जाते है। सन्नगर में सम्मिलित नगरो मे से एक नगर केन्द्रीय अथवा मुख्य नगर का कार्य करता है तथा भिन्न–भिन्न नगर कार्यो की दृष्टि से परस्पर संबंध रखते है एवं कई प्रशासकीय इकाईयों में विस्तृत होते है। व्यापक अर्थ में नगरीय समूहन सन्नगर को अपने अन्तर्गत समाहित करता है परन्तु सूक्ष्म विश्लेषण में जहाँ नगरीय समूहन की उत्पत्ति अधिकतर एक नगर के विस्तार से होती है यही सन्नगर कही कई नगरो के मिलने से बनता है।

सन्नगर के विकास की संकल्पना का श्रेय पैट्रिक गिडीस को जाता है जिन्होने ऐसे नगरीय प्रदेश के लिए संग्रथन शब्द का प्रयोग किया। कभी–कभी इसके लिए नगर समुच्चय, नगरपुंज या नगरीय संकुल ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। गिडीस महोदय ने ब्रिटेन में सात सन्नगरो का उल्लेख किया है जिसे नूतन सप्त वर्ग कहा जाता है। इसमें वृहन्तर लन्दन, वेस्ट राइडिंग, साउथ राइडिंग, मिडलैंडटन, साउथ वालेस्टन, टाईनवींर–टीस एवं क्लाइड फोर्थ शामिल है उन्होने फ्रांस में वृहत्तर पेरिस जर्मनी में बर्लिन और रूर तथा संयुक्त राज्य में पिट्स बर्ग न्यूयार्क और सिंकागों का उल्लेख सन्नगरो के रूप में किया है।

बृहन्नगर –

'मेगालोपोलिस' एक ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'बहुत बड़ा नगर'। यह एक वृहद नगरीय क्षेत्र होता है जिसका जन्म कई नगरीय क्षेत्रो के मिलने से होता है कुछ विद्वान मेगालोपोलिस को सन्नगर का एक विशाल रूप मानते है। सन्नगर की ही भॉति इसका भी जन्म कई नगरो के बढ़कर मिल जाने से होता है लेकिन सन्नगर की आपेक्षा में यह आकार में काफी बड़ा होता है। सन्नगर में प्रायः एक बड़ा और प्रधान नगर होता है जबकि वृहतनगर में कई छोटे बड़े नगर और उनके नगरीय क्षेत्र हेाते है। सन्नगर के विभिन्न नगर जब आपस में मिलते है तो उससे नगरीय समूहन (Urban Agglomeration) का जन्म होता है परन्तु यदि सन्नगर के सभी क्षेत्रो को एक अनुपात में बढ़ा दिया जाय तो यह विशाल नगरीय क्षेत्र बृहन्नगर का रूप धारण कर लेता है।

मेगालापोलिस शब्द का प्रयोग 1957 में जीन गाटमैन ने संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरीय पूर्वी समुद्र तटीय प्रदेश के विशाल नगरीय क्षेत्र के लिए किया जिसका विस्तार उत्तर में बोस्टन से दक्षिण में वाशिंगटन तक 100 किलोमीटर की लम्बाई तक पाया जाता है। पैट्रिक गिडीस ने 1915 में ही सन्नगरो का अध्ययन करते समय इस विशाल प्रदेश के निर्माण की तरफ संकेत दिया था। इस मेगालोपोलिस की उत्पत्ति समुद्रतटीय व्यापार तथा समुद्र तट पर स्थापित व्यापारी नगरो के कारण हुआ है। इसके विकास के पीछे दो मुख्य तत्व है – 1. इसका बहुकेन्द्रीय विकास एवं 2. उत्तर पूर्वी तटीय नगरो के कार्य जो अमेरिकी आर्थिक ढ़ॉचे का मूल आधार है। यह बृहन्नगर कई समुद्री पत्तनो व्यापारिक केन्द्रो और औद्योगिक क्षेत्रो का एक बड़ा समूह है जिसमें देश के समुद्री व्यापार, निर्माण उद्योगो प्रशासन और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। अकेले न्यूयार्क नगर में संयुक्त राज्य की राष्ट्रीय सम्पत्ति का 20 प्रतिशत भाग सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त यह बृहन्नगर देश को सांस्कृतिक नेतृत्व भी प्रदान करता है।

7.4 नगर एवं नगरीय भूगोल

नगर एवं नगरीय आवास धरातल पर स्थित एक सघन आवासीय इकाई है जिसके निवासी कृषि व्यवसाय से अपना भरण–पोषण करते है। आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र होने के कारण इसमें किसी सांस्कृतिक समूह के सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रौद्योगिक विकास के स्तर का अनुमान लगा सकते है। नगर के द्वारा ही स्थानिक कार्यात्मक अन्योन्य क्रिया की शुरूआत होता है जो आधुनिक

विनिमयात्मक अर्थ व्यवस्था का मूल आधार है। प्रादेशिक नियोजन में नगर की सेवा केन्द्र की भूमिका अहम है जिससे नवीन विचारों, नवाचारो एवं शोध प्रबन्धन जानकारियो के विसरण और सम्प्रेषण में मदद मिलती है। अतीत काल से लेकर आज तक नगरीय सभ्यता को विकसित अत्याधुनिक और उन्नत कोटि का माना जाता रहा है। नगर आज के सभ्य समाज के वैभव एवं समृद्धि के आधार है। इस आधार पर कहा जाता है कि आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक दृष्टियों से नगर जितने क्षेत्रों पर स्थित है उसके अनुपात में इनका महत्व बहुत अधिक है। किंग्सले डेविस ने नगरों के अध्ययनों के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि एक तो नगर, भाषा, धर्म, परिवार आदि बहुत से सामाजिक पक्षो की तुलना में काफी नये है दूसरे मूलभूत आर्थिक एवं प्रौद्योगिक विकासों के प्रतिफल होने के साथ समूचे सामाजिक जीवन में क्रान्तिाकरी परिवर्तन के भी स्रोत भी है। तीसरे सम्पूर्ण समाज के भीतर शक्ति और प्रभाव के केन्द्र है और चौथे नगरीकरण इस समय भी जारी है तथा इससे जनित अनेक समस्याएं अभी भी हल नही की जा सकी है। इस विशेषताओं के कारण नगरों तथा उससे जुड़ी विभिन्न समस्याओं ने भूगोलविदो, अर्थशास्त्रीयों, सामाजिक वैज्ञानिको, पर्यावरणवादियों नगर नियोजकों और प्रशासको का ध्यान आकर्षित किया है। एक स्थानिक विज्ञान होने के कारण भूगोलविदो ने नगरो को अध्ययन पर एक अलग विधा माना है जिससे न केवल विश्व के विभिन्न भागो में नगरीकरण की प्रवृत्तियों उनके सामाजिक आर्थिक प्रभावों को जानने का अवसर मिलेगा बल्कि विभिन्न नगरीय समस्याओं के समाधान तथा नगरीय नियोजन हेतु रूप रेखा तैयार हो सकती है। भारत जैसे विकसशील देशो को नगरीकरण वर्तमान सदी की देन है जिसके उद्भव में औद्योगिकरण तथा उससे जुड़े परिवहन और संचार के साधनों के विकास का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

7.5 नगरीय भूगोल का अर्थ और परिभाषा

नगरीय भूगोल शब्द अंग्रेजी के अरबन ज्योग्रफी (Urban Geography) का हिन्दी रूपान्तरण है। शाब्दिक अर्थ में यह नगरों, नगरीय आवासों अथवा नगरीय क्षेत्रो का भूगोल (Geography of towns Urban Settlemets or Urban Areas) है। दूसरे शब्दों में यह नगरो अथवा नगरीय क्षेत्रों का भौागोलिक तरीके से अध्ययन करना ही नगरीय भूगोल है। भूगोल एक स्थानिक विज्ञान (Spatial Science) है। जिसका उद्देश्य पदार्थ एवं उसके विविध स्वरूपों की धरातल पर अवस्थित और वितरण का अध्ययन करना है। भौगोलिक अध्ययन विधि मुख्यतः दो प्रकार की है 1. क्रमबद्ध (Systematic) एवं 2. प्रादेशिक इस प्रकार नगरों का अध्ययन क्रमबद्ध रूप में (अवस्थिति उद्भव एवं विकास प्रकार, विशेषताओं वर्गीकरण आदि का अध्ययन) तथा प्रादेशिक रूप में नगर को एक सूक्ष्म प्रादेशिक इकाई मानकर उसकी विभिन्न विशिष्टताओं जैसे नगर का उच्चावच, जलवायु अपवाह जनसंख्या प्रतिरूप परिवहन एवं संचार तंत्र बसाव प्रतिरूप आपवाह जनसंख्या परिवहन एवं संचार तंत्र बसाव प्रतिरूरूप सामाजिक संरचना, पडोस से सम्बध आदि किया जा सकता है। 'डडले स्टाम्प के अनुसार नगरीय भूगोल का वास्तव में नगरों एवं उनके विकास के सभी भौगोलिक पहलुओं का गहन अध्ययन है। ग्रिफिथ टेलर इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए नगरीय भूगोल के अन्तर्गत नगर की संस्थिति, विकास, प्रतिरूप एवं वर्गीकरण के अध्ययन को समाहित किया है डिकिन्सन के अनुसार नगरीय भूगोल अंशतः केवल अधिवास अध्ययन का एक विशिष्ट स्वरूप है। जिसे तीव्र आन्तरिक वैषम्य वाले अति संश्लिष्ट क्षेत्रों हेतु अनुप्रयुक्त किया जाता है। हेरोल्ड एम0 मेयर नगरीय भूगोल में प्रादेशिक अध्ययन को महत्वपूर्ण माना है और कहा कि नगर प्रतिरूपों एवं सम्बन्धों की व्याख्या से सम्बन्धित माना है। जो एक तरफ नगरीय क्षेत्रों के भीतर तथा दूसरी तरफ नगरीय क्षेत्रों और उन अनगरीय क्षेत्रों के बीच पाये जाते हैं जिन्हें नगरों की सेवाएं मिलती है यहाँ अनगरीय क्षेत्र से अभिप्राय नगर के चतुर्दिक

स्थित उस प्रभाव प्रदेश (Umland) से भिन्न है। जिसे नगर एक सेवा केन्द्र के रूप में विभिन्न सेवायें प्रदान करता हैं। यह तथ्य प्रो0जी0एस0 गोसल के अनुसार नगरीय भूगोल नगरीय स्थानों का भौगोलिक अध्ययन है जो उद्‌भव होते हैं विकसित होते हैं तथा आपने चतुर्दिक क्षेत्रों के लिए सेवा केन्द्रों के रूप में कार्य करते हैं। 1965 में हेराल्ड एम0मेयर महोदय ने पीटर शोलर का सन्दर्भ देते हुए नगरीय भूगोल की एक विस्तृत परिभाषा देने का प्रयास किया है। उनके अनुसार नगरीय भौगोलिक अनुसंधानों का सम्बन्ध नगरीय एवं अनगरीय क्षेत्रों के बीच सम्बन्धों तथा नगरीय भू–दृश्य को निर्मित करने वाली विकासात्मक शक्तियों सहित मुख्यतः चार नगर के भीतर और नगरों के बीच में क्षेत्रीय भिन्नताओं से हैं। इस नयी परिभाषा में मेयर महोदय ने नगरीय भू–दृश्य को प्रभावित करने वाली विकास और परिवर्तन की शक्तियों को महत्वपूर्ण बताते हुए अध्ययन की एक नयी दिशा की ओर संकेत किया है। भौगोलिक दृष्टिकोण पर बल देते हुए नगरीय भूगोल में स्थानिक और प्रादेशिक अध्ययनों को समाहित करने का सुझाव दिया गया हैं। उपर्युक्त विवरण के आधार पर नगरीय भूगोल के अर्थ और परिभाषा से निम्न प्रकार से रखा जा सकता है–

1. नगरीय भूगोल एक सामाजिक विज्ञान हैं जो नगरों के अध्ययन में प्रादेशिक और क्रमबद्ध दोनों ही उपागमों का सहारा लेता है।
2. नगरीय भूगोल एक नगर के आंतरिक क्षेत्रीय भिन्नताओं को ढूँढने तथा उनकी व्याख्या करने का प्रयास करता है।
3. नगरीय भूगोल एक नगर एवं उसके प्रभाव क्षेत्र के बीच सम्बन्धों का विवेचन करता हैं जिसमें सेवा केन्द्र के रूप में नगर क्षेत्रीय आर्थिक और सामाकि विकास में योगदान महत्वपूर्ण होता है।
4. नगरीय भूगोल किसी क्षेत्र प्रदेश के नगरों का तुलनात्मक अध्ययन कर उनके बीच स्थापित साम्यताओं और विषमताओं को ढूढ़ने का प्रयत्न करता है।
5. एक वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति अपनाते हुए नगरीय भूगोल अपने अध्ययन से विभिन्न संकल्पनाओं के सिद्धान्तों के विकास एवं परीक्षण का प्रयास करता है।
6. नगरीय भूगोल नगर से सम्बद्ध समस्याओं के कारणों और निवारण हेतु प्रयत्न करता है।
7. नगरीय भूगोल नगर के वर्तमान अकारिकीय स्वरूप के विश्लेषण के साथ–साथ उनके भावी प्रभावों को लिपिबद्ध का प्रयास करता है ताकि इसके अनुरूप नगरीय नियोजन की नितियाँ तय की जा सके।

7.6नगरीय भूगोल का विषय क्षेत्र

नगरीय भूगोल के विश्लेषण और व्याख्या से उसके विषय क्षेत्र के बारे में अनुमान लगा सकते हैं। इससे उन परम्पराओं और विधानों के बारे में भी जाना जा जाता है। जो सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ विषय की अध्ययन विधि को प्रभावित करती रही है विभिन्न भूगोलवेत्ताओं ने नगरीय भूगोल के विषय क्षेत्र को अलग–अलग तरीकों से प्रस्तुत किया हैं डी0एल फोले के अनुसार नगरीय भूगोल के अध्ययन के स्वरूप इस प्रकार है।

1. सामाजिक समूह का मूल्यांकन करना इससे नगर की सांस्कृतिक रूप रेखा का आभास मिलता है।

2) नगर के विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच लोगों के क्रियाकलाप एवं कार्यों के महत्व का

अध्ययन करना इसे नगर का कार्यात्मक पक्ष कहा जाता है। डल्ल्यू के0डी0 डेवीज के विचार फोले के विचार से बहुत मिलते जुलते हैं। इन्होंने नगरीय भूगोल के अध्ययन में मुख्य तीन पहलुओं को समाहित करने का सुझाव दिया हैं–

1. तत्व– वातावरण जनसंख्या कार्यात्मक क्रिया कलाप एवं नगरीय अकारिकी।
2. परिदृश्य स्थायी संरचना– विभिन्न भागों का सम्बन्धीकरण गयात्मक प्रक्रिया।
3. नगरीयता की व्यवस्था नगरीकरण की प्रक्रिया, विभिन्न नगरों के सन्दर्भ में नगर एक इकाई के रूप में नगर का क्षेत्रीय प्रभाव, नगर एक क्षेत्र के रूप में।

रे0 एम0 नार्टम ने नगरीय भूगोल के अध्ययन में मुख्य चार प्रकार के स्थल–मानव सम्बन्धों का उल्लेख किया है।

v) वह सम्बन्ध जो एक स्थल नगर और उसकी जनसंख्या के बीच पाया जाता है इसमें नगर की जनसंख्या के वितरण प्रतिरूप और भिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है।

(vki) द्वितीय सम्बन्ध दो विभिन्न नगरों के बीच पाया जाता है इसमें नगरीय आवासों के ज्यामितीय प्रतिरूपों और स्थानिक दूरियों का अध्ययन किया जाता है।

स) तृतीय सम्बन्ध एक से अधिक स्थलों नगरों के निवासियों के बीच पाया जाता है। इसमें नगरीय केन्द्रों की जनसंख्या आर्थिक विशेषताओं और उनके भिन्नताओं को जानने का प्रयास किया जाता है।

(vkii) चतुर्थ सम्बन्ध एक ही स्थल नगर के भीतर निवास करने वाले लोगों के बीच पाया जाता है। इसके अन्तर्गत नगरीय भूमि उपयोग व्यापारिक संरचना आदि का अध्ययन किया जाता है।

जी0एस0 गोसल ने नगरीय भूगोल के इन अध्ययन विधाओं की व्याख्या की है जो इस प्रकार है–

1. नगर को पृथक इकाई के रूप में लेते हुए उसकी संस्थिति, पारिस्थितिक, विकास, आन्तरिक संरचना वाहय संबंधों तथा विभिन्न नगरीय आवासों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।
2. द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत नगर को एक विशिष्ट दृश्यवस्तु मानकर इसमें नगरीकरण की प्रक्रिया नगर के आकार, आन्तरण, ग्राम्य नगर उपान्त आदि का उल्लेख किया जाता है।
3. तृतीय वर्ग के भूगोलविद् नगर को एक आर्थिक दृश्य की तरह विवेचन कर उसके आर्थिक आधार और कार्यात्मक वर्गीकरण आदि में रूचि रखते हैं।
4. भूगोलविद्ों का चतुर्थ वर्ग व्यावहारिक नगरीय भूगोल से सम्बन्धित हैं जो नगरीय नियोजन विशेषकर नगरीय भूमि उपयोग परिवहन और सार्वजनिक उपयोगिताओं से सम्बन्धित समस्याओं पर आपना ध्यान केन्द्रित करता हैं।

उपरोक्त तथ्यों को संक्षिप्त रूप में मर्फी महोदय ने द्वि–स्तरीय रूप में माना है–अ. एक आवास बस्ती क्षेत्र के रूप में उसकी अवस्थिति विशेषताओं विकास ग्रामीण क्षेत्रों एवं पारम्परिक सम्बन्धों का अध्ययन तथा (**ब**) नगर के आन्तरिक प्रतिरूपों के तहत भूमि उपयोग प्रतिरूपों सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रतिरूपों प्रभाव प्रतिरूपों एवं प्राकृतिक पर्यावरण के प्रतिरूपों का अध्ययन। इन सबके दौरान सामान्यीकरण की खोज उसका मुख्य उद्देश्य हैं। लेविस मम्फोर्ड ने इसी तथ्य को भिन्न शब्दों में अभिव्यक्ति करते हुए नगर को दो रूपों में विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है। 1. धारक के

रूप में नगर विभिन्न तत्वों को आपनी तरफ खींचता है तथा दूर भी करता है अर्थात् एक प्रादेशिक राजधानी के रूप में सम्बन्धित क्षेत्रों से आदान–प्रदान करता हैं। राबर्ट ई0 डिकिन्सन महोदय ने नगरीय भूगोल के विषय में क्षेत्र को प्रमुख चार भागों में वर्गीकृत किया है।

1. नगरों की संस्थिति एवं अवस्थिति
2. नगरों का ऐतिहासिक विकास इसमें नगरों की उत्पत्ति को भी सम्मिलित किया जाता हैं।
3. नगरों की संरचना इसमें नगर की संरचना के उभयपक्षों (**अ**) कार्यात्मक और जनांकिकीय ब. नगर विन्यास या आकारिकीय संरचना को सम्मिलित किया जाता है। पृथक नगरों के उपर्युक्त प्रकार के विश्लेषण के अतिरिक्त प्रादेशिक स्तर पर उनका तुलनात्मक अध्ययन कार्यात्मक और आकारिकीय तौर पर किया जाता है।

उपरोक्त आधार पर कह सकते है कि नगरीय भूगोल की विषयवस्तु को निम्न चार प्रकार से विभाजित है।

1. नगर का एक इकाई में अध्ययन रूप में नगर की संस्थिति, अवस्थिति, स्थिति, मार्ग संगमता उत्पत्ति एवं विकास, आकार जनसंख्या संरचना अकारिकीय संरचना, भूमि उपयोग, कार्यात्मक संरचना आदि को करते है।
2. नगर एवं उसके प्रभाव क्षेत्र के सम्बन्धों का अध्ययन इसमें नगर बसाव क्षेत्र नगरीय ग्रामीण उपान्त नगर प्रभाव क्षेत्र केन्द्र स्थल सेवा केन्द्र के रूप में नगर उपग्रहीय नगरों अर्द्ध नगरीय प्रवाह आदि विषयों के अध्ययन को सम्मिलित किया जाता हैं।
3. नगर–नगर सम्बन्धों का तुलनात्मक अध्ययन इस अध्ययन में नगरों की तुलना उनकी कार्यात्मक एवं आकारिकी विशेषताओं के आधार पर पर किया जाता है।
4. नगरीय समस्याओं कार्यात्मक का प्रबंधन एवं सुझाव इसमें नगरीय भूमि उपयोग नगरीय पर्यावरण प्रदूषण नगरीय प्रकार्यों नगरीय सामाजिकी सम्बन्धी समस्याऐं को अध्ययन कर नियोजन हेतु सुझाव दिये जाते है।

7.7 नगरीय भूगोल के अध्ययन के उपागम

आपने मुख्य विषय भूगोल की ही भॉति नगरीय भूगोल के अध्ययन में भी कई उपागम विधियों का प्रयोग होता हैं। इन्हें मुख्य रूप से निम्न चार वर्गों में विभक्त करते हैं।

अ **1. नगर तंत्र उपागम** – इसमें नगर का अध्ययन एक पूर्ण इकाई के रूप में उनकी संस्थिति, अवस्थिति स्थिति उद्‌भव विकास, जनसंख्या, भूमि उपयोग प्रकार्या आकारिकी बाह्य सम्बन्ध आदि शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाता है।

2. प्रतिदर्श अध्ययन उपागम – इसमें एक नगर अथवा किसी क्षेत्र के कई नगरों का अलग–अलग क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता हैं यह नगरीय नियोजन हेतु उपयोगी होती हैं।

ब) तुलनात्मक प्रादेशिक उपागम – यह नगरीय भूगोल में एक महत्वपूर्ण उपागम हैं। जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र के सभी नगरों का आकारिकीय एवं प्रकार्यात्मक दृष्टियों से तुलनात्मक अध्ययन करते हैं इसके माध्यम से विषय में सामान्यीकरण करने तथा संकल्पनाओं प्रयोगों और सिद्धान्तों के विकास और परीक्षण का अवसर मिलता है।

अ)विकासात्मक अथवा उत्पत्तिमूलक उपागम – इसे ऐतिहासिक उपागम भी कहते हैं इसके अन्तर्गत

नगर की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान स्वरूप तक के सम्पूर्ण विकास के इतिहास का अध्ययन किया जाता हैं। प्रसिद्ध विद्वान ग्रीफिथ टेलर ने इस उपागम का उपयोग किया हैं। इसके माध्यम से नगर के वर्तमान आकारिकी एवं प्रकार्यात्मक प्रतिरूपों के विश्लेषण के साथ–साथ वर्तमान विकास प्रवृत्तियों की उपनतियों के आधार पर आगामी विकास के स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकता हे।।

ब.प्रकार्यात्मक उपागम – इसे आर्थिक आधार उपागम भी कहते हैं इसमें नगर के आधारभूत और गैर आधारभूत प्रकार्यों की विवेचना कर उसके सेवा केन्द्र/प्रादेशिक राजधानी के रूप में योगदान का मूल्यांकन करते है। साथ ही साथ इसमें प्रकार्यों एवं नगरीय आकारिकीय के बीच सम्बन्धों की व्याख्या होती है।

4. अ. गुणात्मक उपागम – इसे आधुनिक एंव आगमनिक उपागम भी कहा जाता हैं। इसमें भिन्न–भिन्न नगरीय क्षेत्रों या नगरों का विशेष अध्ययन कर सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। जिससे संकल्पनाओं और सिद्धान्तों के विकास का अवसर मिलना यह नगरीय भूगोल की एक प्रचलित पद्धति रही है। जिसे पारंपरिक भूगोलविद् आपनाते आ रहे हैं। इसमें क्षेत्र अध्ययनों का विशेष योगदान हैं।

ब) सांख्यिकीय उपागम – इसे सैद्धान्तिक निगमनिक उपागमं के नाम से भी जाना जाता हैं। यह नगरीय भूगोल की एक नवीन अध्ययन विधि हैं। जिसमें गुणात्मक उपागम से भिन्न विश्लेषणात्मक विधि के सहारे, सामान्य से विशिष्ट की ओर पहुँचा जाता हैं। अर्थात् इसमें विभिन्न मान्य संकल्पनाओं एवं सिद्धान्तों को मानकर विभिन्न परिस्थितियों में सांख्यिकीय विधियों द्वारा उनका परीक्षण कर उनकी वैधता की पुष्टि की जाती हैं यह विधि पूर्णतः गणितीय या परिमाणात्मक विश्लेषणों पर आधारित हैं। नगरीय भूगोल के अध्ययन में बहुधा एक से अधिक उपागमों का समन्वय मिलता है।

7.8 नगरीय भूगोल का विकास

नगरीय भूगोल के विकास के इतिहास को दो प्रमुख काल–खण्डों में बॉट सकते है।

1. प्रारम्भिक काल खण्ड 1890–1940
2. आधुनिक काल खण्ड (1940 AD से अब तक

इस विकास में जर्मनी फ्रांस, ब्रिटेन एवं अमेरिकी विद्वानों का प्रमुख योगदान रहा हैं।

जर्मनी में नगरीय भूगोल का प्रादुर्भाव–

नगरीय भूगोल का बीजारोपण जर्मनी में 19वीं सदी के आखरी दशक में रैटजेल की प्रसिद्ध पुस्तक मानव भूगोल से मानी जाती है। जिसमें नगरों को एक भौगोलिक दृष्टि से विवेचन करने का प्रयास किया। सन् 1896 में रिचथोपेन ने भी नगर को भौगोलिक दृष्टि से परिभाषित किया हैं। हेटनर ने 1895 एवं 1902 में नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण की आवश्यकता पर बल दिया । इन्होंने विभिन्न कालों एवं देशों में स्थिति एवं सांस्कृतिक तथा आर्थिक दशाओं का नगरों की प्रकृति पर बदलते प्रभाव का भी मूल्यांकन किया। 1899 में स्ल्यूटर के रचनाओं से नगरीय भूगोल में नगरीय अकारिकी के अध्ययन की शुरूआत मानी जाती है। रैटजेल की शिष्या कु0 सेम्पुल की प्रसिद्ध पुस्तक में व्यापारिक नगरों की संस्थिति के आधार पर तट, दर्रा, पर्वतपदीय नदी तथा बन्दरगाह के रूप में बॉटा गया। नगरीय भूगोल की मूल आधारशिला के रखने का श्रेय प्रसिद्ध विद्वान हैसर्ट का बहुमूल्य योगदान हैं जिसके कारण जर्मनी और यूरोप के अनेक देशों में अलग नगरों के अध्ययन की शुरूआत हुई।

फ्रांस में नगरीय भूगोल का विकास–

फ्रांस में नगरीय भूगोल की शुरूआत और प्रारंभिक विकास का श्रेय ब्लैचर्ड को हैं। जिनकी ग्रीनोबुल नगर पर लिखी गयी पुस्तक 1911 में प्रकाशित हुई। उन्होंने छः फ्रांसीसी नगरों (Lille, Nancy Lyons marselles, Nice and Bordeaux) का अध्ययन करने के अतिरिक्त 1922 में नगरीय भूगोल की विधियों और विषय क्षेत्र पर एक महत्वूपर्ण लेख Une Methode de Geographic Urbaine लिखा जो पेरिस में प्रकाशित पत्रिका La vkie urbaine में प्रकाशिक हुआ। फ्रांस के मानव भूगोलविदों ब्लाश ने नगरों के विभिन्न पक्षों के महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किये। पेरिस विश्वविद्यालय नगरीयता संस्थान के निर्देशंक लवेदान ने 1926 एवं 1936 में नगरीयता के ऐतिहासिक पहलुओं पर तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें प्राप्त हुयी। पियरी जार्ज ने सामान्य नगरीय भूगोल पर दो पुस्तकें (Le fait urbaine) एवं Precis कम Geographie urbaine 1992 एवं 1961 में लिखी। फ्रांस में नगरीय भूगोल के प्रचार एवं प्रसार में पेरिस के सारबोन स्थान से प्रकाशित La vkie Urbaine पत्रिका का प्रमुख स्थान रहा है। जिन्होंने 1930 के दशक से लेकर हाल तक आपनी कृतियों द्वारा विषय को विविध स्वरूपों को परिवर्तित किया है।

ब्रिटेन में नगरीय भूगोल का विकास–

ब्रिटेन में नगरीय भूगोल के अध्ययन की शुरूआत 1911 में गिडीज के प्रयासों से हुई जिन्होंने नगर और उसके भौतिक–सामाजिक पर्यावरण के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हुए नगरीय नियोजन के अध्ययन को प्रेरित किया। इनकी महत्वपूर्ण पुस्तक Cities in Envalution 1915 में लंदन में प्रकाशित हुई जिसमें इन्होंने ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त आदि के नगरीकरण कर नगरीय प्रदेशों की पहचान की तथा इसे सन्ननगर नाम से प्रस्तुत किया। गिडीस के बाद फासेट (C.CB. Fowcett, 1922, 1932) और फ्रीमैन ने ब्रिटेन के सन्ननगरों का वृहद व्याख्या कर अध्ययन किया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में नगरीय भूगोल का विकास–

संयुक्त राज्य अमेरिका में नगरीय भूगोल के प्रारम्भिक विकास में जेफरसन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिन्होंने 1909–1941 के दौरान अपने कई लेखों से विश्व के विभिन्न भागों–विभागों विशेषतः संयुक्त राज्य, ब्रिटेन, जापान में नगरों और नगरीय जनसंख्या के वितरण का अध्ययन किया इन्होंने ही सर्वप्रथम केन्द्रस्थल शब्द का प्रयोग जेफरसेन ने दिया तथा 1939 में प्रधान नगर का नियम का विकास हुआ सन् 1903 में हुई (Richard M. hurd) ने आपनी पुस्तक (Principales of city land values) द्वारा नगरीय भू–अर्थशास्त्र की शुरूआत की और नगरों के लिए अक्षीय विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जो बाद में हायट के क्षेत्रक सिद्धान्त का मुख्य आधार बना वर्ष 1928 में डौरी तथा हिनमैन ने भू– अर्थशास्त्र की पुस्तक (Urban Land Economics New Yourk) द्वारा नगरीय भूमि उपयोग तथा मूल्यों को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण किया। मैकेन्जी 1926 की पुस्तक The Metropolitan Community (New Yourk) 1933 का जिक्र कर सकते है। सन् 1920 में शिकागों से प्रकाशित पुस्तक The Geography of chicago and its Envkirons (R.D. Satisbury and W.C. Alden) नगरीय पर्यावरणवाद पर एक महत्वपूर्ण इसका आधार बनाती है।

नगरीय भूगोल का आधुनिक विकास–

नगरीय भूगोल के विकास के आधुनिक काल की शुरूआत द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान क्षतिग्रस्त नगरों का पुननिर्माण एक प्रमुख समस्या थी जिसने नगर भूगोलविद्ों का सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया। फलस्वरूप नगरीय भूगोल व्यावहारिक अध्ययनों को बल मिला तथा नवीन संकल्पनाओं, सिद्धान्तों प्रतिमानों के विकास के साथ–साथ सांख्यिकीय फलस्वरूप विधियों का ज्यादातर उपयोग होने लगा। इसमें संयुक्त राज्य के नगरीय भूगोलवेत्ताओं, समाज विज्ञानियों और नगरीय अर्थ शक्तियों ने महत्वपूर्ण कार्यक्रम नगरीय भूगोल के अध्ययन की इन नवीन विधियों का

प्रसार अमेरिका एवं यूरोप से विकासशील देशों में भी हुआ जहाँ नगरों, नगरीय क्षेत्रों तथा तेजी से होने वाले नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं ने ऐसे अध्ययनों की उपयोगिता स्वतः प्रमाणित सिद्ध हो गयी थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इसी कारण नगरीय भूगोल में इतने विशद साहित्य का सृजन और प्रकाशन हुआ है। जितना भूगोल की किसी भी शाखा में नहीं हुआ है।

भारत में नगरीय भूगोल का विकास–

भारत में नगरीय भूगोल के विकास का विस्तृत विवरण होसलिट्ज, चटर्जी, गोसल सिंह, गोपालकृष्ण की रचनाओं से मिलता है। इसके साथ ही साथ रोड्स, मर्फी के लेखों तथा कतिपय सन्दर्भ ग्रन्थ सूचियों की मदद से भी इस दिशा में मदद मिली। नियमित प्रगति की जानकारी (JCSSR Journal of Abstrcts and Revkiew in Geography) द्वारा प्राप्त की जा सकती है। नगरीय भूगोल में दो दर्जन से अधिक लेख 1927 से 1941 के बीच मद्रास विश्वविद्यालय के वास्तविक विकास का प्रारम्भ सन् 1955 में प्रो0 सिंह के लंदन विश्वविद्यालय के शोध प्रबन्ध के वाराणसी में प्रकाशन के साथ शुरू हुआ। इस प्रारम्भिक विकास में कलकत्ता एवं वाराणसी के भूगोलविदों का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

1. **कलकत्ता केन्द्र का योगदान**– कलकत्ता केन्द्र से नगरीय भूगोल के क्षेत्र में प्रमुख योगदानकर्ताओं में मीरा गुहा, ए.बी. चटर्जी, एन.आर.कर, ए.के. सेन, डी.एन. मुखर्जी, एन.के दत्त, के. बाग्ची एवं टी.बी. लहिरी का उल्लेख मिलता। मीरा गुहा ने कलकत्ता नगर पर अपना शोध प्रबन्ध लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा कलकत्ता में प्रस्तुत किया तथा 1953–1966 के बीच विभिन्न लेखों द्वारा कलकत्ता की आकारिकी परिवहन तंत्र, नगरीय भूगोल के विषय क्षेत्र पं0 बंगाल के नगरीय प्रदेश एवं नगर नियोजन की आधुनिक संकल्पना आदि विषयों पर प्रकाश डाला। ए.बी. चटर्जी ने लन्दन विश्वविद्यालय से हावड़ा नगर की जनांकिकीय विशेषताओं औद्योगिक भूदृश्य, आकारिकी, पृष्ठ प्रदेश, सामाजिक विशेषताओं आदि से सम्बन्धित अनेक लेख लिखे। कलकत्ता स्कूल में एक प्रमुख योगदान का है जिन्होनें आपने शोध पत्रों द्वारा कलकत्ता नगर की नगरीय विशेषताओं आर्थिक विशेषताओं एवं प्रभाव क्षेत्र निचले पश्चिम बंगाल क्षेत्र में नगरों का पदानुक्रम एवं केन्द्रीय प्रकार्य तथा नगरीय विकास प्रतिरूप आदि का विस्तृत प्रस्तुत किया है।

2.वाराणसी केन्द्र का योगदान– भारत में नगरीय भूगोल के विकास में प्रो0 राम लोचन सिंह के नेतृत्व में वाराणसी केन्द्र का सराहनीय योगदान रहा है। प्रो0 सिंह के बनारस के नगरीय भूगोल पर लिखित शोध के प्रकाशन के उपरान्त वाराणसी केन्द्र में आर0एल0सिंह एवं उनके सहकर्मियों के संयुक्त प्रयास से व्यक्तिगत नगरों पर अनेक शोध पत्र प्रस्तुत किये गये जिनसे सम्बन्धित विभिन्न लेख यहाँ से प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित हुए।

अध्ययनों में काशीनाथ सिंह द्वारा उत्तर प्रदेश के नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण 1959 मध्य गंगा घाटी में केन्द्र स्थलों के स्थानिक वितरण, एस.एस. जौहरी द्वारा सतलज–यमुना जल विभाजक क्षेत्र के नगरों के ऐतिहासिक विकास प्रेमशंकर तिवारी द्वारा मध्य प्रदेश के नगरों के कार्यात्मक ओंमकार सिंह द्वारा उत्तर प्रदेश में केन्द्र स्थलों के कार्यो एवं कार्यात्मक पदानुक्रम के अध्ययन महत्वपूर्ण है।

3) नगरीय भूगोल में अभिनव योगदान– भारत के नगरीय भूगोल के विकास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन 1964–65 के आसपास देखा जिसके फलस्वरूप व्यावहारिक गुणात्मक विधियों का प्रयोग नगरीय अध्ययनों में होने लगा। इसमें बी.एल.एस. प्रकाशराव, एन0आर0 कर, काजी अहमद, जान ई0ब्रश, ए0के0 दत्त, एन0बी0के रेड्डी, पी0डी0 महादेव आदि के प्रारम्भिक योगदान विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार सेवा प्रकार सेवा केन्द्र एवं विकास ध्रुव के रूप में प्रादेशिक नियोजन में नगरों की

भूमिका एल0के0 सेन, आर0पी0 सिंह, के0पी0 सुन्दरम्,वीं0एल0एस0 प्रकाश राव, आर0रामचन्द्रन नगरीय समस्याओं विशेषकर मलिन बस्तियों, एल0आर0 सिंह (DG, 1985, आर0बी0 मण्डल एंव आई0वी0 पोड्डार (BGJ, 1989 आदि नगरीय पर्यावरण प्रदूषण पर महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इसी तरह नगरीय क्षेत्र में भूमि के मूल्य परिवर्तन स्वामीनाथन GRI, 1981 व्यावसायिक संरचना में बदलाव आदि प्रमुख विषय अध्ययनकर्ताओं में लोकप्रिय हो रहे हैं। लेकिन इसके बावजूद देश में नगरीय भूगोलविदों और शोधकर्ताओं को वह महत्व नहीं प्राप्त है। जितना उन्हें पश्चात देशों में उपलब्ध है आज भी नगरीय प्रबन्धन आदि महत्वपूर्ण कार्यों में वास्तुविदों, अभियांत्रिकों समाज विज्ञानियों, अर्थशास्त्रियों, प्रशासकों आदि की तुलना में भूगोलवेत्ताओं की उपलब्धता बहुत कम है। एतदर्थ विषय की उपादेयता में वृद्धि करने की आवश्यकता है, तथा अध्ययन में ऐसे विषयांगो को सम्मिलित किया जाए जो समाज के लिए उपयोगी हो तथा जिससे प्रदूषण मुक्त स्वस्थ नगरीय जीवन का विकास किया हो।

7.9 सारांश

आपने इस इकाई में नगरीय अधिवास एवं नगरीय भूगोल की अवधारणाओं का अध्ययन किया है। आप समझ गये होगें कि ऐसे अधिवास जो गैर प्राथमिक कार्य करके आपना जीवन निर्वहन करते हैं नगरीय अधिवास या नगर कहलाता है। विभिन्न भूगोलविद्ों ने नगर को भिन्न–भिन्न तरीके से बनाया है। जहाँ कुछ विद्वान नगर को मानव वाणिज्य का संकेन्द्रण बताया तथा अन्य ने नगर की प्रकृति को केवल जनसंख्या के ऑकड़ों के द्वारा ही नहीं वहाँ के निवासियों में सम्बन्धों को स्थापित किया है।

आपने इस इकाई के अध्ययन में नगरीय अधिवासों के वर्तमान स्वरूप एवं वितरण को भलीभाँति समझ गये होगें। आपने यह भी जाना कि नगरों के निर्धारण तथा वितरण में जनसंख्या और आधारभूत सुविधाओं को ध्यान में रखकर किया गया। आपने देखा कि कस्बा से लेकर सन्नगर तक के निर्धारण में नगरों को जनसंख्या के आधार पर अलग विचार व्यक्त किये हैं। आधुनिक नगरीय भूगोल के प्रचार–प्रसार एवं संवर्धन में डिकिन्सन का आप्रतिम योगदान रहा है। इन्होंने नगरीय भूगोल को अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया है। जो समाजोपयोगी हो तथा स्वस्थ नगरीय जीवन का विकास किया जा सके।

7.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न तथा आदर्श उत्तर

1. महानगर को प्रादेशिक स्तर की राजधानी है किसने कहा –

   a) मर्फी b) टेलर c) गैडीस d) डिकिन्सन

2. सन्नगर की संकल्पना का श्रेय किसको जाता है–

   a) जिफ b) क्रिस्टालर c) थ्यूनेन d) पैट्रिक गैडीस

3. सिटीज इन इवालेशन प्रसिद्ध पुस्तक है–

   a) जिफ b) हायट c) फासेट d) गैडीज

4. प्रधान नगर नियम का विकास किया है–

   a) फियरमैन b) जेफरसन c) सेम्पुल d) गाटमैन

आदर्श उत्तर–

1. अ 2. द 3. द 4. ब

7.11 सन्दर्भ सूची

1- Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69

2. तिवारी राम चन्द्र (1983) : अधिवास भूगोल–विकास एवं सम्भावनाएं भूसंगम अंक–1 संख्या , प्र0 41.

3. Singh R.L. et al (1976) : Geographic Dimensions of Rural Settlements (Vanansi : N.9 S.7)

4. सिंह काशी नाथ एवं सिंह जगदीश ;1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, वाराणसी : तारा पब्लिकेशन वाराणसी।

5. Demange on, A (1920) : L/ Habitation Rural France, Annals de Geography e. Vo1. 29. PP-352-375.

6. Lefevre, MA (1945) : Principles Geography Humain (Bruxelles)

7. Haggett, P (1965) Location Analysis in Human Geography (London) : Edward Arnold.

8. Chatterjee, S.P. (1964) Progress of (Geography) (Calutta) : Indian Science Congress Association.

9. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

10- करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।

11. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

इकाई–8 नगरो का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 नगरों की उत्पत्ति और विकास के कारक

8.2.1 भौतिक कारक

8.2.2 मानवीय कारक

8.3 नगरों के विकास की अवस्थाऐं

8.3.1 प्राचीन नगर

8.3.2 मध्यकाल के नगर

8.3.3 आधुनिक काल के नगर

8.4 सारांश

8.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

8.8 सन्दर्भ सूची

8.9 अभ्यास प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

मुख्यतः धरातल पर प्रथम नगरीय बस्ती का जन्म कब, कहाँ और कैसे हुआ यह मात्र एक कल्पना का विषय है, लेकिन जिस प्रकार स्थापित कृषि से प्रथम ग्रामीण बस्ती का उद्भव हुआ उसी तरह कृषि उत्पादन से ऐसे प्रारम्भिक नगरीय अधिवास के उत्पत्ति का कारण होती है। जिसमें लोग भोजन की आवश्यकता हेतु कृषि के अतिरिक्त धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन, के साथ–साथ लेखन, अभिलेखन, राजनीतिक, सामाजिक सरोकारों आदि के कामों में लग गये। विश्व में सबसे प्राचीन नगरीकरण का प्रभाव उद्भव पूर्व 5000 से 3000 वर्षो के बीच दजला और फरात नदियों के मैदानी क्षेत्र मेसोपोटामिया में मिलता है जिसमें पहियेदार गाड़ी, बैल द्वारा खीचे जाने वाले हल, नाव, सिचांई की नहर, धातु–शोधन कला आदि प्रौधेागिकी उपलब्धियों का प्रमुख योगदान रहा। इस तरह कृषि कार्यों के उत्पादन में न केवल आशातीत वृद्धि हुई, परिवहन प्रणाली में विकास के कारण प्रमुख संस्थाओं की उत्पत्ति हुई, जो खाद्यान्न के भंण्डारन, विनिमय एवं पुर्नवितरण में लगी थी। नगरों में इसी तरह से व्यापार की शुरूआत हुई, इसी कारण बेबीलोन जैसे समृद्ध नगरो का उद्भव होता है। मेसोपोटामिया से नगरीकरण का प्रसार की शुरूआत होती है धीरे–धीरे मिस्र, पूर्वी भूमध्य सागरीय क्षेत्र, सिन्धु घाटी, चीन तथा दक्षिणी–पूर्वी एशिया के भागों की ओर इसका फैलाव होता जा रहा था।

नगरीय विकास एवं नगरीकरण नगरीय भूगोल के प्रमुख विषय–वस्तु है। ये एक सिक्के के दो पहलू होते हुए भी भिन्न प्रकार से परिभाषित किये जाते हैं। नगरीय विकास को नगरों की उत्पत्ति और उसके सम्पूर्ण विकास को सम्मिलित करते है। मुख्यतः इसे नगरीय वृद्धि अथवा नगर के आकारीय का समानार्थी कहा जा सकता है, जिसमें उसके क्षेत्रफल, जनसंख्या, इमारतों, परिवहन मार्गो

इत्यादि को सम्मिलित करते है। इसके विपरीत किसी क्षेत्र की सम्पूर्ण जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या के अनुपात को नगरीकरण के नाम से जाना जाता है। इसे प्रतिशत में व्यक्त करते है। जहाँ नगरीकरण का नगरीय विकास पर प्रमुख प्रभाव दिखाई पड़ता है, वही नगरीय वृद्धि का सदैव नगरीकरण का प्रभाव दिखाई देता है वहीं नगरीय वृद्धि का सदैव नगरीकरण की निश्चित प्रारम्भिक और अन्तिम सीमायें है (0 से 100 प्रतिशत तक) परन्तु नगरीय विकास का कोई निश्चित अन्तिम बिन्दु नही है। संक्षेप में नगरीय विकास निरपेक्ष संरक्षात्मक वृद्धि का घोतक है जबकि नगरीकरण अनुपातिक वृद्धि को प्रदर्शित करता है।

8.1 उद्देश्य

यह अधिवास भूगोल की अष्ठम इकाई है इसमें आप यह व्याख्या कर सकेगें कि–

- नगरीय विकास में नगरों का सम्पूर्ण विकास का परिणाम है यह आप जान सकेगें।
- नगरों के विकास विभिन्न अवस्थाओं से होकर पदार्पण करता है यह आप व्याख्या कर सकेगें।
- विश्व में नगरों के विकास में बदलती हुई अवधारणाओं की भूमिका को व्याख्या कर सकेगें।
- आधुनिक भारतीय नगरों के विकास में नगरों की विशेषताओं को आप जान जायेगें

8.2 नगरों की उत्पत्ति और विकास के कारक

नगरों की उत्पत्ति, विकास और वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों को मुख्य रूप से दो प्रमुख भागों में बॉटा जा सकता है–

(1) भौतिक कारक (2) मानवीय कारक

8.2.1 भौतिक कारण

नगर पूर्णतः मानव द्वारा बनाया गया भूदृश्य है इसके उत्पत्ति उसके विकास में भौतिक कारकों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तौर पर महत्वपूर्ण योगदान होता है। भौतिक प्राकृतिक आपदाओं के कारण नगरीय विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है इन भौतिक कारकों में उसकी अवस्थिति, जलवायु जल निकास आदि प्रभाव पड़ता है। संस्थिति का अर्थ होता है जहाँ नगर स्थित हो वहाँ फैला होता है। नगर की उत्पत्ति और विकास में महत्वपूर्ण योगदान होती है। मुख्यतः संगम स्थल, पर्वतीय क्षेत्र, पर्वतीय घाटी आदि नगरों के विकास हेतु महत्वपूर्ण माना जाता है। जिसके अनेकों उदाहरण दिखाई पड़ते है। नील नदियों के संगम पर खारतून, शिकागो मिशीगन झील के किनारे, हरिद्वार पर्वत पदीय क्षेत्र में और देहरादून पर्वतीय घाटी में संस्थितियों के प्रमुख उदाहरण है। नगर का विस्तार उसकी संस्थति की आकृति के स्वरूप से प्रभावित होता है लेकिन आधुनिक समुन्नत प्रौद्योगिकी से नगर की संस्थिति की बहुत सी समस्याओं का निराकरण हो सकता है।

जलवायु का भी नगरों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। मुख्यतः समशीतोष्ण तथा उपोष्ण जलवायु नगरों के विकास के लिए आर्दश स्थिति मानी जाती है जब कि उष्ण शुष्क एवं अति शीतल जलवायु नगरों के विकास बाधक होती है। उष्ण प्रदेश में जलवायु कठोरता के कारण अधिकांशतः नगरो की स्थिति समुन्द्र के नजदीक अथवा पठारी क्षेत्रों में देखी जाती है। नगरों में जनसंख्या के भारी वृद्धि और उद्योगो के संकेन्द्रण जल की आवश्यकता होती है यही कारण है कि नदी, झील ऐसे जल के प्राकृतिक स्रोत नगरों के निर्धारण हेतु उपर्युक्त माने जाते रहे है। वर्तमान समय विश्व के अनेक नगरों में शुद्ध पेय जल की आपूर्ति दूर दराज के अंचलो से बड़े–बड़े पाइपों,

कृत्रिम जलाशयों, भूगर्भिक जल, समुन्द्री जल को संशोधन करके आपूर्ति की जा रही है। नगर में जल निकास की व्यवस्था से नगर की स्वच्छता, उसके पर्यावरण और नगर में रहने वाले लोगों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। यही कारण है आदि प्राचीन नगरों से लेकर वर्तमान समय में नगरों में इस पर व्यवस्था का प्रमुख दिया जाता है। इसके अभाव में प्रदूषण की स्थिति बन जाती है। समुचित ढ़लान क्षेत्रो में जल निकास की अधिक सुविधा पाई जाती है जिसके कारण नगर विकास हेतु ये उपर्युक्त दशाऐं मिलती है।

8.2.2 मानवीय कारक –

नगर सांस्कृतिक भूदृश्य का प्रमुख तत्व है जिसके निर्माण और नियोजन में मानवीय, विचार, कल्पना शीलता एवं प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का प्रमुख योगदान रहा है। नगर मानव सभ्यता एवं समृद्धि के द्वैतक होगें। जिनमें भौतिक और मानवीय दशाओ का अनूठा समन्वय देखा जाता हैं। नगरीय विकास में सम्बन्धित मानवीय कारकों में प्रमुख तत्वों का योगदान इस प्रकार है–

(1) क्षेत्रीय आर्थिक आधार

नगर के उद्भव एवं विकास में उसके प्रभाव क्षेत्र के आर्थिक आधार का प्रमुख महत्वपूर्ण स्थान होता है। नगरीय विकास में स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर भी निर्भर करता है। जिससे वह नगर लोगों के लिए खाद्यानों की उपलब्धता, उद्योगों के लिए कच्चा माल आदि प्राप्त करता है और इसके बदले में अपनी विभिन्न नगरीय सेवायें देता है। नगर में वस्तुओं के लिए वितरण बाजार के रूप में प्रयोग करता है। इस अन्योन्याश्रित सम्बन्धों के ही कारण नगर के प्रभाव क्षेत्र की आर्थिक समृद्धि का नगर के विकास एवं कार्यो पर स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है जो नगर जितना बडा होता है उसका प्रभाव क्षेत्र भी उतना बड़ा होता है तथा उसका आर्थिक आधार भी मजबूत है।

(2) राजनीतिक एवं प्रशासकीय अनिवार्यतायें

राजनीतिक एवं प्रशासकीय आवश्यकताओं का भी नगरों के विकास में प्रमुख योगदान होता है। प्रशासकीय कार्य प्राथमिक होती है, जिसके नजदीक परिवहन, बाजार, वाणिज्य सुरक्षा आदि सेवाओं का आपने आप जमघट शुरू होने लगता है जिससे नगरीय विकास को बढ़ावा मिलता है। प्रशासन का प्रमुख केन्द्र राजधानियाँ होती है, जिसकी स्थापना में राजनैतिक सामरिक पक्षो का महत्वपूर्ण योगदान होता है। एक लघु नगर की प्रान्तीय या राष्ट्रीय राजधानी का दर्जा प्राप्त होने पर तेजी से विकास करता है इसी प्रकार से राजनीतिक निर्णय के कारण नगर की वृद्धि अथवा ह्रास के प्रमुख कारण हो सकते है।

(3) वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक विकास

किसी प्रदेश में नगरों के उद्भव एवं विकास पर सामुदायिक जीवन में वैज्ञानिक तकनीक पर विकास का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। मानवीय सभ्यता प्रारम्भिक काल से ही इस तथ्य के अनेक प्रमाण देखे जा सकते है। लोहे के हलो का प्रयोग, पहियेदार गाड़ी, सिचाई, वाष्प शक्ति चालित इंजन, विद्युत, वायुयान, कम्प्यूटर आदि ऐसी ही वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक उपलब्धियॉ है जिन्होने नगरीय विकास को विशेष रूप से प्रभावित किया है। वाष्प शक्ति और मशीनों से शुरू औद्योगिक क्रान्ति और परिवहन विकास ने यूरोप में नगरीकरण को खूब प्रोत्साहित किया। आज भी विकासशील देशो में होने वाला तीव्र नगरीय विकास औद्योगिक विकास से पूरी तरह जुड़ा है जिसमें वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक विकास की मुख्य भूमिका है।

(4) कार्यात्मक आधार :–

किसी नगर का क्रमिक दर्जा उसके द्वारा किये गये आधारभूत या केन्द्रीय कार्यो के द्वारा निर्धारित होता है। वस्तु निर्माण उद्योग एवं यातायात नगरो के विकास हेतु ऐसे ही महत्वपूर्ण कार्य है। इसी प्रकार वाणिज्य, प्रशासन, राजस्व, चिकित्सा, शिक्षा, मनोरंजनन, धार्मिक–सांस्कृतिक आदि कार्य भी नगरीय विकास को आकर्षित करते है। किसी नगर का कार्यात्मक आधार उसके द्वारा प्रदान करने वाली सेवाओं के स्तर तथा परिवहन एवं यातायात संचार अभिगम्यता से प्रभावित होता है। यातायात एवं परिवहन में लगने वाले व्यय और समय से आर्थिक दूरी के द्वारा निर्धारित होता है, जिससे नगर में रहने वाले लोगो का आवागमन एवं व्यापार प्रभावित होता है।

(5) जनांकिकीय एवं सामाजिक विकास स्तर :–

जनांकिकीय एवं सामाजिक विकास स्तर का नगरीय विकास पर असर दिखाई पड़ता है। विकासशील देशो में उच्च जन्मदर तथा निम्न मृत्यु दर से जनसंख्या वृद्धि नगरीय विकास को बड़ा प्रोत्साहन मिला है। ग्रामीणों के पिछड़ेपन एवं मूलभूत सुविधाओं के कारण जनसंख्या का प्रवाह नगरों की ओर हो रहा है। इसके विपरीत पश्चिम के विपरीत देशो में जनसंख्या वृद्धि की गति काफी मन्द है। यहाँ भीड़–भाड़ कोलाहल और प्रदूषण के बढ़ते खतरो के कारण लोग नगरो से गाँवों की ओर पलायन कर रहे हैं।

8.3 नगरो के विकस की अवस्थाएं .

जिस प्रकार मानव का जन्म से शैशवावस्था, तरूणावस्था, प्रौढ़ और वृद्धावस्थाओं से होकर गुजरता है उसी प्रकार नगर भी उत्पत्ति से लेकर विकास की विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करता है जिसके दौरान एक छोटा कस्बा महानगर या बृहन्नगर का रूप धारण कर लेता है। नगर विकास की इन अवस्थाओं के अध्ययन में पैट्रिक गिडीस (1931), लेविस मम्फोर्ड (1938) और ग्रिफिथ टेलर (1959) के योगदान उल्लेखनीय है। पैट्रिक गिडीस ने नगरों की स्थिति, कार्यो, आर्थिक और ऐतिहासिक सत्बन्धों के आधार पर नगरो के आर्थिक विकास की तीन रूपों का वर्णन किया है –

1. आदियुगीन प्रविधि आदिम अर्थव्यवस्था (लगभग 1000 से 1800A.D. तक)
2. पुरायुगीन प्रविधि जिसमें पुरानी अर्थव्यवस्था (1800 से 1900A.D. तक) पाई जाती है।
3. नूतन प्रविधि जिसमें नवीन मशीन युग की अर्थव्यवस्था (1900A.D. के बाद) देखी जाती है।

लेविड मम्फोर्ड (1938) ने नगरो के कार्यो और ऐतिहासिक तथ्यों के सूक्ष्म विश्लेषण के उपरान्त उनके विकास की छः अवस्थाओं का वर्णन किया है।

(अ) इयोपोलिस – यह नगर विकास की प्राथमिक एवं प्रारम्भिक अवस्था है जिसमें लघु उद्योग और छोटे–छोटे बाजारो की स्थापना शुरू होने लगती है जिसमें एक गाँव ग्राम्यनगर केन्द्र का स्थान ग्रहण करने लगता है। भारत जैसे विकासशील देशो के अनेकों नगर इस रूप में देखे जा सकते है।

(ब) पोलिस' इस रूप में कई गाँव आपनी अर्थव्यवस्था के संचालन हेतु सामूहिक सुरक्षा हेतु परस्पर सहयोग कर लेते है जिससे एक विकसित कस्बा उभर कर सामने आने लगता है। उद्योग धन्धो के स्थापना के साथ–साथ परिवहन और संचार के साधनों का तेजी से विकास होने लगता है और व्यापार बढ़ने लगता है।

(स) मेट्रोपोलिस – यह एक पूर्ण विकसित नगरीय क्षेत्र है, जिसमें नगर का नगरीय स्वरूप विकसित अवस्था में दिखाई। इस अवस्था में उद्योग, व्यापार, परिवहन संचार एवं प्रशासन आदि का उच्च स्तरीय विकास दिखाई पड़ता है। सांस्कृतिक भू–दृश्यों, विशाल सुन्दर भवनों, चौड़ी भीड़–भाड़

युक्त सड़को, विकसित यातायात एवं संचार के साधनों, बड़े–बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठानों से नगरीय सम्पन्नता का बोध होता है।

(द) मेगालोपोलिस – यह इसे महानगर सम्मिलित करते है। जिसमें नगरीय विकास अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाता है। इसमें उद्योगपतियों और पूँजीपतियों की एकाधिकारी प्रवृत्तिया प्रबल होने लगती है। नगर में विशाल भवनों, बहुमंजिली इमारतों, बड़े–बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों, बैंकों, परिवहन और संचार के विकसित साधनों, शैक्षिक, स्वास्थ्य, प्रशासन, मनोरंजनन आदि के केन्द्रो का समूहन हो जाता है।

(य) टायरेनोपोलिस – इसमें नगर का ह्रास प्रारम्भ हो जाता है। आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक अवस्थाये बिगड़ने लगती है। बेरोजगारी, भुखमरी, कुप्रशासन एवं असुरक्षा के कारण नगरीय जनसंख्या का पलायन शुरू हो जाता है।

(र) नेक्रोपोलिस – यह नगर की विघटन की अवस्था है जिसमें नगरीय अर्थ व्यवस्था के असंतुलित हो जाने से भुखमरी, अकाल, महामारी आदि का प्रकोप बढ़ जाता है। कुप्रशासन और चोरी, आगजनी, भ्रष्टाचार और असुरक्षा के कारण लूटापाट, हत्यायें, दंगें प्रारम्भ हो जाते है और नगरीय जीवन दुर्लभ बन जाता है। नगर उजड़ जाता है और उसका प्रभाव–क्षेत्र आर्थिक विभन्नता की स्थिति में पहुँच जाता है।

ग्रिफिथ टेलर (1953) ने अपने विस्तृत अध्ययन के उपरान्त नगरों के विकास की सात अवस्थाओं में बाँटा है –

(1) पूर्व शैशवावस्था – यह नगर विकास की प्रारम्भिक रूप है जिसमें सामान्यतः एक गली या सड़क और आवासीय भवनों के बीच में कुछ दुकानें स्थित होती है।

(2) शैशावस्था – इसमें सड़को का जाल बनने लगता है। जैसे, सिम्पसन आदि नगर है। भारत के हर प्रदेश में इस तरह के विकसित नगर दिखाई पड़ते है।।

(3) बाल्यावस्था – इस अवस्था में नगर के केन्द्र भाग में एक विस्तृत व्यापारिक क्षेत्र विकसित हो जाता है। जिससे माध्यम से एक दूसरे व्यवसायिक क्षेत्र आदि विकसित होने लगते है। भारत में कस्बे इसी वर्ग में सम्मिलित किये जाते है।

(4) किशोरावस्था – इस के अन्तर्गत नगर का प्रसार केन्द्र से बाहर भागो के ओर होने लगता है। बाजार और औद्योगिक क्षेत्र अलग–अलग रूप में उभरने लगते है। स्थानीय प्रशासन हेतु नगर पालिका जैसी संस्थाये बन जाती है। भारत के बड़े–बड़े कस्बे इसी प्रकार के है।

(5) प्रौढ़ावस्था – इसमें औद्योगिक और आवासीय क्षेत्र दोनों अलग–अलग होता है। नगर के आवासीय क्षेत्र अत्यन्त अभिजात वर्ग, सामान्य वर्ग और गरीबों की तंग और गंदी बस्तियों में बट हो जाते है।

(6) उत्तर प्रौढ़ावस्था – इस अवस्था में नगर आपने उच्चतम स्तर पर पहुँच जाता है। इसमें प्रौद्योगिकी तकनीकी और नियोजन के कारण नगरीय आकार में कमी आ जाती है। जिसमें संकरी एवं टेढ़ी–मेढ़ी सड़को के स्थान पर नई सड़के, का विकास होने लगता है तथा औद्योगिक व्यापारिक प्रशासनिक एवं आवासीय क्षेत्र बिल्कुल अलग दिखाई पड़ते है। विश्व के प्रमुख नगर –टोकियो, न्यूयार्क, लन्दन, मास्को, शंघाई, कलकत्ता, मुम्बई आदि इसी रूप में स्थित है।

(7) वृद्धावस्था – यह नगर की आखिरी चरण अवस्था है, जिसमें उसका पतन प्रारम्भ हो जाता

है। इसमें विकास नहीं हो पता है और नगरीय जनसंख्या का नगर से पलायन शुरू हो जोता है जैसे एशिया के कई पुराने नगर इस अवस्था में दिखाई पड़ते है। टेलर के अनुसार यह जरूरी नही है कि सभी नगर ऐसी अवस्थाओं से गुजरें। कई आधुनिक, नये बसे और नियोजित नगरों में भी अधिकांश प्रारम्भिक अवस्थाओं का अभाव दिखाई पड़ता है। इस तरह सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव एवं नई तकनीकियों के प्रयोग से नगरों में पुर्नवीकरण के रूप में भी देखा जा सकता है।

8.4 विश्व में नगरों का विकास

विश्व में नगरो के उद्‌भव और विकास का अध्ययन लेविस मम्फोर्ड, गिफिथ टेलर, स्मेल्स, किंग्सली डेविस, आर0आडम्स,वीं0जी0चाइल्ड प्रभूति अनेक विद्‌वानों ने किया है। इनमें से मुख्यतः अध्ययन यूरोप के नगरो से जुड़ा हुआ है लेकिन वर्तमान समय में विश्व के अन्य देशों में भी इस प्रकार के अध्ययन किये जा रहे है। विश्व में नगरों के उद्‌भव एवं विकास के समूचे इतिहास को संक्षेप में निम्न कालों के आधार बॉट सकते है –

(1) प्राचीन काल के नगर (2) मध्य काल के नगर (950 से 1800 A.D. तक) एवं (3) आधुनिक नगर (1800 A.D. के बाद) में बाटॉ जा सकता है। इसी प्रकार मध्यकालीन नगरों को अन्ध युग (450 से 1000 ई0 तक), मध्य युगीन (1000 से 1500 A.D.) तथा पुर्नजागरण (1500–1800 A.D.) तथा पुर्नजागरण (1500–1800 A.D.) आदि कालों में विभाजित किया जाता है।

8.4.1 प्राचीन काल के नगर–

किंग्सली डेविस के मतानुसार विश्व के नगर 6000 से 5000 ईसा पूर्व के मध्य अस्तित्व में आये। इसका आकार में बहुत छोटा लेकिन वर्तमान में आज के कस्बों से मिलता–जुलता दिखाई पड़ता है। इनके उद्‌भव के विकास, में तार्वे का उपयोग, स्थापनाकला, सौर कैलेण्डर के प्रयोग ने इसको एक नया आयाम दिया है। इसे उत्तर पाषाण युग के अन्तर्गत रख सकते है। इस दौरान मेसोपोटामिया के उपजाऊ क्षेत्र अर्द्धचन्द्राकार क्षेत्र में कृषि के अतिरिक्त उत्पादन में खाद्यनों के एकत्रीकरण, भण्डारण, सुरक्षा, वितरण, विनिमय जैसे कामों की नयी पहले हुई जो प्रथम नगरीय क्रान्ति के आधार बनते है। कृषि ही नगरीय सभ्यता का आधार था। किसान नदियों में आने वाली बाढ़ो का लाभ उठाते थे जिससे भूमि उपजाऊ बन जाती थी। हल के उपयोग से खाद्यान उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई जिससे किसान आपने पेट भरने के अलावा अतिरिक्त अनाज उत्पन्न करने लगे। इस तरह समाज में दो वर्ग बन गये – एक कृषि कार्य करने लगा और दूसरा कृष्येतर कार्यो में लग गया। कृष्यतेर कार्यो में लगे लोगो की वजह से समुदाय का विकास हुआ और इसी तरह उद्‌भव होता है।

एन0कारपेण्टर ने इन प्राचीन नगरों के उद्‌भव एवं विकास में चार कारकों को उत्तरदायी माना जो इस प्रकार है– (अ) अनुकूल जलवायु (ब) प्रचुर खाद्यान उत्पादन (स) आक्रमण से सुरक्षा (द) सुरक्षित बसाव (बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदाओं से) एस0वी0ग्रास ने माना है कि इनका विकास उन क्षेत्रों में होता है जहाँ भूमि और जल यातायात की सुलभता, शुत्रओं से सुरक्षा तथा व्यवसाय की दृष्टि से सुविधाएं मौजूद हो।

इन प्रारम्भिक नगरों के उद्‌भव और विकास के बारे में दो प्रकार के विचारों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। पहला विचार यह है कि इनकी प्रारम्भिक उत्पत्ति विश्व के एक ही क्षेत्र मेसोपोटामिया के अर्द्धचन्द्राकार क्षेत्र में हुई जहाँ से नगरीय संस्कृति का प्रसरण–घाटी, सिन्धु घाटी, चीन की ह्वांग–हो–घाटी यूरोप तथा मध्य अमेरिका आदि के क्षेत्रों में हुआ। इस मत के अधिक विश्वसनीय

माना जाता है। द्वितीय मत के अनुसार प्राथमिक नगरों की उत्पत्ति स्वतंत्र रूप से विश्व के विभिन्न भागों में एक साथ हुई। इस मत के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क यह है कि मानव सभ्यता के आदिम काल में आवश्यक वस्तुओं का संचार साधनों के अभाव में वस्तुओं का इतने बड़े पैमाने पर स्थानान्तरण या सांस्कृतिक समुदायों का आपसी समन्वय कठिन एवं असम्भव था।

(1) मेसोपोटामिया के नगर :–

पहली विश्व में दजला एवं फरात नदियों के अवसादी जमाव से निर्मित मैदान मेसोपोटामिया में 3000 और 2500 ई0पू0 बीच प्रथम नगरीय बस्ती की उत्पत्ति मानी जाती है। इस दौरान यहाँ प्रत्येक नगर राज्यों का विकास हुआ। इसमें से प्रत्येक नगर–राज्य एक शासक होता था जो प्रमुख धर्मोपदेशक का भी कार्य करता था। उसका निवास मन्दिर के रूप में बीचों बीच होता था जहाँ नगर के चारो ओर के क्षेत्र से कृषि उत्पादन सम्बन्धित आवश्यक वस्तुओं को संग्रहित किया जाता था। नगर प्रायः नदी धाराओं के बीच बाढ़ो से सुरक्षित क्षेत्र में की जाती थी और उसके चारो तरफ बाउण्ड्री से सुरक्षा हेतु दीवाल बनी होती थी। मेसोपोटामिया में पहले सुमेर एवं बेबीलोनिया में असीरिया में सभ्यता और नगरों का विकास हुआ। मेसोपोटामिया के दक्षिणी भाग में स्थित इरेच, दूरीदू, उर, लागाश तथा लार्सा एवं मध्य भाग में किस और जेमदेत नासर आदि प्रमुख नगर थे जो गाँवो के विकसित रूप थे इनकी उत्पत्ति 3000 ई0पू0 से पहले हो चुकी थी।

उर– यह मेसोपोटामिया का सबसे बड़ा नगर था (जनसंख्या लगभग 24000)। यह तीन भागों में विभाजित था– (1) पवित्र स्थल (2) टीला पर स्थिति चहार दीवारी नगर एवं (3) बाह्नगर। पवित्र स्थल पर मन्दिर स्थित हेाती थी जो पक्के ईंटो से बनी होती थी। यह मुख्य नगर के रूप में जाना जाता था यहाँ प्रशासनिक केन्द्र भी होता था, अनाज के गोदाम और कार्यालय भी स्थित थे। यहाँ से नगर के चातुर्दिक क्षेत्र को भलीभाँति देख जा सकता था। चहार दीवारी और वाह्यनगर आवासीय क्षेत्र में जिनमें लगभग एक समान छोटे–छोटे घर बने थे प्रत्येक घर में चारो तरफ के कमरों के बीच में ऑगन होता था। दजला फरात के संगम पर इस तरह के मकान थे और यह मेसोपोटामिया का प्रमुख बन्दरगाह और प्रशासनिक केन्द्र के रूप में जाना जाता था।

बेबीलोन – यह नगर ईसा पूर्व से 2250 वर्ष पूर्व से पहले माना जाता है जबकि यह खाम्मुरावी साम्राज्य की राजधानी थी। यह वर्तमान बगदाद से लगभग 80 किमी0 दक्षिण फराज नदी के पूर्वी में स्थित था इसके चारो तरफ दोहरी दीवाले बनी थी (ऊँचाई 10 मीटर एवं चौड़ाई 25 मीटर) जिसमें लगभग 80,000 जनसंख्या रहती थी। यह मेसोपोटामिया का सबसे समृद्ध नगर माना जाता था। चांदलर के अनुसार 1770 से 1595 ई0पू0 तक इसे विश्व का सबसे विशालतम नगर होने का श्रेय प्राप्त था नगर लगभग 8.2 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर फैला था, जिसके मध्य में बेल का विशाल मंदिर स्थित था। इसकी मीनारे 78 मी0 ऊँची थी। नगर के बीच में एक झूलता उपवन 22 मीटर ऊँची भूमि पर बनाया गया था। इस प्रकार 612 ई0पू0 से लेकर लगभग 100 वर्षो तक इसकी जनसंख्या 2 लाख और 440 ई0पू0 से 320 ई0पू0 के बीच 2.5 लाख पहुँच गयी और यह पुनः विश्व का सबसे बड़ा नगर क्षेत्र बन गया। इस दौरान चार–पाँच मंजिलों की बहुत बड़ी इमारतों का निर्माण तथा एक एक अन्य नगरों का का विकास फरात नदी के पश्चिम तट पर हो रहा था। बेबीलोन 275 ई0पू0 तक ही आपना प्रभुत्व किया था। सम्भवतः बाढ़ के कारण विनष्ट हो गया और इसके निवासी उत्तर में 25 किमी0 की दूरी पर स्थित सिलूशिया नगर में जाकर स्थानांतरित हो गये, आकार में विश्व का सबसे बड़ा नगर था। 2100 ई0पू0 के आस–पास लागोश राजधानी नगर बन गया एवं एक शताब्दी तक लगभग एक लाख से ऊपर जनसंख्या के कारण यह यह एक विशाल नगर बन गया। इसी प्रकार नाइनवेह नगर, यह दजला नदी के किनारे मोसुल क्षेत्र के पूर्व में थी, असीरिया का सबसे बड़ा और

महत्वपूर्ण नगर था। जिसकी जनसंख्या सवा लाख के ऊपर पहुँच गई थी।

(2)नील–घाटी के नगर – नील–घाटी क्षेत्र में भी नगरों का विकास लगभग मेसोपोटामिया के समकक्ष होता रहा। चांदलर और फाक्स ने माना है कि सही अर्थो में पहले नगर का उद्‌भव नील–घाटी क्षेत्र में थेबेस के समीप स्थित एचीप्रेस के रूप में ईसा पूर्व 3500 में हुआ। यह मिश्र की सबसे पुरानी राजधानी और सांस्कृतिक केन्द्र वाला क्षेत्र था परन्तु मेसोपोटामिया की तुलना में यहाँ नगरो की विकास की गति धीमी रही। यहाँ के नगर आपेक्षाकृत छोटे थे एवं इनका स्वरूप निम्न था, राजधानियों के बार–बार परिवर्तन एवं शीघ्र नष्ट होने योग्य भवन सामग्री के प्रयोग के कारण भी इन नगरो के पुरातत्वीय साक्ष्य कम उपलब्ध होते है।

नील घाटी में ईसा से 3000 वर्ष से पहले विकसित नगरो में भी राजाओं और विद्‌वानों की कब्रों के आकार पिरामिड की तरह थे आवासो के निर्माण में बहुधा धूप में सुखाई ईटो का प्रयोग किया जाता था। नगरो में चारों तरफ से बाउण्ड्री बनायी जाती थी जो सम्पूर्ण सुरक्षा प्रदान करती थी। यहाँ की गलियॉ सकरी थी उसका उपयोग यातायात के साथ–साथ जल निकासी हेतु होता था। मकानों के बीच खुला आँगन था जो चारो ओर से कमरो से घिरा होता था। इसका उपयोग भोजन बनाने और घरेलू कार्यो के लिए किया जाता था।

मुख्यतः मिश्र का सबसे प्राचीन नगर एवीडोस को माना जाता है जो मिश्र की राजधानी थी। इसके बाद 2900 ई0पू0 ने थिनिस और 2700 ई0पू0 को मेम्फिस राजधानी के रूप बन गये। मेम्फिस मुख्यतः दक्षिण नील नदी के पश्चिमी तट पर स्थिति था तथा यह एक लम्बे समय तक एक दूसरे नाम से मिश्र का एक मुख्य नगर के रूप में स्थापित रहा। इसका जन्म 3100 ई0पू0 में नील नदी के डेल्टा के जलोढ़ मैदान और अनुकूल जलवायु के क्षेत्र में हुई थी तथा 3000 ई0पू0 तक 40,000 की जनसंख्या के साथ यह विश्व का सबसे बड़ा नगर बन गया। 2000 ई0पू0 के समीप इसकी जनसंख्या लगभग 1 लाख के करीब हो गयी। आठवीं शताब्दी में मेम्फिस के उत्तराधिकारी के रूप में फोस्टैट नगर का उद्‌य होता है। और सन् 969 ई0 में मिश्र की वर्तमान राजधानी के रूप में जाना गया।

2000 ई0पू0 के आस–पास थेबेस एक बड़ा नगर बन चुका था तथा 1580 के बाद यह मिश्र की राजधानी बन गया। यूनानी लेखको के अनुसार इसका क्षेत्र लगभग 23 किमी0 लम्बी एवं जनसंख्या 2 लाख के करीब तक पहुँच गयी थी। चांदलर के अनुसार 1900 ई0पू0 से 1350 ई0पू0 के बीच यह विश्व का सबसे बड़ा नगर था।

(3) सिन्धु घाटी के नगर :– मिस्र और मेसोपोटामिया की ही तरह भारत में भी सिन्धु घाटी के क्षेत्र में नगरों का विकास ईसा से 3000 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो गया था। यहाँ भी नगरो के उद्‌भव में कृषि का प्रमुख श्रेय था, नगर गाँव के ही विकसित रूप में होते थे। सिन्धु घाटी सभ्यता का जो क्षेत्र था वह सिन्धु, बलूचिस्तान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक विस्तृत था। इस क्षेत्र में कृषि अनाज के उत्पादन गेहूँ, जौ, कपास की खेती तथा बैलगाडियों द्वारा परिवहन, ताँबा एवं जस्ता के प्रयोग, पशु पालन, नक्कासी के साक्ष्य मिलते है।

सिन्धु घाटी के मुख्य नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो थे यह माना जाता था कि हड़प्पा राज्य की राजधानी मोहनजोदड़ो थी। यह लरकाना जिले में सिन्धु नदी के दायें तट पर स्थित था। इसका क्षेत्रफल 240 हे0 था। इसे बाढ़ के मैदान से लगभग 13 मीटर ऊपर बसाया गया था। यहाँ की सड़कें और गलियां सीधी बनायी गयी थी और एक–दूसरे को समकोण पर मिलाती थी। नगर की मुख्य सड़क नगर के उत्तर से दक्षिण की ओर जाती थी, जो चौड़ाई 10 मीटर एवं लम्बाई 800 में मीटर के लगभग थी। अन्य सड़के 4 से 6 मीटर तक चौड़ी होती थी। नगर का अधिकतर भाग पक्की

ईटों का बना था, जिसमें दो कमरों वाले छोटे घर से लेकर कई कमरों वाले मकान पाये जाते थे। प्रायः हर मकान में एक कुआं, स्नानागार, अग्निकुण्ड, चूल्हा होता था और गन्दा पानी और वर्षा जल के निकास हेतु नालियाँ बनी होती थी। नगर के पश्चिम भाग में एक मजबूत होता था। प्रभावशाली दुर्ग बना था। यहाँ एक विशाल जलाशय भी मिला है जो बड़े चौकोर आँगन के बीच स्थित , इसकी लम्बाई 12 मीटर, चौड़ाई 7 मीटर और गहराई 2.5 मीटर है। इसके चारों ओर कमरे, बरामदे और रास्ते होते है। नगर का मुख्य आकर्षण विशाल सार्वजनिक स्नानागार था जिसके समीप एक सार्वजनिक भवन का निर्माण हुआ था। कुछ लोग इसे राजभवन तो कुछ प्रशासनिक क्षेत्र का मुख्यलय मानते है। मोहनजोदड़ो नगर का पता 1922 में लगा था, ऐसा माना जाता है कि यह नगर सात बार बस कर उजड़ चुका था।

हडप्पा नगर पाकिस्तान के पंजाब में माण्टगोमरी जिले से लाहौर रावी नदी के बांये किनारे पर उत्तर पूर्व में स्थित था। यह मोहनजोदड़ो से लगभग 560 किमी0 उत्तर में स्थित था। यह हड़प्पा राज्य के उत्तरी भाग में स्थित गाँवो (जिनमें से 19 का पता लगा है) का शासन केन्द्र था इसकी भौतिक एवं सामाजिक स्वरूप मोहनजोदड़ो के समान थी। हड़प्पा नगर की चहारदीवारी की लम्बाई 9 किमी0 थी। हड़प्पा नगर का मुख्य विशेषता यहाँ का अन्नागार था। यहाँ से आनाज कूटने के चबूतरों तथा श्रमिक आवासो के भी साक्ष्य मिले है।

सिन्धु घाटी के इन नगरों का विनाश 1500 ई0पू0 के आस–पास आर्यो के आक्रमणों, बाढ़ो एवं जलवायु परिवर्तन जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुआ। सिन्धु घाटी की सभ्यता से सम्बन्धित नगरों के अवशेष लोथल, रोपड़ (अबाला से 96 किमी0 उत्तर), कोटला निहांग (रूपड के पास), वनमाली (हरियाणा), राखीगढ़ी आदि स्थानों से मिलते है।

(4) भूमध्य सागरीय क्षेत्र, चीन एवं भारत के नगर :– भूमध्य सागर के पूर्वी भाग में 2500 ई0पू0 तक कई सभ्यताओं का उद्‌भव होता है जिसमें क्रीट द्वीप पर स्थित नोसोस मालिया, ट्राय, माहकेनी, बीबलोस आदि प्रमुख स्थान थे। इसी प्रकार 2000 ई0पू0 के आस–पास इस क्षेत्र में टायरे, बेरूत, सिहोन, उगारित, जेरूसलेम, हालाप, दमिश्ल, गाज़ा, जेरिचो आदि नगर प्रमाणित हुए हैं।

चीन के ह्वाग हो, पीली नदी की घाटी में भी एक प्राचीन सभ्यता के विकास के समय कई नगर पहचान में आए। यहाँ का सबसे प्राचीन नगर शान्ग या यिन (Shang or Yin) था जो ह्वांग हो के किनारे स्थित था। 1200 ई0पू0 में आक्रमणकारियों द्वारा नगर को तहस–नहस कर दिया गया। इन्ही लोगो द्वारा यांगटिलीक्यांग के मैदानी क्षेत्र में लोयांग, आदि नगरो की स्थापना की चान्दलर के अनुसार 650 ई0पू0 तक अधिक जनसंख्या के साथ लोयांग विश्व का दूसरा बड़ा नगर बन गया था।

सिन्धु घाटी की सभ्यता के ह्रास होने के बाद भारत में नगरों का विकास आर्यो के आगमन के उपरान्त (2500 ई0पू0) माना जाता है। जिसके परिणाम से तक्षशिला, इन्द्रप्रस्थ, काशी (वाराणसी), अयोध्या, मथुरा, हस्तिनापुर, मिथिला, द्वारिका, (कन्नौज), आदि नगर की पहचान हो पायी।

(5) प्राचीन यूनानी नगर –

प्राचीन यूनानी नगर के इस युग में लौह युग का प्रारम्भ, सिक्कों का प्रचलन, व्यापार में उत्तरोत्तर विकास के कारण नगरों के विकास को एक आधार मिला। प्राचीन यूनान में नगर–राज्य छोटे–छोटे थे, जिन्हे मिलाकर बड़े नगरों की स्थापना की गयी। इनमें एथेन्स, स्मार्टा, कोरिन्य, मेगरा, विजान्टियम आदि प्रमुख थे। यूनानियों के उपनिवेश काल में कालासागर से लेकर पश्चिमी भूमध्य सागर तक फैले थे। इतने बड़े क्षेत्र में व्यापार हेतु अनेक व्यापारिक नगरों का विकास हुआ। इनमें एशिया माइनर में इफीसस और मिलोटस तथा इटली और सिसली में सेलिनस और नेपिल्ल आदि

मुख्य थे। यूनान के प्राचीन नगरों में साफ–सफाई, जल निकासी की व्यवस्था आदि की उचित व्यवस्था नही थी। पांचवी शताब्दी के अन्त में हिप्पोडेमस नामक वास्तुविद् ने नगरों के नियोजन हेतु जालीदार सड़क प्रतिरूप का निर्माण किया। इन नगरों में सार्वजनिक भवनों, आवागमन हेतु सड़को, रिहाइशी क्षेत्रों में मकान, बाजार आदि सभी सुविधायें की व्यवस्था की गयी थी। बाजार मुख्य रूप से व्यापार और राजनीतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था। जिसकी स्थिति नगर के बीचों–बीच में पायी जाती थी जिसमें खुले भाग भी होते थे।

ग्रीक नगरों में एथेन्स का महत्वपूर्ण स्थान था। 430 ई0पू0 में इसकी जनसंख्या लगभग डेढ़ लाख तक थी तथा यह विश्व का तीसरा सबसे बड़ा नगर था। पेलोपोमिसियन युद्ध में एथेन्स को काफी नुकसान हुआ। अधिकांशतः ग्रीक नगर छोटे आकार के थे जिनकी जनसंख्या 10,000 से भी कम थी।

रोम के प्राचीन नगर –

500 ई0पू0 के आस–पास यूनानी लोगो की हार के बाद इटली और सिसली के क्षेत्रों में रोम साम्राज्य की स्थापना हुई। और वह भूमध्य सागरीय क्षेत्र के अलावा उत्तरी–पश्चिमी यूरोप का बहुत सा भाग जीत को आपने आधीन कर जिससे आल्पस के उत्तरीय भाग में भी नगरों का विकास हुआ। रोम युग के नगर मुख्य रूप सैनिक दृष्टिकोण से बसाये जाते थे। वे बहुत मजबूत बनते। ये प्रायः चौकोर विन्यास के रूप में विकसित होते थे जिनमें सड़के एक–दूसरे को समकोण पर काटती और मिलती थी, तथा नगर के चारों ओर दीवालों द्वारा सुरक्षित होते थे। इन नगरों में कैथेड्रल का विशेष स्थान था। नगरों में जल–प्रवाह, भूमिगत सीवर, पत्थरो से निर्मित सड़को आदि की व्यवस्था होती थी परन्तु बाद में भीड़–भाड़ अधिक हो जाने से गन्दी बस्तियाँ भी बन गयी।

रोमन काल में नगरों का विकास पिरामिड की भांति हो गया था सबसे नीचे वाले स्तर पर सैनिक नगर थे मध्य स्तर पर व्यापारिक नगर तथा सबसे ऊँचे स्तर पर राजधानी नगर थे। इन नगरों का विकास सड़को के मिलन बिन्दुओं पर (रोम, लियोन्स, ट्यूरिन आदि) बन्दरगाहों के रूप में (आस्ट्रिया, कारथागो नोवा, माथोल, हरमोल आदि) व्यापारिक केन्द्रों के रूप में (डलोस, पेट्रा, पामीरा, कोलोन, बेलग्राड, यार्क) किया गया। रोमन काल में पुराने नगरो के अलावा दक्षिणी इटली में तथा उत्तरी इटली में जो नदी की घाटियों में तथा आइबेरिया प्रायद्वीप में नये नगरों को बसाया गया।

रोमन नगर की स्थापना 753 ई0पू0 मानी जताी है जो टाइबर नदी के बेसिन में पैलेटाइन पहाड़ी के चतुर्दिक थी बाद में यह सात पहाड़ियों का नगर बन गया। सन् 271–280 ई0 में चारों ओर 0.6 मीटर चौड़ी और 15 मीटर ऊँची 'औरिलियन दीवाल' का निर्माण सर्बिस टूलियन ने करवाया। नगर के चारो ओर 30 मीटर चौड़ी और 9 मीटर गहरी खाई थी। नगर में भूमिगत सीवार का प्रबन्ध था। नगर का मुख्य आकर्षण फोरम (असेम्बली हॉल) थे जिसमें 70 से 80 हजार दर्शक के बैठने की व्यवस्था थी। सन् 270 ई0 में सम्राट ओरिलियन ने नगर के चतुर्दिक एक दूसरी 4 मीटर ऊँची तथा 16 मीटर चौड़ी दीवाल बनवाया था जिसमें 15 मीटर के अन्तर पर गुम्बद बने हुए थे तथा कई दरवाजे लगे हुए थे। 100 ई0 के आस–पास रोम विश्व का सबसे बड़ा नगर था। जनसंख्या लगभग 2 लाख थी। आपने विकास की चरमावस्था में यह जनसंख्या 8 लाख तक भी पहुँच गयी थी पाँचवी शताब्दी तक रोम का पतन हुआ। जिसका जीर्णोद्धार आधुनिक युग में किया गया। रोम साम्राज्य के अन्तिम चरण में कुस्तुनतुनियाँ एवं विजान्टिथम नगरों का विकास हुआ। इनमें ये प्रथम 330 ई0 में रोम साम्राज्य का राजधानी नगर बन गया और इसकी जनसंख्या बढ़कर साढ़े तीन लाख तक पहुँच गयी।

एशिया के प्राचीन नगर – इसके अन्तर्गत भारत, दक्षिण पूर्वी एशिया एवं सुदूर पूर्व में नगरों के विकास का अध्ययन करते है। भारत में इस युग के अन्तर्गत सातवी शताब्दी ई0पू0 से 647 ई0 के नगरीय विकास के काल को सम्मिलित किया जाता है। यह भारतीय इतिहास में बौद्ध मौर्य और गुप्त काल के नाम से प्रसिद्ध था। इस समय नगरीय विकास, राजनीजिक एवं धार्मिक कारक महत्वपूर्ण योगदान दे रहे थे।

8.4.2 मध्यकाल के नगर –

इसके अन्तर्गत अन्धयुग मध्ययुग (1000 से 1500 ई0 तक) एवं पुर्न जागरणकाल को सम्मिलित करते है। यूरोप में मध्यकाल का प्रारम्भ 5वीं शताब्दी में रोम साम्राज्य के पतन से माना जाता है जब कि भारत में इसे हर्षवर्धन की मृत्यु (647 ई0) के उपरान्त मुसलमानो के आक्रमण से शुरू किया जा सकता है। इस युग में अर्थात अन्धयुग में नगरों का विकास अवरूद्ध रहा अथवा हिंसा, अराजकता और वाह्य आक्रमणों के कारण पुराने नगर ध्वस्त हो गये। यूरोप में भी इस दौरान पादरी के स्थान अथवा धार्मिक–प्रशासकीय केन्द्रों के रूप में कई नगरों का विकास हुआ। (1) अन्धयुग के बाद के काल के दौरान यूरोप में नगरों की संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई जिस प्रमुख दो कारक इस प्रकार है – (1) किसी राजा शासक अथवा पादरी के प्रशासन, सुरक्षा एवं धार्मिक केन्द्रों के रूप में किला तथा गिरिजाघरों अथवा पादरी के स्थानो सहित नगरो का विकास एवं (2) व्यापार और शिल्पकारों अथवा छोटे–छोटे उद्योगो में लगे हुए लोगो की गिल्ड संगठनो के रूप में नौगम्य नदियों एवं प्रमुख स्थलीय मार्गो के सुंगम स्थलो पर नगरों का विकास। मध्य युग में यूरोप में नगरों का जन्म सन् 1200 से 1400 ई0 के आस–पास हुआ।

(3) मध्य युग के दौरान यूरोप के अतिरिक्त एशिया अफ्रीका एवं रूस के विभिन्न भागो में भी नगरीय विकास चीन में इस दौरान शंघाई (1964 ई0) हांगचाऊ, नानकिंग (1409 ई0) एवं पेकिंग आदि नगरो की स्थापना एवं विकास हुआ।

(4) मध्यकाल के अन्तिम चरण को पुनर्जागरण काल के नाम से जाना जाता है (1500–1800 ई0) इसे नगर बसाव की बरोक योजना के आधार पर बरोक काल के नाम भी जानते है। पुनर्जागरण काल की शुरूआत यूरोप में, खोजों के द्वारा अन्वेषण नये देशो की खोज और उपनिवेशीकरण, नेपुल्स, वेनिस, मिलान, लिस्बन, आदि भूमध्य सागरीय क्षेत्र के नगरों के विकास हुआ है।

(4) मध्यकाल के भारतीय नगर – भारत में मध्य युग का काल मुस्लिम युग (1206–1707 ई0) से जुड़ा हुआ है जिसके दौरान मुगल काल में नगरो के विकास को काफी बढ़ावा मिला। इस दौरान बड़ी संख्या में नगरो, किलो एवं मस्जिदों का निर्माण और पुननिर्माण किया गया जिनका प्रमुख उद्देश्य सुरक्षा, प्रशासन और मुस्लिम संस्कृति का प्रचार प्रसार करना था। इस दौरान भारत में नगरों का विकास, सामाजिक महत्व के केन्द्रों वस्तुओं के निर्माण और व्यापारिक केन्द्र, मस्जिद, बाजार, बाग आदि विशेषताएं के रूप में तथा प्रशासकीय और शैक्षणिक केन्द्रों के रूप में हुआ है। इसी तरह तुगलक वंश के शासकों द्वारा दौलताबाद (देश की राजधानी 1339–47 ई0) जलालाबाद, लखनऊ, अकबरपुर, जलालपुर आदि की स्थापना की गयी। मध्य काल के दौरान दक्षिण भारत में चेरा, चोला और पांड्या शासकों का शासन रहा जिसमें मन्दिर गतिविधियों का केन्द्र थे कोयम्बटूर, नागर कोइल, तिरूचिरापल्ली आदि नगर विकसित किये गये। मुस्लिम आक्रमण को रोकने के लिए इस क्षेत्र में अनेक किलो/दुर्गो का निर्माण हुआ जिन्होने बेल्लोर, बंगलौर, बेलगाम, मैसूर विजयवाड़ा, बेल्लारी, हैदराबाद, शिमोगा, एवं करनूल इसके प्रमुख उदाहरण है।

दिल्ली –मध्य काल में देश की राजधानी होने के कारण दिल्ली नगर की सर्वप्रमुख राजनीतिक और

प्रशासकीय क्षेत्र में भूमिका में रही, इसका इतिहास रहा है कि कई बार उत्कर्ष और आपकर्ष की अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ा।

तुगलक वंश के तीसरे शासक फिरोज शाह तुगलक ने 1354 ई0 में फिरोजाबाद नाम की नई राजधानी, बनायी गयी आज फिरोजशाह कोटला के नाम से जाना जाता है। इसी से 4 किमी0 दक्षिण मुगल बादशाह हुमायूं ने अलग राजधानी बसाने का कार्य शुरू किया जिसे बाद में शेरशाह ने पूरा किया इसे शेरशाही या 'पुराने किले' के रूप में जाना जाता है।

आगरा आगरा मुस्लिम युग का दूसरा महत्वपूर्ण नगर क्षेत्र था जो बहुत दिनों तक मुगल बादशाहों की राजधानी रहा। यह नगर यमुना नदी के पश्चिमी किनारे के एक दुर्ग नगर के रूप में विकसित किया गया था। सोलहवीं सदी के पहले दशक में यह एक गाँव था जहाँ सिकन्दर लोदी ने यमुना के पूर्वी किनारे पर नगर का निर्माण कर आपनी राजधानी बनाया। अकबर ने यमुना नदी के पश्चिमी किनारे पर लालकिला तथा जामा मस्जिद का निर्माण करवाया तथा नगर को चारो ओर से ऊँची दीवार द्वारा सुरक्षित किया जिनमें 16 बड़े–बड़े दरवाजे थे, बादशाह के नाम पर इसका नामकरण अकबराबाद किया गया।

8.4.3 आधुनिक काल के नगर –

इस काल का शुरूआत उन्नीसवी शताब्दी से माना जाता है। नगरीय विकास का यह स्वर्णिम युग माना जा सकता है जिस पर औद्योगिक क्रान्ति और परिवहन और संचार व्यवस्थाओं में तीव्र विकास, जनसंख्या प्रस्फोट एवं सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है। औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत 1763 ई0 में यूरोप में हुई जिसके कारण उद्योगों में मानवीय श्रम स्थान पर मशीनो का उपयोग होने लगा, ये उद्योग नगरों के रूप में निर्मित हुए जिनसे प्रभावित होकर समीपवर्ती गाँव से लोग रोजगार हेतु बड़ी संख्या में नगरों की ओर पलायन करने लगे।

इसी तरह का विकास यूरोप के अन्य नगरों, पेरिस (1810), बर्लिन, वियना एवं न्यूयार्क आदि में भी दिखाई पड़ता गया, 1825 ई0 तक लन्दन पेकिंग को पछाड़ कर विश्व का विशालतम नगर बन गया, यूरोप महाद्वीप में 19वीं सदी में नगरीय जनसंख्या में 300 से 400 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गयी। फ्रांस की नगरीय जनसंख्या इसी काल में 110 लाख से बढ़कर 175 लाख पहुँच गयी। यूरोप के नगरों में जहाँ एक तरफ जनसंख्या की वृद्धि देखी जाती है। वही दूसरी तरफ प्रवजन के कारण ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या में कमी देखी गयी। हाउस्टन महोदय ने यूरोप में इस आशातीत नगरीय वृद्धि में रेलमार्गो के विकास, कोयला खदानों की प्रगति एवं उस पर आधारित उद्योगों की स्थापना तथा उत्तम प्रशासनिक अवस्था को महत्वपूर्ण माना है।

यूरोप से नगरीय विकास का वितरण पूरी दुनिया के देशों में हुआ। सन् 1829 में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रथम रेलमार्ग का निर्माण किया। सन् 1940 तक ऐसे नगरों की संख्या 420 पहुँच गयी तथा जनसंख्या इनमें 5 नगरों की 10 लाख से भी अधिक थी। सन् 1925 तक 80 लाख जनसंख्या के साथ न्यूयार्क विश्व का सबसे बड़ा नगर बना था। बोरचार्ट महोदय ने संयुक्त राज्य में नगरीय विकास को चार युगों में बाँटा है।

(1) जलयात्रा एवं वैगन युग (1790 से 1830 तक) (2)वाष्प युग (1830 से 1870 तक)

(3) इस्पात युग (18970 से 1920 तक) तथा (4) मोटर युग (1920 से 1960 तक)

विश्व युद्ध के समाप्ती के बाद एशिया एवं अफ्रीका के विकासशील देशो में नगरीय वृद्धि की गति काफी तीव्र रही है। बीसवी शताब्दी के दौरान तीव्र नगरीय वृद्धि मुम्बई (1901 से 8 लाख से

1991 में 125.7 लाख आदि का उल्लेख किया जा सकता है। विकासशील देशों के महानगरों में होने वाली इस बेतहासा वृद्धि का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1960 ई0 तक विश्व की 10 सर्व प्रमुख नगरीय क्षेत्रों की तालिका से शिकांगो, लन्दन, मास्को एवं पेरिस जैसे विकसित देशो के नगरों को अपदस्थ कर उनका स्थान 1980 में मैक्सिको सिटी, बीजिंग, रियो डी जनेरो एवं साओ पालो ऐसे विकासशील देश के नगरों ने आपना प्रभुत्व जमा कर लिया है।

आधुनिक युग में नगरीय विकास के दो उप भागो में बाट सकते है –

(अ) पुरा शिल्पिक – कोयला एवं लोहा के उपयोग की प्रधानता एवं (ब) नव शिल्पिक – विद्युत एवं मिश्र धातु के उपयोग की प्रधानता।

द्वितीय युग में नगरीय विकास की गति प्रथम की आपेक्षा काफी तीव्र मानी जाती है। होमर होयट के अनुसार सन् 1800 ई0 में विश्व के केवल 36 नगरों के जनसंख्या एक लाख या इससे अधिक थी।

1975 में विश्व में 10 मिलियन से अधिक आबादी वाले केवल 3 बड़े नगर थे

(औद्योगीकृत देश में) जिनकी संख्या 2010 में बढ़कर 26 हो गई इनमें से 19 विकासशील देशो में स्थित है। इनमें आज विश्व की आबादी का 5 प्रतिशत निवास करता है (1975 में 1 प्रतिशत) इस प्रकार एशिया दक्षिण अमेरिका के देशो में आज नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से क्रियाशील दिखाई पड़ रही है जबकि यूरोप एवं उत्तरीय अमेरिका के विकसित देशो में इसमें ठहराव सा आ गया।

एशिया के वर्तमान एवं भविष्य के 10 प्रभुत्व नगरीय क्षेत्र

कोटि क्रम	नगरीय क्षेत्र	जनसंख्या 2010 (लाख में)	नगरीय क्षेत्र	अनुमानिक जनसंख्या 2030 (लाख में)
1	टोकियो	352	जकार्ता	370
2	जकार्ता	220	टोकिया	360
3	मुम्बई	213	मनीला	341
4	दिल्ली	210	दिल्ली	328
5	मनीला	208	मुम्बई	314
6	सियोल	199	शंघाई	228
7	शंघाई	184	कोलकता	222
8	ओसाका	170	कराची	204

9	कोलकाता	155	शैनझेन	
10	शेनझेम	145	सियोल	804

स्रोत : Demographia world Arban area & Population Projection 2010.

आधुनिक युग के नगरों में अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि के कारण मलिन बस्तियों का भी उदय हुआ है। जिनमें जीवन निर्वाहक सुविधाओं की कमी पायी जाती है। इनका निर्माण मुख्यतः औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिक बस्तियों तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग के आवासो के रूप में हुआ है। आज से मलिन बस्तियॉ विश्व के लगभग सभी बड़े शहरों में पाई जाती है। जिनमें विभिन्न प्रकार से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। आज नगरो की एक अन्य विशेषता इनमें उपनगरीय क्षेत्रों के विकास के रूप में देखी जाती है। इनके उद्‌भव एवं विकास में नगर के केन्द्रीय भाग में मान जमघट, स्थानाभाव, आवासो की कमी, परिवहन सुविधाओं में वृद्धि तथा खुले क्षेत्र में रहन की प्रवृत्ति आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। लंदन के पास केण्ट एवं हर्टफोर्डशायर, न्यूयार्क के पास लांग आइलैण्ड, दिल्ली के पास शाहदरा, गलियाबाद आदि इसी प्रकार के उपनगर है।

आधुनिक भारतीय नगर –

भारत में इस युग का प्रारम्भ मुगल साम्राज्य के अंत एवं यूरोपीय देशो के बढ़ते औपनिवेश्कि प्रभावों से मानी जाती है। प्लासी युद्ध (1757 ई0) के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव बढ़ने लगा तथा सन् 1805 तक देश के अधिकांश भागों में अंग्रेजो के अधिकार में आ गया। इन दिनो देश से कच्चे माल के आयात और निर्यात से पश्चिमी और पूर्वी तटों के सहारे अनेक बन्दरगाह नगरों का विकास हुआ जिसमें दीव, दमन, चोल के द्वारा, गोवा पुर्तगालियों बम्बई, सूरत, मद्रास एवं कलकत्ता अंग्रेजो द्वारा विकसित किया गया, माही, कालीकट और पाण्डिचेरी का फ्रांसीसियो द्वारा तथा कोचीन तथा ट्राकीवार का डचो द्वारा। इसी प्रकार अंग्रेजो ने देहरादून, मसूरी, नैनीताल को स्थापित किया।

सन् 1857 की क्रान्ति के बाद देश के रेल मार्गो का विकास हुआ। जिसके कारण जंक्शन के रूप नये नगरो की स्थापना हुयी। उन्नीसवी शताब्दी में देश के कई पुराने नगरों में नयी बस्तियों के रूप मे ंसाफ–सुथरी, नियोजित चौड़ी सड़को से युक्त सिविल लाइन और सैनिक छावनी का निर्माण किया गया था। कानपुर, अंबाला, वाराणसी, आगरा, मेरठ, दिल्ली, लुधियाना, बंगलौर, मद्रास (चेन्नई), लखनऊ, इलाहाबाद आदि नगरों में इन सैनिक छावनीयों एवं सिविल लाइन्स का अस्तित्व पृथक नगर के रूप होता है।

कानपुर – कानपुर नगर की स्थापना कान्हपुर या कन्हैयापुर ग्राम के समीप सन् 1775 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा एक व्यापारिक फक्ट्री के स्थल के रूप में की गयी। लगभग तीन वर्ष बाद इसे सुरक्षा हेतु एक सैनिक छावनी के रूप में स्थापित कर दिया गया। प्रथम स्वतंत्रता सग्राम के समय सैनिक छावनी क्षेत्र का विस्तार 28 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर फैला था। सन् 1863 से 1885 के बीच कई औद्योगिक संस्थान स्थापित किये गये जिनमें, कूपर एलेन कम्पनी, मयूर, कानपुर ऊनी मिल, आर्मी क्लाथ मैन्यूफैक्चरिंग फैक्ट्री मुख्य थे। कानपुर के उद्योगों में वस्त्र, चमड़ा, धातु एवं इंजीनियरिंग प्रमुख थे जिनमें नगर की 70 प्रतिशत श्रमिक आबादी लगी है। केवल वस्त्र (सूती, ऊनी, जूट एवं रेयॉन) में 60 प्रतिशत श्रमिक लगे हुए है तथा कानपुर, मुम्बई और अहमदाबाद के बाद देशो का तीसरा प्रमुख वस्त्र उत्पादक केन्द्र है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप कानपुर नगर की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।। सन् 1881 से 1961 के मध्य नगर की जनसंख्या में 54 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

इलाहाबाद –

इलाहाबाद नगर स्थित गंगा, यमुना के किनारे स्थित है। इसका प्राचीन नाम प्रयाग था। जो संगम के पास स्थित भरद्वाज मुनि का आश्रम ऋषि को तपस्थली के साथ–साथ शिक्षा, धार्मिक एवं सामाजिक चिन्तन का मुख्य केन्द्र था।

प्रयाग के नगरीय स्वरूप का प्रारम्भ मुगल शासक अकबर के समय से माना जाता है जिन्होने सन् 1572 ई0 में संगम के समीप एक विशाल किले (अकबर का किला) का निर्माण कराया तथा नगर के आवासीय क्षेत्र को नदियों के बाढ़ से सुरक्षित रखने के लिए बाध बनवाये। इसका नामकरण इलाहाबाद रखा गया जो बाद में इलाहाबाद बन गया। अकबर के शासन काल में नगर इलाहाबाद सूबा की राजधानी के रूप में प्रयोग होता रहा। सन् 1801 ई0वी में जब नगर अंग्रेजो के अधिकार में आया तो उन्होने किला और पुरानी बस्तियों के बीच छावनी का निर्माण तथा किले की मरम्मत करवायी।

सन् 1857 ई0 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद राजधानी आगरा से स्थानान्तरित कर इलाहाबाद में स्थापित की गयी। सन् 1865 ई0वी में यमुना नदी पर पुल का निर्माण से नगर का सीधा सम्बन्ध सम्पूर्ण गंगा के मैदान क्षेत्रों और प्रायद्वीपीय भारत के क्षेत्रों से सीधे सम्पर्क से जुड़ गया इसी प्रकार 1905 ई0 में फाफामऊ में गंगा पर सड़क–रेल पुल के माध्यम से नगर का सम्बन्ध जौनपुर, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर जनपदों से सम्बन्ध स्थापित हो गया। सन् 1912 में गंगा पर दारागंज, झूंसी रेल पुल तैयार हो जाने से इलाहाबाद का सम्पर्क वाराणसी और उत्तरी बिहार के क्षेत्रों से स्थापित हो गया। आज इलाहाबाद उत्तरी भारत का प्रमुख रेल–रोड जंक्शन है जहाँ से दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई, अमृतसर, डिब्रूगढ़, जयपुर, गोरखपुर, लखनऊ आदि नगरो को सीधे यातायात सुविधाये उपलब्ध है। इलाहाबाद नगर के विकास को सर्वाधिक कष्ट प्रदेश की राजधानी के लखनऊ में स्थानान्तरित करने से हुआ। जिसके कारण कई केन्द्रीय और प्रान्तीय नगर से हटा दिये गये। जनसंख्या की दृष्टि से इलाहाबाद नगर प्रदेश का छठवॉ प्रमुख नगर है। इसकी नगरी जनसंख्या जो शताब्दी के प्रारम्भ (1901) में 172, 032 थी। गत् 90 वर्षो में बढ़कर 841, 638 (439) पहुँच गई सन् 2001 की जनगणना के अनुसार इलाहाबाद देश का 32वॉ दसलाखी नगर (जनसंख्या 10,49,579) बन गया है।

गंगा नदी पर पूर्व के ओर शास्त्री सेतु तथा उत्तर की ओर फाफामऊ के पास नवीन आजाद सेतु के निर्माण के उपरान्त इलाहाबाद नगर का तेजी से प्रसार झूंसी और फाफामऊ की तरफ हो रहा है। आज नगर निगम क्षेत्र की सीमा के अन्तर्गत फाफामऊ एवं झूंसी के क्षेत्र शामिल हो गये है तथा नगरीय क्षेत्र का विस्तार 90 वर्ग किलोमीटर से भी अधिक क्षेत्र पर हो गया हैं।

8.5 सारांश

इस इकाई में नगरों का उद्भव और विकास कब, कहाँ और कैसे हुआ यह आप भलीभाँति जान गये होगें। नगरीय विकास एवं नगरीयकरण नगरीय भूगोल के प्रमुख विषय–वस्तु है। ये परस्पर सम्बन्धित होते हुए भी भिन्न प्रकार से परिभाषित किये जाते हैं। नगरीय विकास के नगर की उत्पत्ति से लेकर उसके वर्तमान समय तक के सम्पूर्ण विकास को सम्मिलित करते हैं। संक्षेप में इसे नगरीय वृद्धि अथवा नगर के आकारीय विस्तार का समानार्थी माना जा सकता है। किसी क्षेत्र की सम्पूर्ण जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या के अनुपात को नगरीकरण के नाम से भी जाना जाता है।

प्राचीन काल के नगर से लेकर आधुनिक काल के समय के बीच नगर आपने प्रभाव क्षेत्र में

वृद्धि कर रहे थे। प्रमुख नगर थे जो गाँवों के विकसित रूप थे। आज जनसंख्या की वृद्धि ने इसके पैमाने को नये ढंग से प्रस्तुत किया तथा विभिन्न देशों में इसकी अलग–अलग मानकों द्वारा निर्धारित किया है। वर्तमान नगरों के कारण उपनगरीय क्षेत्रों का विकास नगरीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है और नगरीय पर्यावरण को बेहतर बनाने का वैज्ञानिक प्रयास है।

8.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श नगर

1) मम्फोर्ड ने नगरों को कितनी अवस्थाओं में बॉटा है–

अ) 3 ब) 5 स) 8 द) 6

2) नगरीय विकास की चरम अवस्था होती है?

अ) इओपोलिस ब) पोलिस

स) मेगालोपोलिस द) मेट्रोथोलिस

3) मध्यकाल के अन्तिम चरण को किस नाम से जाना जाता है–

अ) भक्तिकाल ब) प्राचीनकाल

स) पुनर्जागरण काल द) इनमें से कोई नहीं

4) लखनऊ किस नदी के किनारे बसा है–

अ) कोसी ब) यमुना स) सरयू द) गोमती

आदर्श उत्तर–

1) द 2) स 3) स 4) द

8.7 सन्दर्भ सूची

- Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69

2. तिवारी राम चन्द्र (1983) : अधिवास भूगोल–विकास एवं सम्भावनाएं भूसंगम अंक–1 संख्या , प्र0 41.

3. Singh R.L. et al (1976) : Geographic Dimensions of Rural Settlements (Vanansi : N.9 S.7)

4. सिंह काशी नाथ एवं सिंह जगदीश ;1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, वाराणसी : तारा पब्लिकेशन वाराणसी।

5. Demange on, A (1920) : L/ Habitation Rural France, Annals de Geography e. Vo1. 29. PP-352-375.

6. Lefevre, MA (1945) : Principles Geography Humain (Bruxelles)

7. Haggett, P (1965) Location Analysis in Human Geography (London) : Edward Arnold.

8. Chatterjee, S.P. (1964) Progress of (Geography) (Calutta) : Indian Science Congress Association.

9. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

10- करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।

11. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

8.8 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा तैयारी हेतु)

प्रश्न–1 नगरों के उद्‌भव और विकास पर आपने विचार प्रस्तुत करें।

प्रश्न–2 नगरों के विकास में लेविस मम्फोर्ड के योगदान को प्रस्तुत कीजिए।

प्रश्न–3 विश्व के नगरों के विकास का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

प्रश्न–4 मध्यकाल के भारतीय नगरों पर प्रकाश डालिए।

इकाई–9 नगरीय आकारिकी

इकाई की रुपरेखा

9.0. प्रस्तावना

9.1. उद्देश्य

9.2. नगरीय आकारिकी को प्रभावित करने वाले कारक

9.2.1. प्राकृतिक कारक

9.2.2. सांस्कृतिक कारक

9.3. नगरीय आकरिकीय के प्रकार

9.4. नगरीय आकारिकी के विकास की अवस्थायें

9.5. नगरीय आकारिकी : एतिहासिक विकास

9.5.1. पूर्व औद्योगिक नगर

9.5.2. औपनिवेशिक नगर

9.5.3. औद्योगिक नगर

9.5.4. समाजवादी नगर

9.5.5. नगर विकास के शष्ट् मार्ग

9.6 नगरीय संरचना सिद्धान्त

9.6.1. सकेन्द्रीय मेखला सिद्धान्त

9.6.2. खण्ड सिद्धान्त

9.6.3. बहुनाभिक सिद्धान्त

9.7. नगरीय भूमि उपयोग

9.8. नगरीय भूमि के प्रकार

9.9. भारतीय नगरों की आकारिकी

9.10. सारांश

9.11. स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

9.12. सन्दर्भ सूची

9.13. अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतुद्ध

9.0 प्रस्तावना

अंग्रेजी भाषा का 'Morphology' शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों 'Morphe' = form अर्थात् आकार और

'Logos' = Discourse अर्थात् विवरण से मिलकर बना है जिसका अर्थ है 'A Discourse on form' आकार के बारे में विवरण। नगरीय आकारिकी के अन्तर्गत अन्तः नगरीय तंत्र में भीतरी स्थानों के कार्यात्मक कार्यों के विभिन्नता का अध्ययन करते जाता है। डिकिन्सन महोदय ने कहा है कि नगरीय आकारिकी का सम्बन्ध उसके बसाव क्षेत्र के नियोजन एवं विन्यास से होता है जिसका आकलन उसके उद्‌भव, विकास एवं कार्यों के आधार पर किया जाता है। मर्फी के अनुसार आकारिकीय का अध्ययन वर्तमान नगर के प्रतिरूप और उसके स्वरूप के विकास पर निर्भर करता है, स्मेल्स के अनुसार आकारिकी नगरीय क्षेत्रों की प्रकृति, उनके कार्य एवं स्वरूप उनके सापेक्षिक विन्यास तथा उनके सामाजिक अन्योन्याश्रय का विवरण है जिसे एक नगरीय क्षेत्र के भौगोलिक विश्लेषण के रूप में जाना जाता है। संक्षेप में नगरीय आकारिकी के अन्तर्गत नगर के भौतिक विन्यास और इसकी आन्तरिक कार्यात्मक संरचना का अध्ययन किया जाता है।

9.1. उद्‌देश्य

यह अधिवास भूगोल की नवम इकाई है इसमें आप यह जानेंगें कि –

- नगर की कार्यात्मक आकरिकी में मानव द्वारा नगरीय क्षेत्र का प्रयोग कैसे किया जाता है।
- नगरो के आन्तरिक संरचना का प्रसरण भूमि उपयोग के आधार पर व्याख्या कर सकेगें।
- नगरीय आकरिकी के विकास की वैचारिक विविधता को जान सकेगें।
- नगरीय संरचना के सिद्धान्तों के उपयोग को जान सकेगें।

नगर के भौतिक विन्यास का अभिप्राय नगरीय संचरना से है जिसमें सड़कों एवं गलियों के प्रतिरूप, इमारतों के समूह, अलग–अलग मकानों और उनके प्रकार्यो, उनके घनत्व एवं व्यवस्था आदि को सम्मिलित करते हैं। जिसे नगर का 'आन्तरिक भूगोल' भी कहा जा सकता हैं। इसी तरह नगर की कार्यात्मक आकारिकी नगरीय क्षेत्र के मानव द्वारा किये गये कार्यों के अध्ययन का विश्लेषण करते है। नगर के आन्तरिक भौतिक स्वरूप को नगरीय भू–दृश्य भी कहा जाता है जो नगरीय आकारिकी का पर्यायवाची है।

9.2. नगरीय आकारिकी को प्रभावित करने वाले कारक

नगरीय आकारिकी को प्रभावित करने वाले कारकों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते है –

9.2.1. प्राकृतिक कारक :– इसमें बसाव स्थिति, बसाव स्थान आदि के आधार नगरीय आकारिकी का अध्ययन किया जाता है जैसे, एक मैदानी भाग में स्थित नगर का विकास चारो ओर होता है जबकि तटीय क्षेत्र में स्थित नगर का विकास सागर की ओर बाधित रहता है। इन प्राकृतिक कारणों में उच्चावच, जलवायु, अपवाह प्रणाली, वनस्पति, मृदा प्रकार आदि को सम्मिलित करते हैं।

9.2.2. सांस्कृतिक कारक :– इसमें नगर के निवासियों की धार्मिक मान्यताओं, रीति, रिवाजों, प्रौद्योगिक विकास, शैक्षणिक स्तर आदि को सम्मिलित करते हैं, जो नगर की आन्तरिक संरचना और विन्यास को विभिन्न तरीको से प्रभावित करते हैं। इसके अलावा यातायात और संचार तंत्र, औद्योगिक विकास तथा राजनीतिक–सामाजिक संगठन आदि का भी नगरीय आकारिकी में महत्वपूर्ण प्रभाव देखा जा सकता है। अनेक प्राचीन नगरों का फैलाव किसी मन्दिर, मस्जिद, या दुर्ग के चातुर्दिक होता है जैसे, मदुराई नगर मीनाक्षी मंदिर एवं तिरूपति बाला जी के मन्दिरों को ध्यान में रखकर बसाये गये हैं।

9.3. नगरीय आकारिकी के प्रकार

नियोजन के आधार पर नगरीय आकारिकी दो उपवर्गों में बॉटा जा सकता है–

1. **अनियमित आकारिकी** :– इसमें अधिकांशतः गैर नियोजित नगरों की आकारिकी को अध्ययन किया जाता है। इनका विकास अनियमित, मिश्रित एवं मलिन बस्तियों एवं जीर्णशीर्ण इमारतों आदि के रूप में होता है।

2. **नियोजित आकारिकी** :– इसमें नगर का बसाव निश्चित योजना के अन्तर्गत है। भूमि उपयोग में एकरूपता पाई जाती है। चण्डीगढ़, नई दिल्ली, भुवनेश्वर, वाशिंगटन, कैनबरा आदि नियोजित आकारिकी के अनुपम उदाहरण हैं

9.4. नगरीय आकारिकी के विकास की अवस्थायें

नगरीय अधिकारियों के विकास की निम्न तीन अवस्थायें पाई जाती हैं –

1. **उत्पत्ति** – यह नगरीय आकारिकी के विकास की प्रारम्भिक अवस्था के रूप में जाना जाता है जिसमें उसके नाभिक की उत्पत्ति और विकास की क्रिया सम्पन्न होती है।

2. **प्रतिरूपोत्पत्ति** – इस अवस्था के अन्तर्गत नगरीय आकारिकी का स्वरूप उभकर सामने आ जाता हैं। इसमें नगर की गलियों, सड़कों आदि का विकास होता है तथा विभिन्न स्थानों पर नगरीय कार्यो के फैलाव से कई नाभिकों की उत्पत्ति होने लगती है।

3. **आकारोत्पत्ति** - इसमें नगरीय आकारिकी विकसित होकर आपने पूर्ण स्वरूप प्राप्त कर लेती है। नीचे नगरीय आकारिकी के विकास की इन तीनों अवस्थाओं को प्रदर्शित किया गया है।

1. नगर का नाभिक केन्द्र,
2. पुरानी सड़कों के सहारे नये उपनगरीय क्षेत्र,
3. नव विकसित रिहाइशी क्षेत्र।

चार्ल्स सी0 कोल्बी ने माना है कि नगरीय आकारिकी मुख्यतः निम्न तीन शॅक्तियों प्रमुख शक्तियों के कारण होती है–(अ) केन्द्रोमुखी शॅक्तियाँ, (ब) आपकेन्द्री शॉक्तियाँ एवं (स) स्थानिक विभेदीकरण शॅक्तियाँ। इसी प्रकार आर0ई0 डिकिन्सन ने नगरीय कार्यात्मक आकारिकी को प्रभावित करने में सात शॅक्तियों को उत्तरदायी माना है –

1. **केन्द्रीकरण** – केन्द्रोमुखी शक्ति के तनाव के कारण नगर में व्यापार आदि कार्यो और जनसंख्या बसाव से नगर के केन्द्रीय भाग में सर्वाधिक सकेन्द्रण पाया जाता है। यह नगर के उद्‌भव और विकास में कारगर साबित होती है।

2. **पुन्जीकरण** –नगर के आन्तरिक भाग में व्यापार, परिवहन, तथा उद्योग, प्रशासन एवं रिहाइशी आदि कार्यो की अधिकता के कारण इस प्रवृत्ति परिणाम होता।

3. **विकेन्द्रीकरण** – नगर के केन्द्रीय भाग में स्थानों की कमी होती है, मूल्यों में वृद्धि के कारण बहुत से नगरीय क्षेत्र नगर के बाहरी भागों में विकसित होने लगते हैं। शान्त एवं स्वस्थ जीवन के लिए इन्हीं भागों में नए रिहायशी मकान भी बनने लगते हैं। इससे उपनगरीय क्षेत्रों का विकास होने लगता है।

4. **आसान्द्रीकरण** – नगर के मध्यवर्ती भाग से बाह्य भाग की ओर कार्यो के स्थानान्तरण को

असान्द्रीकरण कहा जाता है। इसको विकास में परिवहन साधनों की प्रमुख भूमिका होती है। यह आपकेन्द्रीय शॉक्तियों के कारण होता है।

5. **पुर्नेन्द्रीकरण** – नगर के बाहरी भाग में कार्यों का फिर से जमघट प्रारम्भ होने लगता है जिसे पुर्नकेन्द्रीकरण कहा जाता है। इन भागों में भी रिहायशी मकानों के साथ औद्योगिक संस्थान, व्यापारिक केन्द्रों का जमाव प्रारम्भ होने लगता है।

6. **रिहाइशी पृथक्करण** – इसके तहत नगर में सामाजिक और आर्थिक असमानता के कारण विभिन्न वर्गों के अलग–अलग रिहाइशी का प्रादुर्भाव होने लगता है।

7. **प्रभाविता, हस्तक्षेप अनुक्रमण** – नगर के विकास के दौरान कालान्तर में इसके क्षेत्रीय भूमि उपयोग में परिवर्तन आने लागता है जिससे रिहाइशी क्षेत्र व्यापारिक और औद्योगिक कार्यो में बदलने लगता है।

9.5. नगरीय आकारिकी : ऐतिहासिक विकास

नगर कभी स्थिर नहीं होते हैं। उनके विकास की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। क्योंकि उनके विकास पर प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक–राजनीतिक तंत्र के परिवर्तनों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। जिसमें उनकी संरचना प्रतिरूप एवं संगठन भी प्रभावित होते है। अशोक के0 दत्त (2001) ने नगरीय संरचना के ऐतिहासिक विकास को निम्न 5 खण्डों में विभाजित किया है।

9.5.1. पूर्व औद्योगिक नगर– स्जोबर्ग (1960) ने पूर्व औद्योगिक नगरों की पाँच प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है।

> 1. उनके चारों तरफ सुरक्षात्मक दृष्टि दीवार एवं खाई बनी होती थी। नगर के भीतर भी विभिन्न समुदायों को अलग करने वाली दीवालें होती थी। 2. इन नगरों की गलियाँ बहुत सकरी एवं टेढ़ी–मेढ़ी होती थीं जिनसे होकर पशुओं और आदमियों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियाँ गुजरती थी। 3. नगर के केन्द्र में मुख्य बाजार के साथ सरकारी एवं धार्मिक इमारतें स्थित होती थी। नगर के सम्पन्न एवं सम्भ्रान्त लोग इसी क्षेत्र में निवास करते थे। 4. गरीब लोग नगर के बाह्य भाग में छोटे एक कमरे के झोपड़ीनुमा आवसों में रहते थे। 5. नगरीय भूमि उपयोग में श्रेणी पदस्थिति, नृजातीय एवं पेशेवर विशेषताओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

1. **दक्षिणी एशियाई नगर** :– यद्यपि स्जोबर्ग की पूर्व–औद्योगिक नगरों को उक्त विशेषतायें पूरे विश्व के लिए उपयोगी बताया हैं परन्तु ये यूरोप के अधिक प्रयोज्य हैं। एशियाई नगरों में सभी नगरीय क्षेत्रों, दीवाल एवं खाई नहीं मिलती है। इसी तरह भारत में इसके अलावा नगर भूमि उपयोग पर जाति एवं धर्म का अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता था। अशोक दत्त ने दक्षिण एशिया के इन पारंपरिक नगरों का एक मॉडल प्रस्तुत किया है। नगर की प्रथम मेखला नगरीय केन्द्र के रूप में सड़कों के मिलन बिन्दु (चौक) पर स्थित होती थी जिसमें व्यापारिक क्रियाओं की प्रधानता थी। यहाँ की दुकानों में मानव की आवश्कताओं से संबंधित खाद्य, वस्त्र एवं आवास संबंधी वस्तुओं की बिक्री होती थी। जल्द खराब होने वाली वस्तुओं का विक्रय खुले बाजार के रूप में नगर के विभिन्न क्षेत्रों में होता था। यहाँ होटल, सरॉय, और धर्मशाला, को व्यवस्था थी। सिनेमा हाल, बैंक, मदिरालय इत्यादि भी इस क्षेत्र में पाये जाते थे। इसके चतुर्दिक स्थित द्वितीय मेखला में सम्भांत एवं गरीब दोनों के आवास स्थित थे। इसके विपरीत तृतीय मेखला में मुख्यतः निम्न वर्गो के लोगों के आवास पाए जाते थे। स्वतान्त्र्योत्तर काल में इन पारंपरिक नगरों का तेजी से विकास हुआ। कई नगरों में अर्ध नियेाजित रूप में तृतीय मेखला के बावजूद सिविल लाइन जैसे क्षेत्रों का विकास किया गया जहाँ यूरोपीय आवासों

के अतिरिक्त प्रशासनिक कार्यालयों, तहसील पुलिस स्टेशन, स्कूलों, क्लब, पुस्तकालयों एवं क्रीडास्थलों का विकास किया गया। नव धनाढ्यों ने खुली और अधिक स्वास्थ्यकर क्षेत्र में आवासों का निर्माण किया। स्वतंत्रता के बाद चन्द्राकार रूप में पारंपरिक नगरों के आकार में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई जिसके तहत तृतीय मेखला से बाहर नियेाजित और कम नियाजित क्षेत्रों में मध्यम और उच्च वर्ग के लोग अपने आवास का निर्माण किया।

2. चीनी पारम्परिक नगर :– चीन के पारम्परिक नगरों में दीवाल होती थी एवं उनमें भूमि उपयोग एवं वर्ग विभेदी कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता था। सन् 1949 की साम्यवादी क्रान्ति के उपरान्त पारम्परिक नगर से बाहर औद्योगिक एवं आवासीय फैलाव हुआ जिनमें उच्च आवासीय एपार्टमेण्ट बनाये गये। चीन के प्राचीन नगर आयताकार की तरह होते थे, और उनके चतुर्दिक दीवाल बनी होती थी। इसके बीच में मानवीय जमघट होता था जिसकी एक तरफ सामान्य लोगों के आवास एवं दूसरी तरफ सम्भ्रान्त लोगों के आवास एवं सरकारी कार्यालय मनोरंजनन गृह हुआ करते थे। सड़कें चौड़ी और सीधी होती थी। डान (Don 1989) के अनुसार चीन का राजधानी नगर आयताकार रूप में 9 वर्गो से बना था और इसके चतुर्दिक चहारदीवारी थी। ये सड़कें चहारदीवारी के सहारे भीतर एवं बाहर चौड़ी थीं जिससे सवारी गाड़ियों का निरन्तर आवागमन होता रहे। चीन के नगरों की यह मुख्य विशेषता बीसवीं सदीं के आरम्भिक काल तक जारी रही। आज भी चीन के कई पुराने नगरों में ये विशेषतायें पाई जाती हैं। सन् 1949 की क्रान्ति के बाद चहारदीवारी नही रही परन्तु नगर की विशेषतायें बराबर बनी रही। चहारदीवारी से बाहर ऊँचे आवासीय एपार्टमेण्ट बने। पुराने आवासीय क्षेत्र भूमिगत सीवर एवं पाइप द्वारा जलापूर्ति न होने के कारण मलिन क्षेत्रों में परिणत हो गये। लेकिन नगर–केन्द्र और बाजार की समीपता के कारण इनमें भीड़–भाड़ कम न हुई। इनमें से कई क्षेत्रों का पुनः निर्माण किया जा रहा है। जिसमें स्वस्थ जीवन के लिए सभी सुविधाएँ विकसित की जा रही हैं। उद्योग इन नगरों में बाहर की ओर गये हैं चीन के पारंपरिक नगरों को एक सुनियोजित योजना के तहत बसाया गया था। इनमें औपनिवेशिक काल के दौरान पाश्चात्य देशों के विकास के रूप में प्रतिस्थापित किये गये हैं।

9.5.2. औपनिवेशिक नगर– औपनिवेशिक नगरों की शुरूआत नये विश्व खोजों एवं अन्वेषण के उपरान्त तदुपरान्त स्पेन, पुर्तगाल, ब्रिटेन, फ्रांस एवं बेल्जियम द्वारा उपनिवेशकों के निर्माण के साथ हुई। इनके बसाव दो तरह के थे। जहाँ संयुक्त राज्य, कनाडा, लैटिन अमेरिका, आस्ट्रेलिया एवं दक्षिण अफ्रीका में इन्होंने मूल निवासियों की विस्थापित कर अपने देश के नगरों की भाँति नए नगरों को बसाया वहीं दक्षिण एवं दक्षिण–पूर्व एशिया, अफ्रीका, मध्य पूर्व, लैटिन अमेरिका के कुछ देशों एव कैरिबयाई द्वीपों में इन्होंने विभिन्न देशों के पारम्परिक नगरों के समीप सिविल लाइन सरीखी अलग बस्तियों का निर्माण किया। **दक्षिण एशियाई औपनिवेशिक नगर**– दक्षिण एशिया के उपनिवेशिक नगरों के मुख्य उदाहरण के रूप में कोलकाता, चेन्नई, मुम्बई एवं कोलम्बों जैसे नगरों का उल्लेख किया जा सकता है। ये सभी नगर सागर पत्तन नगर हैं एवं इनमें मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार पाई जाती हैं (दत्त, 1993) इनका एक मॉडल में प्रस्तुत किया गया है। 1. अपने–अपने मातृ देश में व्यापार एवं सैन्य बल के वृद्धि के लिए बन्दरगाह की सुविधाएँ प्रारम्भ की गयी जिनसे इन नगरों की शुरूआत हुई। 2. एक किले का निर्माण किया गया जिसके चारों ओर से बाउण्ड्री बनाई गयी थी एवं जिसमें सैनिकों और अधिकारियों के आवास निर्मित थे। किले में आवासीय भवनों के अलावा एक गिरिजाघर और कारखाने भी स्थित थे जहाँ से आयात निर्यात किया जाता था। 3. किले के चारों ओर एक खुला मैदान पया जाता था जिसका उपयोग सैन्य अभ्यास के लिए किया जाता था। 4. किले के क्षेत्र से बाहर स्थित भीड़–भाड़, अस्वास्थ्यकर एवं अनियोजित बस्ती हुआ करती थी जिसे कोनेटिव या ब्लैक टाउन कहा जाता था। 5. किला और देशाी बस्ती के पास केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (CBD) का विकास

हुआ जिसमें व्यापारियों के आवासों के अलावा मुख्य डाकघर, कार्यालय, उच्च न्यायालय, प्रशासनिक कार्यालय, रेल कार्यालय, गिरिजाघर, बैंक स्थित थे। यूरोपीय लोग इसी के नजदीक निवासी करते थे। 6. यूरोपीय बस्ती देशी बस्ती से पृथक सुनियोजित रूप में सुदृढ़ भवनों एवं चौड़ी सड़कों से युक्त थी जिसमें क्लब, गिरिजाघर, रेस कोर्स, क्रीड़ा स्थल, पानी एवं कब्रगाह की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। 7. यूरोप में बिजली, भूमिगत सीवेज, जल शोधन आदि की सुविधाओं के शुरू होने से इनका प्रयोग यूरोपीय बस्ती में भी हुआ जबकि देशी बस्ती में केवल सम्पन्न वर्ग की ही इन सुविधाओं तक पहुँच थी। 8. यूरोपीय एवं देश बस्तियों के मध्य ऐंग्लो इंडियन की कालोनी स्थित थी, जो इसाई थे परन्तु मूल निवासियों में शादी किए थे। ये न तो यूरोपीय एवं न ही दक्षिणी एशियाई लोगों के भाग माने जाते थे, 9. उपनिवेशिक नगर में वृद्धि के साथ जमीन की कमी होने लगी जिससे सम्पन्न देशी लोग एवं गोरे पुरानी बस्ती से उपनगर की ओर प्रसरण करने लगे। इसे नगर सुधारात्मक संघ का विशेष सहयोग रहा। 10. गोरों के बसाव के कारण प्रारंभ से ही नगर केन्द्र में घनत्व कम था क्योंकि वे बड़े मकानों में रहते थे। बाद में इस क्षेत्र पर CBD के विस्तार से घनत्व में और भी कमी आई। इसके विपरीत देशी बस्ती वाले भागों में जनसंख्या घनत्व अधिक था। इस प्रकार इन उपनिवेशिक नगरों के केन्द्र में घनत्व कम, तदुपरान्त अधिक एवं नगर के किनारे के भागों में घटता हुआ पाया जाता था।

9.5.3 औद्योगिक नगर– औद्योगिक नगर उस औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम हैं जिसकी शुरूआत ब्रिटेन से मानी जाती एवं जिसका विस्तार अट्ठारहवीं सदी के अंत और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में हुआ। इनमें औद्योगिक स्थल नगर के क्रोड क्षेत्र अथवा बन्दरगाह एवं रेलवे स्टेशन के नजदीक होते थे। परिणामस्वरूप जनसंख्या का घनत्व अधिक होता था। इनमें गरीब कामगर अनियोजित एवं अस्वास्थ्यकर बस्तियों में और सम्पन्न व्यापारी, उद्योगपति एवं व्यवसायी सुख–सुविधाओं के परिपूर्ण बड़े–बड़े घरों में रहते थे। इस प्रकार इन नगरों में आय की असमानता थी। जापान में औद्योगिक क्रान्ति के शुरू हो जाने के कारण वहाँ के नगरों में इसी प्रकार की विशेषता दिखाई पड़ती थी। एशिया के अन्य चार नगरों–सियोल, हांगकांग, सिंगापुर एवं टाइपेई – की संरचना पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इन औद्योगिक नगरों में बिजली, भूमिगत सीवर, रेल, बस, कार, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, बैंक जैसे नवाचारों की सबसे पहले शुरूआत हुई। बर्गेस (1925), हायट (1939), हैरिस एवं उलमैन (1945) ने इन औद्योगिक नगरों की आंतरिक संरचना के अध्ययन हेतु कई मॉडल प्रस्तुत किए हैं।

9.5.4. समाजवादी नगर– सन् 1917 ई0 में रूसी क्रान्ति के साथ विश्व में एक नवीन राजनीतिक व्यवस्था की शुरूआत मानी जाती है। जिसका प्रभाव नगर की आन्तरिक संरचना पर भी पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप, चीन, उत्तरी कोरिया, वियतनाम, लाओस और क्यूबा साम्यवादी प्रभाव में आ गये। इन देशों में समाजवादी विचारधारा के आधार पर नगरीय नियोजन को प्रारम्भ किया गया। जिसके कारण के केन्द्र में खुदरा व्यापार एवं व्यापार प्रबन्धन का प्रभाव कम होने लगा। इस क्षेत्र को एक नये केन्द्रीय सांस्कृतिक क्षेत्र के नाम से जाना गया क्योंकि सभी लोगों को आवासीय व्यवस्थां उपलब्ध कराना था अतः नगर केन्द्र से ही बाहर की ओर फैले तथा ऊँचे–ऊँचे आपार्टमेंट बनाये जाने लगे। परन्तु चीन में नगर –केन्द्र की मौलिक संरचना वैसे की वैसी। यूरोप में भी नगर केन्द्र में प्रशासनिक कार्यों को महत्वपूर्ण माना गया एवं यहाँ की पुरानी इमारतों में प्रमुख सुविधाओं में सुधार कर इनका जीर्णोद्वार कराया गया। चीन की आपेक्षा पूर्वी यूरोप के इन सभी नगरों की अर्थव्यवस्था उच्च कोटि और आवासीय सुविधायें बहुत अच्छी थी परन्तु पश्चिम यूरोप के पश्चात औद्योगिक नगरों की समृद्धि की आपेक्षा ये काफी पीछे थे।

9.5.5. नगर विकास के शट्मार्ग– नगरीय क्रियाओं पर आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कारकों का

प्रभाव दिखाई पड़ता है जिससे नगर के बसाव प्रतिरूप एवं संरचना में अमूल चूल परिवर्तन होता रहा है। इसलिए यहाँ पर संबंधित नगर विकास के शट्मार्गो का जिक्र किया जा रहा हैः–द 1. पाश्चात् विकास मार्ग 2. परा स्वातंत्र्य असाम्यावादी 3. परा स्वातंत्र्य साम्यवादी मार्ग 4. पूर्व यूरोपीय मार्ग 5. तेल–सम्पन्न मध्य पूर्व मार्ग 6. परास्वातंत्र्य उच्च विकास मार्ग

9.6. नगरीय संरचना के सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों को नगरीय विकास के सिद्धान्त अथवा नगरीय भूमि उपयोग सिद्धान्त भी कहा जाता है। ये किसी आदर्श नगर के आन्तरिक विन्यास का सामान्यीकृत रूप प्रस्तुत करते हैं। दूसरे शब्दों में इनके द्वारा नगर के विभिन्न खण्डों की एक–दूसरे के संदर्भ में स्थिति की जानकारी मिलती है जिसमें भूमि के मूल्य आदि कारकों का स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है। इससे नगर की प्रादेशिक संरचना का बोध होता है, जो परस्पर आसन्ननगरीय प्रदेशों या पेटियों से बनी होती है। यद्यपि प्रत्येक नगर की अनूठी संरचना होती है, परन्तु विभिन्न नगरों के अध्ययन से उनमें सामान्यीकृत मेखलाओं की पहचान की जा सकती है जैसे, व्यापारिक क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, रिहाइशी क्षेत्र इत्यादि। यहाँ नगर की संरचना से सम्बन्धित तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया जा रहा है।

9.6.1. संकेन्द्रीय मेखला सिद्धान्त– इसका प्रतिपादन अमेरिकी समाजशास्त्री बर्गेस ने 1923 (Proceedings of the American Sociological Scoiety में किया जिसके विस्तृत विवरण उनके द्वारा लिखे गये "The Growth of the City, (1925) एवं "Urban Areas' (1929) नामक लेखों में प्राप्त किये गये। यह सिद्धान्त उनके अमेरिका के शिकागो नगर के अध्ययन पर केन्द्रित था। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी नगर का केन्द्र से बाहर की ओर फैलाव अरीय रूप में 5 संकेन्द्रीय वलयों के रूप में पाया जाता है। नगर के विकास के साथ–साथ ये पेटियाँ बाहर की ओर खिसकती जाती हैं। इस प्रकार केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र द्वितीय मेखला के क्षेत्र पर, द्वितीय तीसरी पर और पंचम नगर के समीप के ग्रामीण क्षेत्रों पर अतिक्रमण करती जाती है। बर्गेस के अनुसार प्रत्येक पेटी में एक विशिष्ट प्रकार का भूमि उपयोग पाया जाता है। इन पेटियों का विवरण निम्नवत है :–

1. **प्रथम पेटी–केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र**– यह पेटी नगर के केन्द्र या मध्य में स्थित होती है, जिसमें व्यापारिक क्रियाओं, यातायात आदि का सर्वाधिक घनत्व पाया जाता है। दुकानें, व्यापारिक प्रतिष्ठान, कार्यालय, बैंक थियेटर, होटल आदि इसी पेटी में स्थित होते हैं। जो नगर जितना ही बड़ा होता है उसका केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र भी उतना ही विस्तृत होता है। इस भाग में भूमि का मूल्य सर्वाधिक होता है तथा स्थान के अभाव में यहाँ बहुमंजिली इमारतों की प्रधानता पाई जाती है। सड़कों और यातायात मार्गों के अभिसरण के कारण दिन में इस क्षेत्र में सर्वाधिक भीड़–भाड़, क्रय–विक्रय एवं कोलाहल देखा जाता है, परन्तु रात्रि के समय यह क्षेत्र शान्त एवं निर्जन सा दिखलाई पड़ता है। केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र को शिकागो में 'Loop' न्यूयार्क में 'Uptown and down town' तथा पिट्सवर्ग में 'Golden temple' कहते हैं। बर्गेस ने इसके दो उप भाग किये हैः– (अ) सबसे आन्तरिक भाग में स्थित फुटकर व्यापार क्षेत्र एवं (ब) थोक व्यापार क्षेत्र
2. **द्वितीय पेटी–संक्रमण क्षेत्र**– यह केन्द्रीय व्यापार भाग के चतुर्दिक स्थित आवासीय ह्रास का क्षेत्र होता है, जिसमें हल्के उद्योगों एवं सी.बी.डी. के व्यापारिक प्रतिष्ठानों का अतिक्रमण का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस भाग में मकान छोटे–छोटे कमरों वाले एवं टूटे तथा फूटे अर्थात जीर्णशीर्ण अवस्था में पाये जाते हैं। नगर की मलिन बस्तियाँ (Slums) इसी भाग में स्थित होती हैं जिससे यह क्षेत्र निर्धनता, अवक्रमण, अपराध एवं वेश्यावृत्ति आदि से प्रभावित होता है। नगर के आस पास के ग्रामीण क्षेत्रों के लोग सबसे पहले इसी भाग में रहना पसन्द करते हैं।

3. **तृतीय पेटी–स्वतंत्र कर्मियों का आवासीय क्षेत्र–** इस पेटी में संक्रमण पेटी के चतुर्दिक नगर के उद्योगों/कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों का आवासीय क्षेत्र मिलता है। यहाँ के मकान मुख्यतः पुराने एवं दो मजिले होते हें, जिसमें नीचे के तल में मकान मालिक और ऊपर किरायेदार रहते हैं। यहाँ मुख्यतः द्वितीय पेटी में रहने वाले लोगों की दूसरी पीढ़ी के अधिकांश लोगों की प्रधानता पाई जाती है।

4. **चतुर्थ पेटी**– श्रेष्ठतर आवासी क्षेत्र–इस भाग में एक परिवार वाले तथा सुदृढ़ किस्म के आवास मिलते हैं, जिसमें मुख्यतः मध्यम वर्गीय लोग रहा करते हैं। इनमें लघु व्यापारिक प्रतिष्ठानों के मालिक, उद्यमी, कार्यालयों एवं दुकानों में कार्य करने वाले लोगों को सम्मिलित हैं। यहाँ के मकान, खुले आवासीय परिसर में होते हैं, जिनमें कहीं आवासीय होटल आदि भी पाये जाते हैं।

5. **पंचम पेटी–अभिगमक क्षेत्र–** यह नगर का सबसे बर्हिवती वाला क्षेत्र होता है जिसे नगरीय उपान्त भी कहा जाता है। यह नगर के सतत् निर्माण क्षेत्र से स्थान, हरित मेखला आदि द्वारा अलग किया जाता है। इसमें नगर के केन्द्रीय भाग में व्यापार क्षेत्र आदि भागों में कार्य करने वाले लोग शॉाम की लौटकर आते हैं रात्रि विश्राम करते हैं। इसीलिए इसे शॉायनागार नगर भी कहते हैं। इसका सर्वाधिक विस्तार परिवहन मार्गो के सहारे देखा जाता है। यहाँ उच्च श्रेणी के आवासीय मकान भी मिलते हैं। यह नगर और ग्राम का मिलन क्षेत्र हेाता है जिसके सहारे नगर का प्रसरण होता रहता है।

आलोचना– बर्गेस के सिद्धान्त को तीव्र आलोचना भी हुई हैं। इसके एक प्रमुख आलोचक डैवी हैं जिन्होंने न्यू हैवेन (New Haven) के भूमि उपयोग के अध्ययन के दौरान इस सिद्धान्त को पूर्णतः प्रतिकूल पाया है। उनके अनुसार नगरों में सामान्यतया भूमि उपयोग प्रतिरूप देखे जाते हैं, जो बर्गेस के सिद्धान्त से नहीं मेल खाते है– (क) केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (C.B.D.) अनियमित आकार का प्रायः गोलाकार न होकर वर्गाकार या आयताकार रूप में अधिक पाया जाता है। (ख) व्यापारिक भूमि उपयोग नगर केन्द्र (CBD) से बाहर की ओर अरीय सड़कों के किनारे विस्तृत पाया जाता है जिसके उपकेन्द्र भी बन जाते हैं। (ग) उद्योग धन्धों की स्थिति यातायात मार्गो के सहारे पाई जाती है। (घ) औद्योगिक एवं यातायात क्षेत्रों के निकट निम्न श्रेणी के आवास पाये जाते हैं। (ड़) उच्च एवं मध्यम श्रेणी के आवास नगर के किसी भी भाग में पाये जा सकते हैं। इस प्रकार वाल्टर फायरे के अनुसार किसी नगर में आय वर्गो का वितरण, जो भूमि की कीमत द्वारा जाना जा सकता है, एक संकेन्द्रीय वलय क्षेत्र में एक समान नहीं मिलता है। प्रसिद्ध नगरीय भूगोलवेत्ता आर0ई0 डिकिन्सन ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए मत व्यक्त किया है कि पेरिस आदि नगरों में वृत्ताकार प्रतिरूप के बजाय तारा प्रतिरूप अधिक प्रभावशाली देखा जाता है। डिब्लिज महोदय ने वास्तविक परिस्थितियों से तुलना करने पर बर्गेस के सिद्धान्त में तीन कमियों का उल्लेख किया है। (अ) इसमें भारी उद्योगों की स्थिति का जिक्र नहीं किया गया हैं, जो वलय के रूप में न पाये जाकर परिवहन मार्गो के सहारे संकेन्द्रित होते हैं। (ब) कातिपय नगरीय सुविधाओं–रेल–सड़क वार्ड, बन्दरगाह सुविधायें, भारी उद्योगों एवं यहाँ तक कि तीव्र सांस्कृतिक विचारों से प्रभावित कुछ आवासीय क्षेत्रों में गतिशीलता नहीं देखी जाती हैं, तथा (स) परिवहन मार्ग नगरों के संकेन्द्रीय संरचना में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत क्विन हैगेट प्रेड आदि विद्वानों ने बर्गेस के मॉडल को उपयुक्त माना है।

9.6.2. खण्ड सिद्धान्त :– इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकी विद्वान होमर हायट ने 1939 में 142 अमेरिकी नगरों की संरचना के अध्ययन के आधार पर किया यह सिद्धान्त हर्ड (R.M. Hurd) के अरीय वृद्धि (Axial Growth) की विचार धारा पर आधारित है। हायट के अनुसार नगरीय भूमि उपयोग का प्रतिरूप मुख्यतः नगर केन्द्र से विकसित यातायात मार्गों के जाल पर निर्भर करता है जिससे नगरीय

भूमि और किराया के खण्डीय प्रतिरूप का निर्माण होता है। इसी के कारण नगर की आकृति तारानुमा (Star shaped) बन जाती है। इस सिद्धान्त में समूचे नगर को एक वृत्त के रूप में मान लिया जाता है तथा उसके विभिन्न क्षेत्रों को खण्ड के नाम से सम्बोधित किया गया है। हायट के अनुसार समान प्रकार के भूमि उपयोग नगर–केन्द्र के नजदीक जन्म लेते हैं जो नगर के विकास के साथ–साथ बाह्य सीमा की ओर उसी खण्ड की दिशा में प्रसारित होते जाते हैं। यह विकास आवागमन के मार्गो के सहारे नगर के केन्द्र से बाहर स्फान के रूप में होता है। हायट के अनुसार यदि नगर का कोई खण्ड निम्न किराये के आवासीय क्षेत्र के रूप में विकसित होता है तो नगरीय वृद्धि के दौरान खण्ड के विस्तार के साथ–साथ यह विशेषता काफी दूर तक फैलती जाती है। इसी प्रकार यदि एक उच्च किराये के क्षेत्र की स्थिति नगर के दूसरे खण्ड में पाई जाती हैं, तो उसका विस्तार या विकास भी उसी खण्ड में होगा तथा नये बेहतर आवासीय क्षेत्र बाहरी भाग में विकसित होने लगेंगे। इस तरह ये क्षेत्र स्थिर न होकर परिवर्तनशील होते रहते हैं, जिससे उच्च श्रेणी के आवासीय क्षेत्र अपने स्वरूप को निरंतर सुधार करते हैं। इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र नदी घाटियों में जलमार्गो या रेलमार्गों के सहारे पनपने लगते हैं। हायट का विचार है कि अमेरिकी नगर परिवहन मार्ग के सहारे विभिन्न दिशाओं मे फैल कर धीरे–धीरे एक अष्टभुज का रूप धारण कर लेते हैं। हायट का सिद्धान्त मुख्यतः आवासीय भूमि–उपयोगों की ही व्याख्या करता है यद्यपि इसमें यातायात के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। इसके अनुसार नगर के आवासीय क्षेत्र का विकास तीन तरह से– लम्बवत्, खाली क्षेत्रों के अधिवासन एवं आपकेन्द्रीय विस्तार–सम्पन्न होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार नगर में पांच प्रकार के खण्ड मिलते हैं। 1. केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र 2. थोक हल्के वस्तु निर्माण उद्योग 3. निम्न वर्गीय आवास–क्षेत्र 4. मध्य वर्गीय आवास–क्षेत्र 5. उच्च वर्गीय आवास–क्षेत्र

आलोचना :– बर्गेस की आपेक्षा हायट के सिद्धान्त को आलोचनाओं का कम सामना करना पड़ा। ऐसा सम्भवतः इसलिए कि हायट ने आपने सिद्धान्त में आवासीय क्षेत्र का अधिक अच्छा विवरण प्रस्तुत किया है तथा इसमें अधिक व्यावहारिक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। इस सिद्धान्त में नगरीय विकास में यातायात मार्गो के महत्व पर अधिक बल दिया गया है। हायट के आलोचकों में फायरे प्रमुख है जिन्होंने बोस्टन नगर के भूमि उपयोग के अध्ययन के आधार पर कुछ मूलभूत आपत्तियाँ उठाई है। इनके अनुसार खण्ड सिद्धान्त में खण्डों का प्रतिरूप धरातल, जलाग्रीय स्थिति आदि कारकों से बहुत अधिक प्रभावित होता है। इसी प्रकार इस सिद्धान्त में भूमि उपयोग के निर्धारण में सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारकों को उचित महत्व नहीं दिया गया है।

9.6.3. बहु–नाभिक सिद्धान्तः– इस सिद्धान्त के विकास का श्रेय हैरिस एवं उलमैन (1945) को जाता है। इसके अनुसार किसी बड़े नगर में भूमि उपयोग प्रतिरूप का विकास एकल केन्द्र के बजाय कई अलग–अलग नाभिकों या केन्द्रो के चारों ओर होता है। इन नाभिकों के चतुर्दिक भूमि उपयोगों के सकेन्द्रण से नगर की कोशिकीय संरचना का विकास होता है जिस पर संस्थिति एवं नगर की ऐतिहासिक स्वरूप का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। नगर में पृथक नाभिकों की उत्पत्ति एवं विकास में निम्नलिखित चार कारकों का उत्तरदायी होता है। 1. कुछ कार्यो हेतु विशिष्ट सुविधाओं की आवश्यकता पड़ती है, जैसे खुदरा बिक्री के क्षेत्र हेतु यातायात साधनों की अभिगम्यता, बंदरगाह के लिए उपयुक्त सागर तट तथा विनिर्माण उद्योगों के लिए परिवहन की सुविधा एवं भूमि का विस्तृत क्षेत्र आदि। 2. कुछ कार्यो के नगर में सम्पन्न होने से सामान्य सुविधाये स्वतः एकत्रित होने लगती हैं जैसे, औद्योगिक नगरों से जुड़े खुदरा बाजार क्षेत्र वित्तीय संस्थान, यातायात एवं संचार सुविधाायें। 3. कुछ असमान क्रियायें एक–दूसरे के प्रतिरोध में होती हैं जैसे, औद्योगिक क्षेत्र एवं उच्च श्रेणी के रिहायसीय क्षेत्र एक साथ नहीं मिलते हैं। इसी तरह खुदरा बिक्री क्षेत्र में आवागमन एवं छोटी गाड़ियों का भारी जमघट पाया जाता है, जब कि थोक व्यापार वाले क्षेत्र में रेल–मार्ग–सड़क मार्ग सुविधाओं

और सामानों को लादने और उतारने का कार्य किये जाते हैं। 4. नगर में कुछ कार्य उपयुक्त स्थानों का चुनाव नहीं हो पाता क्योंकि चयन ऊंचे किराया दर के कारण सम्भव नहीं कर पाते हैं जैसे, थोक व्यापार एवं माल संग्रहण के कार्य (जिनके लिए अधिक जगह की जरूरत होती है) अथवा निम्न आय वर्ग के आवासीय क्षेत्र।

1. **केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (C.B.D.)**– यह क्षेत्र नगर के केन्द्र अर्थात मध्य में स्थित होता है तथा यातायात एवं परिवहन सुविधाओं से भलीभॉति अभिगम्य होता है। विषम वृद्धि के कारण अधिकांश बड़े क्षेत्र अमेरिकी नगरों में इसकी स्थिति परिधीय जैसी हो गयी है। झील एवं नदी किनारे स्थित नगरों में ऐसी स्थिति अक्सर दिखाई पड़ती है। शिकागों, सेण्टलुइस और साल्ट लेक सिटी इसके उदाहरण है। इस क्षेत्र में भूमि का मूल्य सर्वाधिक होता है तथा यह फुटकर व्यापार का केन्द्र होता है। छोटे नगरों में वित्तीय संस्थायें और कार्यालय पाये जाते है जहाँ फुटकर व्यापार की दुकानें आपस में सटे होते है, परन्तु बड़े नगरों के सहारे मोटर गाड़ियाँ की कतार सी बन जाती है।

2. **थोक व्यापर और हल्का विर्निमाण उद्योग क्षेत्र :–** यह भाग भी नगर के केन्द्र के निकट होता है जहाँ रेल, सड़क एवं ट्रक मार्ग एक दूसरे के नज़दीक होते है। इसके उद्भव में यातायात अभिगम्यता, बड़े–बड़े मकानों के लिए उपर्युक्त स्थान की उपलब्धता, बाजार एवं श्रम की नजदीकता आदि के कारणों का महत्वपूर्ण प्रभाव है।

3. **भारी उद्योग क्षेत्र :–** यह क्षेत्र नगर के बाहर की सीमा पर स्थित होता है। भारी उद्योगों को अधिक भूमि तथा यातायात–परिवहन की मुख्य आवश्यकता होती है, जो नगर के बाहरी भाग में अच्छी तरह से उपलब्ध है। इसी वजह से इनकी अवस्थिति नगर के बाहरी सीमावर्ती भागों में अधिक दिखाई पड़ती है जैसे अमेरिका के शिकागो नगर के दक्षिण–पश्चिमी किनारे पर 5 किलोमीटर की मेखला में 100 से अधिक उद्योगों का केन्द्रीकरण का रूप देखा जाता है।

4. **आवासीय क्षेत्र :–** सामान्यता उच्च श्रेणी के रिहायशीय आवासीय क्षेत्र नगर के उचित जल–प्रबंधन वं प्रदूषण रहित भागों में केन्द्र के समीप रेलमार्गो और कारखानों के निकट ऐसे क्षेत्र पाये जाते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग मध्य में आवासीय क्षेत्रों के रूप में निवास करते है।

5. **लघु नाभिक :–** इसके अन्तर्गत सांस्कृतिक केन्द्र, पार्क, बाहरी, व्यापार केन्द्र, तथा छोटे औद्योगिक केन्द्र, विश्वविद्यालय आदि को सम्मिलित करते है जो अलग नाभिक के रूप में क्रिया करते हैं जैसे पार्क एवं मनोरंजनन के क्षेत्र उच्च स्तरीय आवासीय विकास को प्रेरित करते हैं। वाशिंगटन का रॉक क्रीक पार्क एवं लन्दन का हाइड पार्क इसके उपयुक्त उदाहरण हैं। इसके विपरीत छोटे–छोटे संस्थान एवं बेकरी ऐसे हल्के निर्माण उद्योग नाभिक का रूप नहीं पाते जाते हैं।

6. **उपनगर एवं अनुषंगी नगर :–** उपनगर और अनुषंगी नगर भी उच्च श्रेणी के आवासीय क्षेत्रों हेतु केन्द्रक के रूप में कार्य करते हें। ऐसे उपनगर अधिकांश बड़े अकारकीय रूप के दिखाई पड़ते हैं। ऐसे उपनगर अधिकांश अमेरिकी के नगरों में दिखाई पड़ते हैं। अनुषंगी नगर उपनगरों से अलग दिखाई पड़ते हैं जो केन्द्रीय नगर से दूर स्थित होते हें तथा केन्द्रीय नगर से प्रतिदिन आवागमन बहुत कम हो पाता है। आर्थिक स्वरूप से ये केन्द्रीय नगर पर आश्रित रहते हैं। उदाहरणार्थ, गैरी को शिकागों का उपनगर कहा जाता है, जबकि एलगिन और जोलियअट को अनुषंगी नगर के रूप में पाया जाता है।

आलोचना– अन्य सिद्धान्तों की ही भांति बहु नाभिक सिद्धान्त भी आधुनिक नगर की आन्तरिक

संरचना की व्याख्या को पूर्ण रूप सही नहीं प्रतिपादित कर सका है। इसे बहुत साधारण तरीके से प्रयास किया है जो आज के बृहन्नगरों की संरचना की वास्तविकता से मेल नही खाता है। वर्तमान समय में तीव्र आवागमन और संचार के साधनों, कच्चा प्रौद्योगिकी, बृहत नगरों का फैलाव, नगरीय नियोजन, नगरीय प्रदूषण आदि का भी नगरीय भूमि उपयोग पर प्रभाव डाला है जिसका समुचित स्पष्टीकरण इन सिद्धान्तों में नहीं मिलता है। गैरीसन महोदय के अनुसार नगरीय विकास के पूर्व वर्णित प्रत्येक मॉडल में दो मॉडलों की विशेषताये कुछ–न–कुछ अंशों मे अवश्य दखेने को मिलती है। इसी आधार पर उन्होंने समेकित वृद्धि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया हैं।

नगरीय संरचना के वर्तमान मॉडल– नगरीय संचरना के वर्तमान मॉडलों में ब्रिटिश अर्थशास्त्री कोलिन क्लार्क का योगदान महत्पवूर्ण है इनके द्वारा प्रतिपादित ढलान विश्लेषण मॉडल विशेष रूप से उल्लेखनीय माना जाता है। इसके आधार पर नगर के केन्द्र से उपान्त की तरफ जनसंख्या घनत्व, आर्थिक एवं सामाजिक विशेषताओं में सामान्यतः ह्रास अथवा वृद्धि के परिणाम दिखाई पड़ते हैं। उतार–चढ़ाव के इस परिवर्तन की मात्रा को ढलान (Gradient) कहते हैं। इसी प्रकार मॉडल में पिट्सवर्ग के अध्ययन के आधार पर नगरीय विकास में भूगोल की तीन मुख्य संकल्पनाओं का सहारा लिया गया है। 1.नगरों के भीतर जनसंख्या घनत्व में ढलान की संकल्पना जिसके आधार पर नगर केन्द्र से दूर हटने पर आवासीय घनत्व में गिरावट आती जाती है। 2.रैली का फुटकर व्यापार हेतु आकर्षण शक्ति का नियम (Law of Retail Gravkitation), जिसके अनुसार नगर की सेवाओं के रोजगार का वितरण आवासीय जनसंख्या के अनुरूप होता है। 3. नगरों की आधारभूत–अनाधारभूत रोजगार की संकल्पना।

9.7. नगरीय भूमि उपयोग

नगरीय भूमि उपयोग में नगर भूमि के कार्यो के आधार पर विभाजित किया जाता है। इसमें नगर की भूमि का चौड़ाई लम्बवत् विस्तार का अध्ययन करते है। यह जानने का प्रयास होता है कि नगर की भूमि का कौन–से भाग पर और किस तरह कार्यो के लिए उपयोग किया जाता है। व्यावहारिक तौर पर यह कार्यात्मक आकारिकी का पर्यावाची है, जिसमें तीन प्रकार के अध्ययन पर बल दिया जाता है–1.नगरीय भूमि का कितना भाग किन–किन कार्यो में उपयोग किया जाता है। 2. उस पर स्थित इमारतें किन–किन कार्यो के उपयोग में लायी जाती है। तथा 3.नगर के भीतर भिन्न–भिन्न कार्यो में कितने व्यक्ति लगे हैं अर्थात् नगर में रहने वाले लोगों की व्यावसायिक संरचना किस प्रकार की है। इनकी निम्न मेंखला है –

1. आन्तरिक या केन्द्रीय मेखला– यह नगर का नाभिक क्षेत्र है, जिसे केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। यह सर्वाधिक नगरीकृत वाला क्षेत्र है, जिसमें खुले स्थान वस्तु न्यून स्तर पर पायी जाती है। यहाँ के क्षेत्र पर व्यापारिक क्रियाओं और परिवहन मार्गो का अधिकतम दबाव देखा जाता है, जिससे दिन में इस क्षेत्र मे अत्यधिक आवागमन भीड़भाड़ और कोलाहल पूर्ण वाला भाग बना रहता है तथा रात में दुकानों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों के बन्द होने पर शान्त क्षेत्र में बदल जाता है। यहाँ टेढ़ी मेढ़ी, तंग और लम्बी गलियाँ और बहुमंजिली इमारतें पायी जाती हैं। इस क्षेत्र में व्यापार का वाणिज्य के कार्य की वजह से महत्वपूर्ण भूमि उपयोग हैं, जिनका सर्वाधिक घनत्व नगर केन्द्र और उनकी मुख्य सड़कों के किनारे दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस पेटी में आवासीय भूमि उपयोग अभिजात और निम्न वर्गीय आवासों के रूप में भी दिखाई देता है।

2. मध्यवर्ती मेखला– यह केन्द्रीय मेखला के चारों ओर स्थित अन्तर्वती क्षेत्र का उदाहरण है। जिसका विकास पिछली दो शताब्दियों के दौरान हुआ है। इस क्षेत्र का मुख्य भूमि उपयोग आवासीय के रूप

में होता है। जिसमें निम्न आय वर्ग ओर मलिन बस्तियों की अधिकता होती है। इसमें खुले भागों की कमी पाई जाती है। इसे आवासीय ह्रास अथवा धूसर क्षेत्र के नाम से भी जानते है। आवासों के अतिरिक्त इसमें कहीं–कहीं व्यापारिक, छोटे और पुराने औद्योगिक प्रतिष्ठान भी देखे जाते हैं।

3. बाह्य मेखला– यह नगर के बाहरी सीमा पर स्थित होता हैं जिसके अन्तर्गत चौड़ी सड़कों, पार्को, बगीचों आदि के रूप में पर्याप्त खुला क्षेत्र पाया जाता है। मुख्य रूप से भूमि उपयोग भी आवासीय के रूप में होता है परन्तु भारी उद्योगों, छोटे व्यापार केन्द्रों, रेल–रोड आदि भी प्राप्त होते हैं। यहाँ पर एक मंजिल और एक परिवार वाले मकानों की अधिकता पाई जाती है। मकानों का घनत्व काफी कम क्षेत्रों मे मिलते हैं। भारतीय नगरों की अधिकाश प्रशासकीय ईकाइयाँ (सिविल लाइन, छावनी, जिला मुख्यलय, सिविल कोर्ट), शैक्षणिक संस्थान (विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, कालेज, शोध संस्थान इत्यादि), रेलवे स्टेशन एवं कालोनी, औद्योगिक प्रतिष्ठान आदि इसी क्षेत्र में स्थित देखे जाते हैं। यह क्षेत्र नगर का सबसे नया बसा क्षेत्र होता है।

4. उपनगरीय मेखला– इसकी स्थिति नगर की प्रशासकीय सीमा से बहार तृतीय मेखला के विस्तार के रूप होती है। यह क्रम में इसका विकास नही होता। यह विखण्डित रूप में मुख्य सड़कों के किनारे अधिक विस्तृत भागो में पाई जाती है। यहाँ आवासीय, औद्योगिक, आदि नगरीय भूमि उपयोगों का विकास कही–कही पर ग्रामीण भूमि उपयोग के स्पष्ट संकेत दिखाई पड़ते हैं। इस समेखला की बाहरी समीप नगर के सुदूर भौगोलिक विस्तार को प्रकट करती है, जिसके आगे ग्रामीण भूमि उपयोग का प्रभाव दिखाई देता है। इन सभी चारों पेटियों से नगर की संगठित समाजिक–आर्थिक इकाई का निर्माण से विकास होता है, जिसे डिकिन्सन ने नगरीय भूखण्ड के नाम से बताया है।

9.8. नगरीय भूमि के प्रकार

डिकिन्सन ने भूमि उपयोग विशेषताओं को आधार बनाया है। संक्षेप में प्रकार्यों के आधार पर नगर में निम्नलिखित मेखलायें पाई जाती हैं – 1. व्यापारिक, 2. आवासीय, 3. प्रशासनिक, 4. औद्योगिक, 5. धार्मिक 6. शैक्षिक , 7. मनोरंजनन, 8. सार्वजनिक 9. चिकित्सीय, 10. कृषि क्षेत्र इत्यादि

1. व्यापारिक क्षेत्र– यह व्यापारिक क्षेत्र आवासीय क्षेत्र के निकट पाया जाता है लेकिन कभी–कभी उसके बीचों बीच में भी स्थित होता है। अधिकांशतः यह नगर के मध्य भाग में ही पाया जाता है, जहाँ थोक व्यापार के अतिरिक्त फुटकर व्यापार के क्षेत्र मिले जुले रूप में पाये जाते हैं। यह नगर का सबसे महत्वपूर्ण भूमि उपयोग वाला क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक आवागमन, परिवहन मार्गों की अधिकता और ऊँची–ऊँची इमारतें बनी होती हैं। पश्चिमी देशों में 'व्यापार' को व्यापक अर्थो में प्रयोग किया गया है जिसमें लेन–देन की सभी क्रियाओं एवं सेंवाओं को मिला लिया जाता है। इस प्रकार थोक, फुटकर एवं सरकारी व्यापार, वित, बीमा और अचल सम्पत्ति, व्यावसायिक, व्यक्तिगत तथा व्यापारिक सेंवायें आदि सभी कुछ इसकी परिधि में समाहित हो जाते हैं। व्यापार के अन्तर्गत नगरीय क्षेत्र का यद्यपि 5 प्रतिशत से कम क्षेत्र लगा होता है, परन्तु इससे 40 प्रतिशत या अधिक नगरीय जनसंख्या लालन–पालन तथा भरण–पोषण होता है। व्यापारिक कार्यों के स्थानीकरण में यातायात मार्गों की अभिगम्यता का विशेष योगदान होता है। इन कार्यो में एकत्रीकरण की प्रवृति पायी जाती है। प्रारम्भिक अवस्था में व्यापार क्षेत्र की स्थिति नगर के बीचों–बीच भाग में स्थित होती थी जिससे केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र का प्रादुर्भाव हेाता है, लेकिन बड़े नगरों में जैसी आवश्यकता होती है धीरे–धीरे कई व्यापार क्षेत्रों का जन्म होने लगता है। प्राउडफुट ने फिलाडेल्फिया के अध्ययन के आधार पर व्यापार क्षेत्र को निम्नलिखित पांच वर्गो में बाटा है। 1. केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र 2. बाह्यस्थ व्यापार केन्द्र 3. प्रधान व्यापार मार्ग 4. प्रतिवेशी व्यापार वींथिका एवं 5. एकाकी विक्रयागार गुच्छ । करोल ने भी

नगर के व्यापार क्षेत्र को चार प्रमुख भागों में बाटा है। 1. केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र 2. प्रादेशिक व्यापार क्षेत्र 3. प्रतिवेशी व्यापार जनपद 1. एवं 4. इसी प्रकार बेरी ने आकृति एवं प्रकार्यो के आधार पर इसे तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया है।

2. केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र– इसे नगर का हृदय क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। इसे केन्द्रीय यातायात क्षेत्र केन्द्रीय वाणिज्य क्षेत्र, केन्द्राभिमुख क्षेत्र, वाणिज्य–क्रोड, आदि नामों से जानते है। यह नगर का अत्यधिक भीड़–भाड़, का अधिक घनत्व ऊंची–ऊंची बहुमंजिली इतारतों और सर्वाधिक क्रय–विक्रय का केन्द्र होता है। यहाँ अधिकांशतः फुटकर बिक्री की दुकानें पायी जाती है। इस क्षेत्र में परिवहन के साधनों की सुलभता के कारण सर्वाधिक गमनागन का क्षेत्र होता है। इसकी स्थिति नगर के केन्द्रीय भाग में पाई जाती है। नगर के आकार और महत्व के आधार पर इसका केन्द्रीय भाग प्रभावित होता है। यहाँ जमीन अत्यधिक महॅगी पायी जाती है बाहर की तरफ भूमि के कीमतों में गिरावट दिखाई पड़ती है। यातायात परिवहन की वजह से, काफी दूर तक फैलता हुआ मिलता है। अर्थात् यह नगर का सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है जहाँ दिन में काफी भीड़–भाड़ परन्तु रात्रि में यह शांति सा हो जाता है। इसीलिए इसे नगर के 'मृत हृदय' के नाम से भी पुकारते हैं। केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र को भूमि उपयोग और व्यापार की तीव्रता के आधार पर इसे दो वर्गों में विभाजित करते हैः– **1. केन्द्रीय व्यापार** क्षेत्र का क्रोड भाग यह नगर का सबसे भीतर और सबसे अधिक भूमि मूल्य वाला केन्द्रीय क्षेत्र होता है जिसे ठोस क्रोड या व्यापारिक क्रोड के नाम से भी जाना जाता है। **2. सी0बी0डी0** के किनारे का भाग जो क्रोड के चारों तरफ मिश्रित भूमि उपयोग का क्षेत्र होता है। इसमें फुटकर व्यापार और कार्यालयों की प्रधानता पाई जाती है। इसे गौण क्षेत्र भी कहते है।

3. आवासीय क्षेत्र– प्रकार्यात्मक दृष्टि से व्यापारिक भूमि उपयोग के पश्चात आवासीय क्षेत्र नगर के दूसरा विशिष्ट स्थान माना जाता है। नगर के विकसित क्षेत्र का एक–तिहाई से भी अधिक भाग इसके अन्तर्गत सम्मिलित होता है। डॉ0 कुसुम दत्ता के एक अध्ययन के अनुसार 35 भारतीय नगरों के विकसित क्षेत्र का 47 प्रतिशत से भी अधिक भाग आवासीय क्षेत्र के रूप में पाया जाता है। उदाहरणार्थ, कालीकट का 75.2 प्रतिशत, कोलकाता का 53% , मुम्बई का 34% , कानपुर का 32%, जयपुर का 31% और दिल्ली का 20% विकसित क्षेत्र आवासीय है। इसी प्रकार फिलाडेल्फिया में यह प्रतिशत 52 और शिकागो में 32 पाया जाता है। समय के अनुसार आवासीय क्षेत्र की संरचना और विस्तार में परिवर्तन होता रहता है। आवासीय क्षेत्र लगभग सभी नगरों में पाया जाता है। नगर के अन्दर निवास करने वाले लोगों की आवासीय आवश्कताओं की पूर्ण करता है। आवासों के स्थानीकरण एवं चयन में नगरीय सुविधाओं, स्वयं आवास की विशेषताओं–किराया, क्रय कीमत आदि– तथा निवासियों की पसन्द एवं क्षमता आदि का प्रभाव देखा जाता है। नगर के दूसरे भाग में स्थित आवासीय क्षेत्र एवं उनकी विशेषतायें भिन्न–भिन्न प्रकार की पाई जाती हैं। जहाँ सी0बी0डी0 के पास निम्न आय वर्ग के गिरावट के आवासीय क्षेत्र स्थित हैं वहाँ नगरीय केन्द्र से दूर एवं बर्हिवर्ती भागों में उच्च आय वर्ग के अच्छे आवासों के क्षेत्र पाये जाते हैं। इसी तरह जहाँ नगर के कुछ लोग केन्द्रीय भाग के समीप रहना पसन्द करते हैं तो कुछ उद्योगों या रोजगार स्थालों के समीप तथा दूसरे प्रदूषण मुक्त उपनगरीय क्षेत्रों को आवास हेतु चुनाव करते हैं। इसी भाँति निम्न वर्ग, गरीब वर्ग के लोग नगर के उन क्षेत्रों में निवास करना चाहते हैं जहाँ उनका कार्य–क्षेत्र होता है तथा जहाँ उन्हें कम से कम किराया देना पड़े। इसके विपरीत धनी वर्ग के लोग खुले एवं प्रदूषण रहित क्षेत्र में रहना पसन्द करते हैं। इसके लिए कार्य–स्थल और आवास के बीच की दूरी का कोई मायने नहीं होता है। कई नगरों में कार्यस्थल के समीप मकानों का घनत्व इतना अधिक हो जाता है कि लोगों को मजबूरन दूरवर्ती भागों की ओर जाना पड़ता है। बड़े नगरों में तीव्र यातायात के साधनों के विकास के कारण बहुत से लोग नगर से 100 किमी0 से भी अधिक दूरी पर निवास करते हैं। मुम्बई, कोलकाता दिल्ली आदि

महानगरों में रोजना आने–जाने वाले ऐसे प्रवासियों की संख्या काफी अधिक पाई जाती है। नगर के प्राचीनतम आवासीय क्षेत्र नगर केन्द्र (C B D) के समीप पाये जाते हैं, जिनमें बहुपरिवारीय आवासों की अधिकता पाई जाती है। इसके विपरीत नये आवासीय क्षेत्र नगर के बाहरी भाग में यातायात मार्गों के सहारे विकसित होते हें, जिसमें एक परिवार के भवनों की प्रधानता मिलती है। प्रत्येक महत्वपूर्ण यातायात मार्ग आवासीय क्षेत्रों के विसरण के लिए केन्द्रक का कार्य करता है। आवासीय क्षेत्रों की स्थिति और विस्तार पर नगरीय विकास एवं प्रौद्योगिक प्रगति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, जिसके उसमें परिवर्तन दिखाई पड़ता है। एक अनुमान के अनुसार संयुक्त राज्य में लगभग 20% जनसंख्या प्रतिवर्ष अपना आवास बदल देती है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्तिगत परिवार आपने जीवन काल में औसतन आठ से नौ बार अपना आवास बदल देता है। **(अ) आन्तरिक आवासीय पेटी** :– इसमें नगरीय जनंसख्या और इमारतों का घनत्व सबसे अधिक मिलता है। यह पेटी नगर के सी0बी0डी0 के चारों ओर पाई जाती है जो बर्गेस के मॉडल की द्वितीय एवं तृतीय मेखलाओं के रूप में जाना जाता हैं। यह नगर का ह्रासोन्मुख क्षेत्र है जिसमें मलिन बस्तियाँ भी मिलती हैं। इस पेटी में अधिकतर निम्न आय वर्गों के समूह वाले लोग निवास करते हैं जिसम बहुपरिवारीय मकानों की प्रधानता पाई जाती है। (ब) **बाह्य आवासी पेटीः–** इस पेटी का विस्तार नगर के बाहर वाले भाग में मुख्य रूप से पाया जाता हैं, जिसमें एकल परिवार तथा सुख–सुविधा वाले मकानों की बहुतायत मिलते हैं। इस पेटी में जनसंख्या और मकानों का घनत्व निरंतर घटता जाता है। इस पेटी के आवासीय क्षेत्र कई भागों में विभक्त होते है। इसी प्रकार आय, सामाजिक–आर्थिक स्तर तथा सम्पन्नता के आधार पर भी आवासीय क्षेत्र को प्रमुख भागों में बॉट सकते हैः– 1. अभिजात वर्गीय आवास 2. उच्च–मध्य वर्गीय क्षेत्र 3. औसत मध्य वर्गीय आवास क्षेत्र 4. निम्न मध्य वर्गीय एवं निम्न आय वर्गीय आवास क्षेत्र

9.9. भारतीय नगरों की आकारिकी

भारतीय नगरों की आकारिकी के अध्ययन में स्पेट, ब्रश और स्मेल्स के प्रयास महत्वपूर्ण माना जाता हैं। ब्रश महोदय के मतानुसार आकारिकी की दृष्टि से भारतीय नगरों को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है – 1. देशीय विशेषताओं वाले नगर जिनका स्वरूप भारतीय है। उसका विस्तार उत्तर के मैदानीं भागों, मरुस्थलीय सीमावर्ती क्षेत्र ओर दक्कन में पाया जाता है जिन पर द0प0 एशिया की (इस्लामी) संस्कृति का प्रभाव देखा जाता है। इनमें गलियाँ पतली, टेढ़ी मेढ़ी और अनियमित पायी जाती है। 2. यूरोपीय पद्धति पर बसाये गये नगर। इनमें ब्रिटिश शासन की सैनिक छावनियों, सिविल लाइन्स, रेलवे कालोनी आदि को सम्मिलित करते हैं, जिनमें सीधी और चौड़ी सड़कों के किनारे बंगलानुमा मकान स्थित होते हैं। इनका विकास यूरोपीय लोगों ने बंदरगाहों या यूरोपीय उपनिवेशों के रूप में किया था। इनकी संख्या कम है। भारत में प्राचीन नगर या तो राजनीतिक केन्द्र–स्थल अथवा धार्मिक केन्द्र के रूप में विकसित हुए हैं। इनका निर्माण साधारणतया नदियों के तट के समीप पाया जाता था, जो सुरक्षा, जल–उपलब्ध एवं यातायात के प्रमुख साधन के रूप में प्रयुक्त होती थी। अधिकांश प्राचीन नगर चारों तरफ दीवालों की बाउण्ड्री होने के साथ नदी तट पर स्थित दुर्गों की छत्र–छाया में विकसित होते थे। इसलिये नगरों का प्रारम्भिक स्वरूप नदी तट के समीप पाया जाता था। नदी संगम पर बने नगरों की आकृति स्वरूप और भी भिन्न होती थी। इसी तरह नदी मोड़ के सहारे बसे नगर की आकृति अण्डाकार तथा पहाड़ी से घिरे नगरों की आकृति वृत्ताकार या अर्द्ध–वृत्ताकार के रूप में पायी जाती थी। दीवाल से घिरे नगर प्रायः चौकोर या वृत्ताकार होते थे। परन्तु उनके भीतरी भाग की सड़कें आदि सीधी हुआ करती थी। नगर का यह स्वरूप मध्य कालीन युग के पूर्व तक चलता रहा इसके बाद नगरों को नयी तरह से बसाने या विकसित करने का प्रयास किया जाने लगा। ब्रिटिश शासन काल में रेल परिवहन की शुरूआत से नगरों की आकृति एवं

स्वरूप में काफी बदलाव दिखाई पड़ा। रेलों के आगमन से नदियों का व्यापारिक महत्व घटने लगा नगर का प्रसार रेलवे स्टेशन की ओर होने लगा। कालान्तर में रेलवे स्टेशन के आस–पास सैनिक छावनी, पुलिस लाइन्स, सिविल लाइन्स आदि नये क्षेत्र विकसित हुए। इस प्रकार नगर का वर्तमान विकसित क्षेत्र दो भागों–प्राचीन एवं नवीन भागों में बँट गया। मोटर परिवहन और सड़क यातायात के विकास से नगरीय विकास में एक नई कड़ी जुड़ गई है। इस प्रसार के मुख्य सड़कों के सहारे होने के कारण नगर की आकृति तारानुमा हो जाती है। भारतीय नगरों की सामान्य कार्यात्मक संरचना एवं नगरीय भूमि उपयोग प्रतिरूप के आधार से ही पता चलता है कि अधिकांश नगरों में आवासीय एवं प्रकार्यो की किस तरह का अभाव पाया जाता है। इनमें व्यापारी, शिल्पकार, नौकरी में लगे लोग और मजदूर आदि अपने कार्यात्मक क्षेत्र जैसे कार्यालय एवं फैक्ट्री के नजदीक रहने का प्रयास करते हैं। बहुधा ऊपरी मंजिलों, पीछे के भागों या समीप के क्षेत्रों का उपयोग आवासीय कार्यों हेतु किया जाता है। भारत के नगरों के मध्यवर्ती भाग को चौक (Chowk) कहते हैं, जो नगर का प्रमुख केन्द्र होता है जिसमें बाजार क्षेत्र होता है। परन्तु इसकी विशेषतायें पश्चात् नगरों के केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (CBD) से भिन्न पाई जाती हैं। यहाँ फुटकर व्यापार क्षेत्र मुख्य सड़कों और गलियों के सहारे काफी दूर तक फैले होते हैं। इसकी व्यापारिक संरचना में खाद्यान्न, वस्त्र, आभूषण, बर्तन, लौह सामान, सब्जी तथा अन्य विशिष्ट वस्तुओं के छोटे–छोटे क्षेत्र अलग–अलग मिलते हैं। प्रमुख व्यापार क्षेत्र के चारो ओर आवासीय क्षेत्र स्थित होता है जिसमें संप्रदाय, जाति, भाषा आदि के आधार पर पृथक्करण पाया जाता है। यहाँ उच्च जातियाँ और संभ्रात लोग नगर केन्द्र के निकट निवास करता है और निम्न जातियाँ और निम्न आय वर्ग के लोग बाह्य भाग में अपना निवास बनाते हैं, वर्तमान समय में इसमें पृथक्करण की प्रवृत्ति में गिरावट देखी गयी तथा मोटर गाड़ी और सड़क परिवहन के विकास के कारण उच्च और मध्य आय वर्ग के लोग नगर के बाह्य भाग में खुले और विस्तृत आवासीय क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे है। नई नियोजित कालोनियों का निर्माण भी इन्हीं उपनगरीय भागों की ओर हो रहा है। भारतीय नगरों में केन्द्रीय भाग अत्यधिक सघन और ठोस पाया जाता है। यहाँ केन्द्रोन्मुखी शक्तियों के प्रबल होने के कारण उपान्त और उपनगरीय क्षेत्रों का आपेक्षाकृत कम विकास हो पाया है जैसा कि पश्चिमी विश्व के नगरों में दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि यहाँ नगर–केन्द्र और उपान्त के बीच जनसंख्या घनत्व में काफी अन्तर दिखाई पड़ता है। पाश्चात्य नगरों से भिन्न भारतीय नगरों में यौन–अनुपात भी आपेक्षतया कम पाया जाता है। जहाँ दक्षिणी भारत (केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश) में यौन–अनुपात आपेक्षतया अधिक है उत्तरी भारत (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार आदि) में कम है। दक्षिणी भारत के नगरों में ग्रामीण महिलाओं के रोजगार के अवसर भी आपेक्षतया अधिक है। भारतीय नगरों में ग्रामीण जीवन शैली और ग्रामीण दृष्टिकोण की प्रधानता पाई जाती है। यही कारण है कि महानगरों तक में भी कच्चे मकान, झोपड़ियाँ, नगरीय भाग में तबेले पर घूमते पशुओं की आसानी से देखा जा सकता है। इसके भूमि उपयोग का विवरण इस प्रकार है–

1. औद्योगिक क्षेत्र– औद्योगिक भूमि उपयोग का नगर के प्रकार्यात्मक आकारिकी पर विशेष प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया नगर का 5–6% क्षेत्र इसे अन्तर्गत पाया जाता है परन्तु कई औद्योगिक नगरों में यह मात्रा काफी अधिक पाई जाती है। उदाहरण स्वरूप मुम्बई में 14.5% जयपुर में 10.5, कोलकाता में 9.2, कानपुर में 6.6, हैदराबाद में 3.1 और दिल्ली में 1.8% क्षेत्र उद्योगों के अधीन पाया जाता है। इसी प्रकार शिकागों का 13.4, फिलाडेल्फिया का 11.8 एवं न्यूयार्क का 6.8 प्रतिशत क्षेत्र इस रूप में विद्यमान है। नगर में उद्योगों की स्थापना पर परिवहन मार्गों, कच्चामाल एवं ऊर्जा संसाधनों की सुलभता, पूंजी, बाजार, श्रम आदि कारकों का प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया बृहत् उद्योग नगर की बाहरी सीमा पर तथा लघु उद्योग आन्तरिक भाग में स्थित पाये जाते हैं। इसी प्रकार भारी कच्चा माल उपयोग करने वाले उद्योग सागरीय पत्तनों, रेलों सड़कों, नाव्य नदियों और नहरों के

समीप स्थित पाये जाते हैं। मोटर निर्माण तेल शोधन शालाओं आदि के लिए विस्तृत भूमि की आवश्यकता होती है, जिसके कारण इनकी स्थापना नगर के बाह्य भाग में की जाती है। इसी प्रकार शोर–सराबा एवं प्रदूषण फैलाने वाल उद्योगों को भी आवासीय क्षेत्रों से दूर रखा जाता है।

2. प्रशासनिक क्षेत्र– नगर की शक्ति एवं सुरक्षा हेतु कुशल प्रशासन की आवश्यकता होती है जिसके कार्यालय नगर के विभिन्न भागों में स्थित होते हैं। इसके साथ ही साथ नगर अपने प्रभाव क्षेत्र का प्रशासनिक सेवायें प्रदान करता है। कुछ नगरों का अस्तित्व केवल प्रशासनिक कार्यों से ही जुड़ा होता है। नयी दिल्ली, चण्डीगढ़, भुवनेश्वर, आदि इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। विश्व स्तर पर लन्दन, टोकियो, मास्को, पेरिस, वाशिंगटन, कैनबरा, ओटावा, इस्लामाबाद आदि राजधानी नगर प्रशासनिक कार्यों से ही सम्बद्ध हैं। प्रशासनिक कार्यो से संबंधित कार्यालयों को चार वर्गो में बांटा जा सकता है :– (अ) केन्द्रीय सरकार के प्रशासन से सम्बन्धित कार्यालय , (ब) राज्य सरकार के प्रशासन से सम्बन्धित कार्यालय (स) जिला प्रशासन से संबंधित कार्यालय, एवं (द) स्थानीय प्रशासन–नगर निगम, नगर महापालिका, नगर पालिका, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, टाउन एरिया आदि– से संबंधित कार्यालय।

3. शैक्षणिक क्षेत्र– प्रत्येक नगर में कई प्रकार की शिक्षा संस्थायें होती हैं, जिनका वितरण नगर के विभिन्न भागों में पाया जाता है। इनमें प्रारम्भिक शिक्षण संस्थायें, माध्यमिक शिक्षण संस्थायें, स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षण संस्थायें, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षण संस्थायें आदि सम्मिलित हैं। प्रारम्भिक शिक्षण संस्थायें, जिनके लिये बहुत बड़े क्षेत्र की आवश्यकता नहीं हेाती हैं, नगर के प्रत्येक मुहल्ले में वितरित पायी जाती हैं, परन्तु अभिजात वर्ग से सम्बन्धित कान्वेंट, मांटेसरी और पब्लिक स्कूल आपेक्षतया अधिक विस्तृत क्षेत्र पर नगर के उच्च एवं मध्य वर्गीय आवासीय क्षेत्रों के बीच स्थित पाये जाते हैं। माध्यमिक विद्यालय, जिनमें छात्रावास, क्रीड़ा क्षेत्र आदि के कारण आपेक्षतया अधिक भूमि की आवश्कता होती है, नगर के मध्यभाग के उपान्त में स्थित होते हैं। बालिकाओं के विद्यालय भारतीय नगरों में आवासीय क्षेत्रों के समीप नगर के मध्य भाग में पाये जाते हैं। स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षण संस्थायें, विश्वविद्यालय इत्यादि, जिनके लिए विस्तृत एवं सस्ती भूमि की आवश्कता होती है, सामान्यतया नगर के बाह्य भाग या उपान्त में स्थित देखे जाते हैं।

4. सांस्कृतिक क्षेत्र– सांस्कृतिक क्षेत्र के अन्तर्गत धार्मिक, सामाजिक एवं मनोरंजन आदि की संस्थायें सम्मिलित की जाती है। भारत के कई नगरों में धार्मिक संस्थाओं का विशेष प्रभाव देखा जाता है। इनमें वाराणसी में विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा में द्वारिकाधीश मन्दिर, अयोध्या में रामलला मन्दिर, इलाहाबाद में संगम क्षेत्र, अजमेर में दरगाह आदि का धार्मिक महत्व है। विश्व स्तर पर भी मक्का, मदीना, जेरुसलेम आदि नगरों का अस्तित्व धार्मिक कारणों से सम्बद्ध है। साधारणतया धार्मिक स्थल नगर के मध्य भाग में आवासीय क्षेत्रों के समीप पाये जाते हैं। **कानपुर (Kanpur)** :– गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित कानपुर नगर ब्रिटिश शासन काल में एक छावनी के रूप में विकसित किया गया था, परन्तु धीरे–धीरे यह उत्तरी भारत का प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया। आज यह देश का दसवां बृहत्तम महानगर है।

9.10. सारांश

इस इकाई में नगर के आकरिकी और उनकी कार्यात्मक विभिन्नता को समझ गये होगे। नगर के भौतिक विन्यास में नगरीय संरचना से जिसके अन्तर्गत सड़कों गलियों के प्रतिरूप, भवनों का समूह, उनके प्रकार्य, घनत्व आयोजना/व्यवस्था को सम्मिलित करते है। इसी कारण से नगर की कार्यात्मक आकारिकी को नगरीय उपयोग के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है। आप समझ गये होगे कि नगर के

विकास के अवस्थाओं महत्वपूर्ण फलक क्या होते है। आपने यह भी जाना होगा कि इसके भूमि उपयोग के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने आपने सिद्धान्तों का प्रयोग किया है। आपने देखा कि कि ये सिद्धान्तों किसी आदर्श नगर के आन्तरिक विन्यास का सामान्यीकृत रूप से प्रस्तुत करता है। जो एक दूसरे के संन्दर्भ में स्थिति की जानकारी मिलती है। जिससे उनकी पहचान की जा सके।

9.11. स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श

उत्तर – 1. नगरीय आकारिकी के विकास की कितनी अवस्थायें हैं – (अ) 5 (ब) 6 (स) 3 (द) 4 2. संकेन्द्रीय मेखला सिद्धान्त किसने दिया – (अ) हायट (ब) वर्गेस (स) हैरिस (द) क्रिस्टालर 3. खण्ड सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। (अ) रिचथोफेन (ब) हैरिस (स) होमर हापट (द) ब्लाश 4. वर्गेस ने आपने संकेन्द्रीय सिद्धान्त कितने पेटियों में बांटा है – (अ) 4 (ब) 6 (स) 3 (द) 5 आदर्श उत्तर (1) स (2) ब (3) स (4) द

9-12- सन्दर्भ सूची

1- Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69

2. तिवारी राम चन्द्र (1983) : अधिवास भूगोल–विकास एवं सम्भावनाएं भूसंगम अंक–1संख्या,प्र0 41.

3. Singh R.L. et al (1976) : Geographic Dimensions of Rural Settlements (Vanansi : N.9 S.7)

4. सिंह काशी नाथ एवं सिंह जगदीश ;1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, वाराणसी : तारा पब्लिकेशन वाराणसी।

5. Demange on, A (1920) : L/Habitation Rural France, Annals de Geography e.Vo1.29.PP-352-375.

6. Lefevre, MA (1945) : Principles Geography Humain (Bruxelles)

7. Haggett, P (1965) Location Analysis in Human Geography (London) : Edward Arnold.

8. Chatterjee, S.P. (1964) Progress of (Geography) (Calutta) : Indian Science Congress Association.

9. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

10- करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।

11. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

9.13. अभ्यास प्रश्न

प्रश्न–1. नगरीय आकारिकीय से आपका क्या तात्पर्य है इस पर प्रभाव डालने वाले कारको का वर्णन कीजिए।

प्रश्न–2. नगरीय आकारिकी के विकास की प्रक्रियाओं की विवेचना कीजिए।

प्रश्न–3. संकेन्द्रीय मेखला सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिए।

प्रश्न–4. नगरीय आकारिकी में खण्ड सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

इकाई–10 नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 आधारभूत अनाधारभूत संकल्पना

10.2.1 आधारभूत एवं अनाधारभूत अनुपात

10.2.2 आधारभूत–अनाधारभूत निर्माण की विधियाँ

10.2.3 आधारभूत–अनाधारभूत संकल्पना की उपयोगिता एवं समस्या

10.3 नगरों का वर्गीकरण

10.3.1 कार्यात्मक वर्गीकरण की विधियाँ

10.3.2 उत्तर प्रदेश के नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण

10.4 नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण

10.5 भारत के नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण

10.6 सारांश

10.7 स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

10.8 सन्दर्भ सूची

10.9 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा के तैयारी हेतु)

10.0 प्रस्तावना

नगरीय अध्ययन का एक मुख्य पक्ष नगरों के कार्य से सम्बन्धित होता हैं। नगरीय कार्य ही है जो उसके विकास और उसके महत्व के आधार पर उसे प्रादेशिक स्तर पर ही अध्ययन है। डिकिन्सन के अनुसार नगरीय कार्य जीवन की वह गतिमान शक्ति है, जो एक बड़े क्षेत्र पर उसके विकास और उसकी आकारिकी को प्रभावित करते हैं। नगरीय कार्यों के अध्ययन से उसकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संरचना का अध्ययन किया जा सकता हैं यही कारण है कि अन्य कालों की आपेक्षा नगरीय कार्य ही उसके वर्गीकरण हेतु प्रमुख आधार प्रस्तुत करते हैं।

नगरीय कार्य मुख्यतः अप्राथमिक (Non-primanry) क्रियाओं से सम्बद्ध वस्तु निर्माण उद्योग, व्यापार, परिवहन संचार, आदि प्रमुख हैं, जिन्हें द्वितीयक एवं तृतीयक व्यवसायिक वर्गों के अन्तर्गत सम्मिलित करते है। केवल खनन ही एक ऐसा कार्य है, जो प्रारम्भिक कार्य से जुड़ा होता हुआ भी नगरों के जन्म एवं विकास में सहायक होता है, क्योंकि यह वस्तु निर्माण उद्योग के पूरक के रूप में कार्य करता है। उपर्युक्त सेवाओं के अतिरिक्त एक बड़ा वर्ग अन्य सेवाओं का है जिसमें (1) व्यवसायिक, शिक्षा, चिकित्सा आदि (2) व्यक्तिगत, होटल, मनोरंजन आदि (3) वित्तीय बैंक, बीमा आदि (4) सार्वजनिक प्रशासन, राजधानी, सैन्य कार्य आदि (5) जनउपयोगी सेवायें, विद्युत, जल, सफाई आदि (6) सामाजिक सांस्कृतिक सेवायें, धर्म साहित्य दर्शन आदि को सम्मिलित करते हैं।

10.1 उद्देश्य

यह अधिवास भूगोल की दशम् इकाई है इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- नगरों के कार्यो के अध्ययन में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक संरचना का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- नगर के आर्थिक कार्यों में आधारभूत, अनाधारभूत संकल्पानाओं की व्याख्या कर सकेगें।
- नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण के विभिन्न आयामों को व्याख्या कर सकेगें।
- नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण में प्रयुक्त विधियों की उपादेयता को जान जायेगें।

10.2 आधारभूत–अनाधारभूत संकल्पना

नगर द्वारा संपादित कार्यों को तीन भागों में बॉटा गया है– (1) आधारभूत एवं अनाधारभूत कार्य (2) केन्द्रीय एवं अपकेन्द्रीय (3) कार्यों का नगर के निर्माण और विकास में अपकेन्द्रीय व केन्द्राभिमुख कार्यों का विशेष महत्व होता है।

नगर और उसके प्रदेश में गहरा आर्थिक संबंध पाया जाता है, जिसके तहत नगर कुछ ऐसी आर्थिक क्रियाऐं प्रस्तुत करता है, जो नगर से बाहर रहने वाले लोगों की आवश्यकताओं या मांगों को आपूर्ति करता है जैसे इलाहाबाद नगर में उच्च न्यायालय, विश्वविद्यालय, मेडिकल कॉलेज, त्रिवेणी स्ट्रक्चरल लि0 द्वारा प्रदत्त बिजली, प्राथमिक शिक्षा आदि की सुविधाऐं। इनमें से प्रथम को आधारभूत कार्यों के रूप में सम्मिलित किया जाता है, क्योंकि इनसे नगर को आय का स्रोत की प्राप्ति होती है एवं ये नगर के अस्तित्व एवं जीवन की गुणवत्ता के लिए नया आयाम प्रस्तुत करते हैं। दूसरे शब्दों में नगरीय कार्य के द्वारा ही इनको आर्थिक शक्ति प्राप्त होती है जो नगरों के विकास में सहायक होती है। नगरीय सीमा से बाहर के लोग नगर में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का जितना ही क्रय–विक्रय करते हैं उतनी ही अधिक आर्थिक वृद्धि होती है, जिसमें नगर का विकास उतनी ही तेजी से होता है। इन आधारभूत क्रियाओं को प्राथमिक क्रियाओं नगर निर्माण क्रियाओं के संपादन या संचालय पोषण, गैर स्थानीय, प्रादेशिक, बाहय निर्यात, नगरीय विकास आदि नामों से भी जाना जाता है। इसके विपरीत नगरवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किये गये क्रियाओं को अनाधारभूत नाम से व्यक्त किया जाता है। क्योंकि इनके द्वारा नगर से होने वाली आय ही नगर में आदान–प्रदान होता रहता है। इसमें उन वस्तुओं और सेवाओं को सम्मिलित करते हैं, जिनका उत्पादन विक्रय नगर क्षेत्र के भीतर ही केवल नगरवासियों के द्वारा ही होता है। इन क्रियाओं को माध्यमिक, नगर–सेवा कारक की क्रियाऐं के रूप में जाना जाता है, साथ ही इनके लिए सेवा को स्थानीय आन्तरिक, निष्क्रिय, अनुषंगी, आयात इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग करते है।

10.2.1 आधारभूत एवं अनाधारभूत संकल्पना–

आधारभूत एवं अनाधारभूत संकल्पना नगर के आर्थिक कार्यों के द्वारा निर्धारित होता है। इसका बीजारोपण बीसवीं सदी के तीसरे दशक में हुआ। सर्वप्रथम (1921) फ्रेडरिक एल ओल्मस्टेड ने न्यूयार्क प्लानिंग कमेटी के भेजे गए अपने पत्र में लिखा था कि नगर के उत्पादक व्यवसायों को मोटे तौर पर दो भागों में बॉट सकते है– (1) मुख्य व्यवसाय जिनका उपयोग स्वयं नगर में नहीं होता है (2) अनुषंगी व्यवसाय जो प्रत्यक्ष, एवं परोक्ष रूप से सेवा से संबंधित है और प्रधान व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों की सुविधा के लिए होते हैं। सन् 1921 में ही एम0 रूसों द्वारा सर्वप्रथम आधारभूत अनाधारभूत संकल्पना की प्रथम प्रयोगकर्ता के रूप में जाने जाता था, जब उन्होंने मानव के प्राथमिक एवं द्वितीयक व्यवसायों की वजह से तीव्र नगरीय विकास का जिक्र किया। प्रोफेसर रिचर्ड बी0

एन्ड्यूज (1953) ने भी इस संकल्पना के ऐतिहासिक विकास को विस्तृत व्याख्या की है।

रिचर्ड, हार्टशोर्न प्रथम भूगोलवेत्ता माने जाते थे जिन्होंने सन् 1932 में इस संकल्पना का प्रयोग मिनियापोलिस सेण्टवाल नगर के अध्ययन में किया। उनके अनुसार इस नगर में कुल पुरूष श्रमिकों का आधे से अधिक भाग आंतरिक एवं शेष बाह्य कार्यों में लगा था। उन्होंने बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका की औद्योगिक पेटी के अध्ययन में इस संकल्पना के उपयोग की क्रियाविधि का महत्वपूर्ण सुझाव दिया। इसकी क्रियाविधि में दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह था कि फारचून पत्रिका के शोध कर्मियों द्वारा असेस्कालूसा, आइवोवा के आर्थिक कार्यों के विश्लेषण द्वारा किया जाता है। इस अध्ययन में ओस्कालसा क्षेत्र और शेष विश्व के बीच के सन्दर्भ में भुगतान संकलन का मूल्यांकन किया गया और नगर के स्थानीय एवं अस्थानीय ऋणदाताओं के बीच में भी अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस संकल्पना के विकास में अमेरिका अर्थशास्त्री हेामर हायट का योगदान बड़ा महत्व का है। इन्होंने आधारभूत के लिए नगरीय सेवा जैसी नवीन शब्दावली का प्रचलन किया। उनके अनुसार आधारभूत–अनाधारभूत अनुपात में एक नगर से दूसरे नगर में पर्याप्त भिन्नता दिखाई पड़ते है।

सन् 1942 ई0 में हैरोल्ड मैकार्टी ने संकल्पना को आगे बढ़ाते हुए बताता है कि प्रादेशिक एवं सामुदायिक अर्थव्यवस्थाओं के क्षेत्र में इसका बड़ा योगदान है। उन्होंने आधारभूत–अनाधारभूत क्रियाओं का विवरण व्यावसायिक पिरामिड के रूप में उपयोग किया। जोन्स (1944) ने नगर नियोजकों को आधारभूत क्रियाओं को प्राथमिकता देने का सलाह दिया जबकि डिकिन्सन ने इस आर्थिक क्रियाओं के सन्दर्भ में अधिक नगरीय विश्लेषणों की आवश्यकता पर जोर दिया। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में इस संकल्पना को पूर्ण विकसित रूप प्रदान करने में अलेक्जन्डरसन ब्लूमेनफेल्ड इजार्ड और रोटेरस प्रमुख विद्वानों ने आपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

10.2.1 आधारभूत एवं अनाधारभूत अनुपात–

नगर की अधिकांश क्रियायें कुछ न कुछ स्वरूप में आधारभूत और अनाधारभूत दोनों कियायें दिखाई पड़ती है। इन दोनों क्रियाओं के बीच के सह–सम्बन्ध को ही आधारभूत–अनाधारभूत अनुपात अर्थात् B/N Ratio के नाम से जानते है। जैसे यदि किसी नगर की आय का तीन–चौथाई भाग आधारभूत और एक चौथाई मात्रा अनाधारभूत क्रियाओं द्वारा प्राप्त होता है तो B/N Ratio 3:1 अथवा 300:100 अथवा 75:25 होगा। यह अनुपात नगर प्रभाव क्षेत्र के साथ–साथ इसमें कमी देखी जाती है। इसी प्रकार आवासों की आकार, अवस्थिति तथा उनके अन्य विशेषताओं इत्यादि का भी इस पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। समय के सन्दर्भ में भी इस अनुपातों मे भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार इस अनुपात की मात्रा एक नगर से दूसरे के बीच भी अलग–अलग पाई जाती है। इसलिए इस अनुपात का प्रयोग नगरीय वर्गीकरण के सन्दर्भ किया जा सकता है।

आधारभूत–अनाधारभूत अनुपात के आधार पर अलेक्जेण्डर (1954) वे नगर की समस्त आर्थिक क्रियाओं को निम्न 4 श्रेणी में विभाजित किया है।

1. आधारभूत श्रेणी (B) श्रेणी– 75 प्रतिशत से 100 प्रतिशत आधारभूत।
2. प्रधानतः आधारभूत (Bn) श्रेणी 50 प्रतिशत से 75 प्रतिशत आधारभूत।
3. प्रधानतः अनाधारभूत (Nb) श्रेणी 25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत आधारभूत।
4. अनाधारभूत (N) श्रेणी 0 प्रतिशत से 25 प्रतिशत आधारभूत।

10.2.2 आधारभूत–अनाधारभूत अनुपात निर्धारण की विधियाँ–

भूगोल के विद्वानों और अर्थशास्त्रियों ने मिलकर आधारभूत–अनाधारभूत अनुपात के निर्धारण हेतु कई नियमों तथा विधियों का सुझाव दिया है। जिनमें कुछ विवरण इस प्रकार है–

1. प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय औसत विधियॉ –

यह नियम इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या एवं संसाधनों के उपभोग की मात्रा प्रत्यक्ष एवं सीधा संबंध होता है तथा किसी क्षेत्र या देश या प्रदेश के उपभोग की मात्रा उसकी जनसंख्या की समानुपाती होती है। किसी नगर का विशेष प्रकार का व्यवसाय में क्षेत्रीय/राष्ट्रीय औसत से अत्यधिक मानवीय श्रम, शक्ति का आधारभूत श्रम एवं शेष को गौण श्रम में रखा जाता है। सी0डी0 हैरिस (1940) ने साल्ट लेक सिटी के अध्ययन में आधारभूत श्रम एवं उसके परिकलन श्रम के परिकलन हेतु निम्न नियम का सुझाव दिया है। जो इस प्रकार है– आधारभूत श्रम = वास्तविक रोजगार नगर हेतु अनुमानित आवश्यक रोजगार।

$$\text{नगर हेतु अनुमानित आवश्यक रोजगार} = \frac{tp \times e}{TP}$$

जहाँ tp = नगर की जनसंख्या

TP = प्रदेश की जनसंख्या

e व्यवसाय में संलग्न प्रदेश का कुल रोजगार।

नगर के सभी प्रकार के व्यवसायों से मिला हुआ अतिरिक्त श्रम का कुल योग ही सभी आधारभूत श्रम के प्रदर्शन को बताता है। इस तरह हैरिस ने उस प्रदेश के कुल रोजगार के लगभग 38.2 प्रतिशत भाग को साल्टलेक सिटी की स्थानीय लोगों की आवश्यकता को माना जाता है। इससे उस प्रदेश अर्थात साल्ट लेक सिटी के सभी व्यवसायों में कार्यरत कुल 54000 श्रमिकों में से केवल 10,000 श्रमिक ही आधारभूत संवर्ग में सम्मिलित किये गये। होमर हायट (1994) ने न्यूयार्क महानगर के आधारभूत रोजगार के अनुमान हेतु राष्ट्रीय औसत नियम का प्रयोग किया उनके अनुसार किसी नगर की जनसंख्या द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग करके उसके राष्ट्रीय जनसंख्या के अनुपात के बराबर किया जाता है। इस मात्रा से अधिक रोजगार ही आधारभूत रोजगार को प्रदर्शित करता है। रसायनिक व्यवसायिक उद्योग के सम्बन्ध में हायट से इसे निम्न सूत्र द्वारा परिकलित किया है।

$$Be = e - \frac{tp \times E}{TP}$$

जहाँ, Be = नगर में रसायन उद्योग श्रमिकों की संख्या,

e = A नगर में कार्यरत कुल श्रमिकों की संख्या,

tp = A नगर की कुल जनसंख्या,

TP = कुल राष्ट्रीय जनसंख्या एवं

E = रसायन उद्योग में कार्यरत राष्ट्र के कुल श्रमिकों की संख्या

यदि नगर में रसायन उद्योग में श्रमिकों की संख्या अर्थात् Be का मान धनात्मक है तो वह आधारभूत रोजगार के एवं यदि शून्य या ऋणात्मक है तो आधारभूत रोजगार के अभाव को प्रदर्शित करेगा। मटीला एवं थाम्पसन (1955) ने संयुक्त राज्य अमेरिका के महानगरीय क्षेत्र के प्रत्येक व्यवसाय में अतिक्ति सूत्र का उपयोग किया है।

Se = ei (et. Ei) / ET

जहाँ Se = अतिरिक्त (आधारभूत) श्रम,

ei = स्थानीय कार्यात्मक श्रम

et = स्थानीय कुल श्रम का योग

E i = राष्ट्रीय कार्यात्मक श्रम, एवं

Et = राष्ट्रीय कुल श्रम का योग।

यदि Se का मान धनात्मक है तो यह आधारभूत एवं यदि शून्य या ऋणात्मक है तो आधारभूत श्रम की अनुपस्थिति परिचायक होगी।

2. न्यूनतम आवश्यकता विधियाँ–

इसको पुष्पित करने का श्रेय उलमैन और डेसी (1960) को जाता है। यह नियम इस मान्यता पर आधारित है कि नगर की स्थानीय आवश्यकताओं रखरखाव और अनुकूलता हेतु उद्योगों हेतु प्रत्येक में व्यवसाय में विभिन्न अलग–अलग न्यूनतम श्रम शक्ति की जरूरत पड़ती है। किसी व्यवसाय में श्रम शक्ति का यह न्यूनतम प्रतिशत भाग प्रदेश के अन्य क्षेत्रों नगरों का न्यूनतम आवश्यकता पूर्ति हेतु श्रम प्रभावी होता है। यह न्यूनतम आवश्यकता से अधिक रोजगार की आवश्यकता होती है जिसे अधिशेष रोजगार की संज्ञा दी जाती है। जो आधारभूत रोजगार को परिभाषित करता है। जबकि न्यूनतम आवश्यकता श्रमशक्ति अनाधार भूत रोजगार को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार इस नियम से किसी प्रदेश के प्रत्येक नगर के प्रत्येक व्यवसाय में संलग्न आधारभूत श्रम शक्ति की अनुकूलता का पता लगाया जाता है। अन्त में सभी व्यवसायों में कार्यरत आधारभूत श्रमों का कुल योग से उस नगर में आधारभूत श्रम की कुल मात्रा की जानकारी प्राप्त कर सकते है।

चार्ल्स टी बाउट एवं गुन्सार अलेक्जेन्डरसन ने इस नियम की कमियों को दूर करने हेतु निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुझाव दिये है।

आर्थिक सर्वेक्षण विधि–

इस नियम को फर्म से फर्म नियम के नाम से भी जाना जाता हैं यह विधि नगरीय सर्वेक्षण एवं प्राथमिक आँकड़ों के आधार पर आधारित है जिसके द्वारा नगर के प्रत्येक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु का उस मात्रा की जानकारी प्राप्त होती हैं जिसका उपयोग वाह्य नगरीय क्षेत्रों के लिए प्रयुक्त होता है एवं जिसके क्रय–विक्रय से नगर को आमदनी का स्रोत मिलती है। अलेक्जेन्डर (1951) ने इस नियम द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के ओशकोश और मेडिसान नगरों में आधारभूत अनुपात क्रमशः इसी विधि के आधार पर 100:60:100:32 निर्धारित किया है।

आगत–निर्गत नियम–

इसका विकास लियोन्टीक एवं उनके साथियों (1953) द्वारा नगरीय आर्थिक संरचना के विश्लेषण हेतु एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक उपागम के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह नियम इस मान्यता पर आधारित है कि नगरीय आर्थिक क्रियाओं की उत्पत्ति का प्रमुख कारण उसके भीतर में होने वाले मुद्रा प्रवाह है। यह नियम एक आर्थिक तन्त्र के मध्य वस्तुओं एवं सेवाओं के क्रय–विक्रय अथवा मुद्रा प्रवाह के विभिन्न स्वरूपों का विश्लेषण एवं संश्लेषण करती हैं इनमें यह भी माना जाता है कि सभी उत्पादक क्रिया परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित होती है, तथा वह एक दूसरे के उत्पादन को प्रभावित करती है। इस नियम से आगत–निर्गत प्रतिमानों एवं आगत–निर्गत सारणियों का विकास

किया जाता हैं जिनकी मदद से आगामी प्रतिरूपों के प्रक्षेपण से उपयोग हो सकता है।

सन् 1954 में इजार्ड एवं कावेश ने एक संशोधित आगत–निर्गत प्रतिमान प्रस्तुत किया जो दो महानगरीय प्रदेशों और एक कृषि प्रधान प्रदेशों के अध्ययन पर आधारित था। इनमें से प्रत्येक प्रदेश की आर्थिक क्रियाओं को 9 प्रमुख खण्डों (Sectors) में बॉटा किया गया। इन तीनों प्रदेशों में क्रियाओं का प्रथम (आधारभूत) भाग भिन्न–भिन्न रूपों में पाया जाता है जैसे प्रथम महानगरीय क्षेत्र में हल्के उद्योग एवं तृतीय प्रदेश में कृषि आधारभूत क्रियाओं के इस अन्तर के कारण ही इन प्रदेशों के बीच आपस में विनिमय (लेन–देन) होता है, तथा शेष आठ आर्थिक क्रियाओं में इन्हें आत्मनिर्भर मान लिया जाता है। आगत–निर्गत विश्लेषण का उपयोग प्रायः प्रादेशिक अर्थव्यवस्थाओं और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन में किया जाता है लेकिन अलग–अलग नगरों में अध्ययन में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

10.2.3 आधारभूत–अनाधारभूत संकल्पना की उपयोगिता एवं समस्यायें–

अलेक्जेण्डर (1954) ने आधारभूत–अनाधारभूत संकल्पना की विस्तृत विश्लेषण करते हुए इसकी भौगोलिक उपयोगिता के आधार पर चार विशेषता का वर्णन किया है :

1. यह संकल्पना आर्थिक विचार धारा के रूप में सम्बन्धों का एक नया आयाम प्रस्तुत करती है जो नगर को अन्य क्षेत्रों अर्थात भागों से जोड़ता है। आधारभूत रोजगार से संबंधित ऑकड़े किसी नगर की आर्थिक व्यवस्था के विश्लेषण में कुल रोजगार की आपेक्षा अत्यधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं।
2. यह, प्रादेशिक कार्य के अन्तर्गत नगरों का अत्यन्त महत्वपूर्ण उपयुक्त वर्गीकरण प्रस्तुत करती है क्योंकि नगरों को उनकी सकल अर्थव्यवस्था के बजाय उनकी आधारभूत अर्थव्यवस्था के आधार पर उसका वर्गीकरण प्रस्तुत करना अधिक माना जाता है।
3. इसमे प्राप्त नवीन अनुपात (B/N अनुपात) द्वारा नगरों के मध्य आसानी से अन्तर ज्ञात किया जा सकता है।
4. B/N अनुपात द्वारा पृथक आर्थिक उद्यमों के वर्गीकरण में भी मदद मिलती है। उदाहरण के तौर पर एक ऐसा व्यवसाय जिसके समूचे उत्पादों का विक्रय लोकल के बाजारों में होता है। यह उन व्यवसाय से सैदव अलग सर्वथा होता है जिसके सम्पूर्ण उत्पाद नगर से बाहर के बाजार में बेचे जाते है।

इसके साथ ही साथ अलेक्जेण्डर (1954) आधारभूत–अनाधारभूत संकल्पना से सम्बन्धित निम्न प्रश्नों का भी वर्णन किया है जिनका उपाय भावी शोधों द्वारा फिर जाने की आवश्यकता है :

1. क्या नगरों के वर्गीकरण B/N हेतु अनुपात एक महत्वपूर्ण विशेषता हैं
2. क्या B/N अनुपात में आवास के आकार में बदलाव के साथ भिन्नता पाई जाती है? ऐसा देखा जाता है कि जो नगर जितना ही बड़ा होता है उसकी अनाधारभूत क्रिया का समानुपात उतना ही बड़ा होता है।
3. क्या B/N अनुपात में आवास के प्रकार (विनिर्माण, उद्योग, व्यापार आदि) के अनुसार अन्तर पाया जाता है?
4. क्या आवास के आकार एवं प्रकार के अलावा उसकी अवस्थिति के अनुसार भी B/N अनुपात में अन्तर पाया जाता है?

5. क्या एक नगर के B/N अनुपात में समय के अनुसार भी अन्तर देखा जाता है?
6. क्या एक ही आकार के तेजी से विकसित होने वाले और प्रगतिरोधी (Stagnat) नगरों के B/N अनुपातों में भिन्नता पाई जाती है?
7. क्या एक नगर से दूसरे नगर की अनाधारभूत क्रिया में समानता पाई जतीी है?
8. आधारभूत–अनाधारभूत संकल्पना के अनुप्रयोग हेतु नगरीय समुदाय को किस प्रकार निर्वाधित किया जाता है?
9. किसी आवास हेतु इस संकल्पना के अनुप्रयोग को कौन सी सर्वोत्तम नियम है?

आधारभूत की सबसे उपर्युक्त परिभाषा क्या है? उपर्युक्त प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में आधारभूत–अनाधारभूत संकल्पना को नवीन शोधों द्वारा और अधिक संशोधित करने की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है ताकि इसे आसानीपूर्वक एक कस्बे से लेकर महानगर तक के अध्ययनों में आसानी से प्रयोग किया जा सके। यद्यपि आधारभूत–अनाधारभूत संकल्पना से संबंधित B/N अनुपात ज्ञात करने में ऑकड़ों के आसानी से प्राप्ति में कठिनाई होती है। आधारभूत के आँकड़ों को ज्ञात करने में तथा उसे अलग करने और नगर क्षेत्र के सीमा निर्धारण सम्बन्धी अनेक बाधाएँ सामने आती हैं फिर भी इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण हेतु इसका प्रयोग बहुत ही आसानी से किया जा सकता है।

10.4 नगरों का वर्गीकरण

नगरों का वर्गीकरण नगरीय भूगोल का एक महत्वपूर्ण विषय है। यद्यपि नगरों को उनकी संस्थिति परिस्थिति, आकार, आकारिकी, उद्‌भव विकास, नगरीकरण के स्तर, नगरीय समूहन, आदि के आधार पर अलग–अलग प्रकार से बॉटा किया जा सकता है, लेकिन कार्यो एवं सेवा केन्द्रों के रूप में नगरों के वर्गीकरण का क्षेत्रीय विकास को प्रभावित करते हैं। वरन् उसकी आकारिकी आदि पर भी विभिन्न प्रभाव का स्वरूप प्रदान करते हैं। वास्तव में कार्य ही नगर के जीवन का मुख्य तत्व है जिनके वगैर नगर की कल्पना ही नहीं कर सकते है। इन कार्यों की वजह से नगर की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि अन्य तथ्यों की आपेक्षा नगरीय कार्यों का नगरों के वर्गीकरण में विशेष महत्व प्रदान किया जाता है।

नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण एक कठिन एवं संश्लिष्ट विषय है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि नगर प्रायः एकल कार्यात्मक अथवा बहु कार्यात्मक होते हैं, जैसे कार्य व्यापार, सेवायें आदि सभी नगरों तथा कुछ कार्य (विनिर्माण उद्योग, यातायात आदि) कुछ विशेषित नगरों में ही संकेन्द्रित होते हैं, मुख्यतः नगरों में कार्यात्मक संयोजन का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। जैसे विनिर्माण उद्योग के सन्दर्भ में परिवहन का विकास तथा विभिन्न उद्योग के पूरक के रूप में परिवहन का विकास तथा विभिन्न नगरों में कार्यों के विशिष्टीकरण की अधिकता और तीव्रता परिणाम के फलस्वरूप कार्यात्मक समानता या असमानता दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार उपयुक्त आँकड़ों की अनुपलब्धता तथा दोषमुक्त सर्वोपयुक्त वर्गीकरण विधि के अभाव में वर्गीकरण का कार्य और भी कठिन हो जाता है।

10.5 कार्यात्मक वर्गीकरण की विधियाँ

नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण हेतु प्रयुक्त प्रयोग की जाने वाली विधियों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– (1) आनुभाविक या गुणात्मक विधियाँ एवं (2) परिमणात्मक अथवा सांख्यिकीय विधियाँ।

1) **आनुभाविक विधियाँ–** इस विधि का सर्वप्रथम प्रयोगकर्ता या प्रथम प्रयास किया अरूसों (1921) ने किया है। जिन्होंने सामान्य अनुभव के आधार पर नगरो को सक्रिय और निष्क्रिय रूप में विभाजित किया हैं बाद में प्रमुख कार्यों के आधार पर इन्होंने सक्रिय नगरों को छः कार्यात्मक भागों/रूपों में विभक्त किया है–

1. प्रशासन (राजधानी नगर)
2. सुरक्षा (छावनी, नौ सैनिक नगर)
3. संस्कृति (विश्वविद्यालय तीर्थ स्थान)
4. उत्पादन (औद्योगिक नगर)
5. संचार (व्यापारिक वस्तु वितरण केन्द्र)
6. मनोरंजनन (स्वास्थ्य पर्यटन केन्द्र) नगर इन्होंने नगरों को बहु कार्यिक बताते हुए उनमें प्रमुख कार्य को पता लगाने की कठिनाई का वर्णन किया। इन्होंने प्राथमिक अथवा आधारभूत कार्यों के महत्व पर जोर डाला।

अमेरिका समाजशास्त्री मैकेन्जी ने वस्तुओं के उत्पादन और वितरण की अवस्था के आधार पर समुदायों को चार सामान्य वर्गों में विभक्त किया है–

1. प्राथमिक सेवा समुदाय जैसे कृषि नगर जो प्राथमिक उत्पादन वाले ग्रामीण क्षेत्रों और महानगरीय केन्द्रों के मध्य कड़ी के उप में कार्य करते हैं।
2. व्यापारिक समुदाय संग्रह और वितरण के केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं।
3. औद्योगिक समुदाय जिसमें प्रथम एवं द्वितीय दोनों समुदायों के गुण तथा विशेषताए पाये जाते हैं तथा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।
4. सेवा केन्द्र जिनमें विशिष्ट प्रकार के आर्थिक स्वरूप का अभाव दिखाई पड़ता। इसमें मनोरंजनन केन्द्र राजनीतिक एंव शैक्षणिक केन्द्र प्रतिरक्षा केन्द्र एवं धर्मार्थ संस्थाओं आदि को एक साथ जोड़कर रखा जाता है।

जेम्स ने अपने एक शोध पत्र में भारतीय नगरों के प्रमुख प्रकार बताये हैं। राजधानी नगर धार्मिक नगर विनिर्माण उद्योग नगर सैन्य (छावनी) नगर, आन्तरिक बाजार नगर एवं समुद्री पत्तन नगर। हाल ने विकास के आधार पर जापानी नगरों को चार वर्गों में विभाजित किया है।

1. किला नगर जो सुरक्षा एवं प्रशासन के केन्द्र थे।
2. मन्दिर एवं दरगाह(Shrine) नगर,
3. औद्योगिक नगर।
4. आधुनिक औद्योगिक नगर।

वेवर और हायट (1939) ने रोजगार स्रोतों के आधार पर नगरों को औद्योगिक व्यापारिक राजनीतिक मनोरंजनन और शिक्षा के केन्द्रों के रूप में वर्गीकृत किया है।

गिस्ट और हॉलबर्ट ने भी नगरों के वर्गीकरण में रूसों की विचारों से सहमत होते हुए उन्होंने भी वर्गीकृत करते हुए एक अतिरिक्त वर्ग नगरों को जोड़ दिया है। राधा कमल मुखर्जी (1940) ने प्राचीन भारतीय नगरों को 6 वर्गों में विभाजित किया है।

अ. दुर्ग

ब. राजधानी

स. पत्तन

द. केटा

य. द्रोण मुख विरम्बा

र. विधर या मठ

उत्तर प्रदेश के नगरों का कार्यात्मक विभाजन–

उत्तर प्रदेश के नगरों के कार्यात्मक विभाजन का पहला प्रयास 1959 ई0 में काशीनाथ सिंह द्वारा किया। इस विभाजन में नेल्सन की नियम का अनुसरण किया गया है। 1968 ई0 में ओम प्रकाश सिंह ने नेल्सन की नियम में कुछ परिस्थितिजन्य बदलाव कर उत्तर प्रदेश के नगरों का पुनः कार्यात्मक विभाजन प्रस्तुत किया।

उत्तर प्रदेश के नगरों के कार्यात्मक विभाजन में ओम प्रकाश सिंह ने द्विसूचकांकीय विधि का प्रयोग किया है इनकी मान्यता यह थी कि किसी नगरीय केन्द्र को किसी कार्य के लिए औसत केन्द्र बनाने के लिए उस केन्द्र को उक्त कार्य में प्रादेशिक आकार स्वरूप और प्रादेशिक कार्य–दोनों बराबर अनुपात होना चाहिए। स्पष्ट है कि इनके अनुसार किसी नगर में किसी कार्य के विशेषीकरण का आधार उस नगर में प्रादेशिक योग का जो मान है वह नगर के जनसंख्या आकार के प्रादेशिक अंश की तुलना में कितना है या दोनों में आनुपातिक सम्बन्ध क्या है यह महत्वपूर्ण पक्ष होता है। किसी केन्द्र का प्रादेशिक जनसंख्या में भी उतना ही भाग है तो यह एक सामान्य स्थिति का परिचायक होता है। जब कार्य की मात्रा आकार की तुलना में अधिक पाई जाती है। तो उसे विशेषीकरण की स्थिति कही में रखा जा सकता है। इस तरह कार्यात्मक विशेषीकरण लब्धि प्रत्येक केन्द्र के प्रत्येक कार्य के लिए अलग–अलग प्राप्त किया जाता है। साथ ही प्रत्येक केन्द्र की कार्यिक केन्द्रीयता को प्राप्त की जाती है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश के 243 नगरों को छः वर्गों में विभाजित किया गया है।

अध्ययन की प्रमाणिकता के आधार पर सुस्पष्ट और वस्तुनिष्ट बनाने के लिए नगरों में होने वाले कार्यों का विशेषीकरण सूचकांक ज्ञात किया गया है। इसके लिए मानक विचलन का प्रयोग किया जाता है। इस तरह प्रत्येक कार्य की पाँच विशेषीकरण श्रेणियाँ बनायी गयी है कम विशेषीकृत, अधिक विशेषीकृत, बहुत विशेषीकृत, और अत्यधिक विशेषीकृत। इस आधार पर उ0प्र0 के नगरों को घरेलू उद्योग, वस्तु निर्माण केन्द्र, व्यापार केन्द्र, यातायात केन्द्र और विभिन्न प्रकार के कार्यिक केन्द्र में विभाजित किया जा सकता है। विशेषीकरण के आधार पर नगरों के विविध कार्यात्मक कार्यों वाले नगरों को भी विशेषीकरण के तर्ज पर विभाजित किया जाता है।

नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण–

नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण में नगर की अनिवार्य गुणात्मक विशेषताओं का द्वैतक होता है। नगरीय कार्य वास्तव में गुणात्मक अधिक तथा परिणामवाचकीय कम होते हैं। अधिकाशतः नगरों का पारस्परिक गुणात्मक कार्यात्मक विभाजन से योजनाओं का विकास किया जाता है। नगरीय कार्यों का एक अनिवार्य तथा मुख्य गुण इनकी विशिष्टीकरण का गुण में पाया जाता है। इसके फलस्वरूप विभिन्न नगरों के सन्दर्भ विशिष्टीकरण तीव्रता मापक के स्वरूप में इनके कार्यात्मक विभाजन योजनाओं को परिभाषित तथा निरूपित करने की परम्परा अधिक महत्वपूर्ण कारगर होती है।

विभिन्न विदेशी तथा भारतीय विद्वानों द्वारा विकसित नगरों की कार्यात्मक विभाजन योजनाओं के तथ्यात्मक मूल्यांकन से यह स्पष्टतः प्रस्तुत किया जा सकता है कि इनके लिए मान्य विधितन्त्रीय आधार अधिक पुनरावृत्तिक रहा है इस दिशा में हैरिस, नेल्सन, वेब, पी.ई.पी. मैटिला थाम्पसन, श्रीमती मुखर्जी तथा ओम प्रकाश सिंह द्वारा विकसित योजनाओं के योगदान में अपना महत्वपूर्ण विचार का प्रस्तुत किया है। इसके मुख्य कारणों में नगरीय कार्यों की विशिष्टीकरण तीव्रता के मापन के लिए रोजगार या पेशागत आँकड़ों पर निर्भरता तथा प्रदेश के सन्दर्भ में समय के साथ इन आँकड़ों की उपलब्धता में स्पष्टीकरण ये विविधता को विशेष रूप से उत्तरदायी मान सकते है। स्वभावतः नगरों के कार्यात्मक गुणों तथा इनकी विशिष्टता का अनुमान परोक्ष न होकर अपरोक्ष हो पाता है, साथ ही विभाजन का सतत् परिवर्तनशीलता एवं विकासशीलता की प्रवृत्ति रखता है। नगरों की विभिन्न कार्यात्मक विभाजन योजनाओं के निष्कर्ष के रूप में यथार्थ कम तथा प्रतीकात्मक ज्यादा माना जा सकता है क्योंकि नगरों के सन्दर्भ में चर्चित कार्य सहजीवी यथार्थता के प्रतीक है और उनका सापेक्षिक अनुमाप में आनुपातिक महत्व है न कि निरपेक्ष मात्रात्मक वरीयता या श्रेष्ठता में। इस दृष्टि से नगरों का कार्यात्मक विभाजन इनके कार्यिक गुणात्मक विशेषताओं का प्रमुख गुण मानते हुए ही यथार्थ रूप स्वीकरिक्त होगा।

भारत के नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण–

नगर कोई एकाएक या अनायास उत्पत्ति घटना के प्रदर्शित नहीं है न ही यह स्थायी स्थूल आवासीय प्रारूप का प्रतीक है। इसके विपरीत नगर एक प्रक्रियात्मक कार्यिक लक्षणों सम्बद्ध वाला स्थल होता है। अधिकांशतः नगरों की कार्यात्मक विशेषताओं के आधार पर विशेष की पहचान के पूर्व भारतीय प्रसंग में कुछ विशिष्ट मान्यताओं के आधार को स्वीकार किया जाता है।

1. भारत में नगर एक ऐतिहासिक आधारशिला की अभिव्यक्ति है जिनके अस्तित्व के लिए अनेक कारक जिम्मेदार रहे हैं।
2. भारत के नगरों की कार्यात्मकता विशिष्टता पर भारतीय संस्कृति का अमिट प्रभाव दिखाई पड़ता है।
3. भारत के नगरों की कार्यिक विशिष्टता उत्पत्ति जनित तथा संचयी कार्यों की सहजीवी अस्तित्व के अनुरूप बहु–आयामी तथा विविध प्रकार की होती है।
4. राष्ट्रीय सन्दर्भ में भौतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से निर्मित पृथक या मिश्रित भौगोलिक परिवेश के अनुरूप भारत के नगरों में कार्यात्मक गुणों का संवरण तथा संवर्द्धन होता रहा है।
5. भारत के नगरों के कार्यात्मक विश्लेषण के लिए आँकड़ों का मूल–स्रोत भारतीय जनगणना है जिसमें जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना का अपना प्रभाव बना रहता है।
6. जनगणना दशकों में व्यावसायिक संरचना वर्ग सारणी की प्रकृति में एकरूपता का अभाव पूर्ण सांख्यिकीय नियमों के उपयोग की उपादेयता तथा विभाजन योजनाओं में तुलनात्मकता के गुण को सन्देहासपद बना देता है।
7. ऐसी परिस्थिति में भारत के नगरों की कार्यात्मक वर्गीकरण योजना का मूलाधार सिद्धान्त बहुविधितन्त्रीय विश्लेषण उपागम को माना जा सकता है।

नगरो के कार्यात्मक वर्गीकरण के लिए ग्राफ विश्लेषण के अनुरूप समबाहु त्रिभुज रेखाचित्र का

व्यवहार भी उपयोग में लाया जाता हैं। विशेषकर भारत के सन्दर्भ में जहाँ प्राथमिक द्वितीयक तथा तृतीयक वर्गों में व्यावसायिक संरचनाओं को व्यवस्थित किया जा सकता है।

त्रिभुज की तीन भुजाओं पर 0 से 100 प्रतिशत के मान, तीन व्यावसायिक संरचना वर्ग के सन्दर्भ में नगरीय केन्द्रों की अवस्थिति अंकित कर सापेक्ष त्रिभुजांश तथा त्रिभुजांश तथा त्रिभुज मध्यांश के प्रसंग में कार्यात्मक वर्ग समूह की पहचान को सन्दर्भित करती है। जे.बी. गार्नियर तथा जी. चैबोट की मान्यता रही है कि नगरीय कार्य लेखाचित्रीय तथा मानचित्रीय प्रदर्शीकरण के तथ्य है तथा एक नगरीय केन्द्र को इसके अनिवार्य कार्य विशेषता के अनुरूप लेखाचित्र से परिभाषित किया जा सकता हैं। अशोक मित्रा ने त्रिभुजीय निर्देशांक को तैयार कर नगरों के शक्तिशाली तथा निर्बल कार्यो (प्रधान तथा गौण) की पहचान की तथा 1971 की जनगणना में सम्मिलित व्यवसायिक संरचनाओं का त्रिस्तरीय वर्ग समूहन किया।

1. 'अ' समूह (iii, iv, v तथा vi) औद्योगिक नगर तथा इनके उपवर्ग।
2. 'ब' समूह (vii तथा viii) व्यापारिक या परिवहन नगर।
3. 'स' (ix) सेवा नगर।

10.6 सारांश

आपने इस दशवें इकाई में नगरीय कार्यों के माध्यम से नगर का प्रादुर्भाव को जाना। आप समझ गये होंगे कि नगर के कार्यों को मुख्य तीन वर्गों बॉटा जा सकता है–

1. आधारभूत एवं अनाधारभूत कार्य 2. केन्द्रीय एवं अकेन्द्री कार्य 3. केन्द्राभिमुख और अकेन्द्रीय कार्य क्योंकि नगरों के विकास में इसका महत्वपूर्ण योगदान होता है। आवश्यकतानुसार की पूर्ति हेतु सम्पादित क्रियाओं को अनाधारभूत नाम से जाना जाता है।

आपने इस इकाई के अध्ययन में आधारभूत अनाधारभूत के निर्धारण में प्रयुक्त विधियों को भली भाँति समझा है। आपने यह भी जाना कि नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण एक कठिन एवं संश्लिष्ट विषय है क्योंकि बहुकार्यात्मक अथवा विभिन्न कार्यात्मक के रूप में होते है। इसी आधार पर विभिन्न विद्वानों ने आनुभाविक और सांख्यिकीय विधियों का सरलतम रूप प्रस्तुत किया। जिसमें हैटिस विधि नेल्सन विधियों का प्रमुख स्थान है। इसलिए यह लोकप्रिय भी है। आप ने यह भी जाना कि नगरों में कार्यात्मक कार्यों के विशिष्टीकरण की तीव्रता और परिणाम के आधार पर कार्यात्मक समानता या असमानता देखी जाती है।

10.7 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. आधारभूत एवं अनाधारभूत सर्वप्रथम प्रयोगकर्ता थे–

   (अ) प्लेटो (ब) सुकरात

   (स) रूसो (द) ट्रिवार्था

2. न्यूनतम आवश्यक विधि का विकास का श्रेय जाता है–

   (अ) उलमेन डैसी (ब) लियोन्टफी

(स) जेम्स (द) इसार्ड

3. व्यवसायक पिरामिड का प्रयोग किया है–

(अ) जोन्स (ब) मैकार्टी

(स) डिकिन्सन (द) बीवर

4. मैकेन्जी ने उत्पादन वितरण के आधार समुदायों को कितने प्रकार में बाटा है–

(अ) 6 (ब) 5 (स) 7 (द) 4

आदर्श उत्तर– (1) स (2) अ (3) ब (4) द

10.8 सन्दर्भ सूची

1- Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69

2. तिवारी राम चन्द्र (1983) : अधिवास भूगोल–विकास एवं सम्भावनाएं भूसंगम अंक–1 संख्या , प्र0 41.

3. Singh R.L. et al (1976) : Geographic Dimensions of Rural Settlements (Vanansi : N.9 S.7)

4. सिंह काशी नाथ एवं सिंह जगदीश ;1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, वाराणसी : तारा पब्लिकेशन वाराणसी।

5. Demange on, A (1920) : L/ Habitation Rural France, Annals de Geography e. Vo1. 29. PP-352-375.

6. Lefevre, MA (1945) : Principles Geography Humain (Bruxelles)

7. Haggett, P (1965) Location Analysis in Human Geography (London) : Edward Arnold.

8. Chatterjee, S.P. (1964) Progress of (Geography) (Calutta) : Indian Science Congress Association.

9. तिवारी राम चन्द्र :अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

10- करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।

11. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

10.9 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

प्रश्न–1 आधारभूत अनाधारभूत संकल्पना से आप क्या समझते हैं इसके विकास की रूपरेखा को बताइये।

प्रश्न–2 आधारभूत–अनाधारभूत के निर्धारण में प्रयुक्त विधियों की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न–3 नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण में विधियों पर प्रकाश डालिए?

प्रश्न–4 नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण में भारतीय प्रयास के योगदान का विश्लेषण कीजिए?

इकाई–11 नगरीय तंत्र विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 कोटि आकार नियम

11.3 कोटि आकार नियम पर विभिन्न विद्वानों के विचार

11.3.1 भारतीय विद्वानों के विचार

11.3.2 भारतीय नगरों में कोटि आकार नियम

11.4 प्रधान नगर का नियम

11.5 नगरीय पदानुक्रम की संकल्पना

11.5.1 नगरीय पदानुक्रम के आधार

11.5.2 नगरीय पदानुक्रम के निर्धारण की विधियॉ

11.6 केन्द्र स्थलों के रूप में नगर

11.6.1 केन्द्र स्थल सिद्धान्त

11.6.2 केन्द्र स्थल की केन्द्रियता

11.6.3 केन्द्र स्थलों की पदानुक्रम

11.6.4 केन्द्र स्थलों का प्रभाव प्रदेश

11.7 सारांश

11.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न आदर्श उत्तर

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

11.0 प्रस्तावना

नगरीय भूगोल में जहाँ एक तरफ एकाकी नगर का अध्ययन का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है वहीं प्रादेशिक स्तर पर नगरों को स्थानिक विश्लेषण का भी महत्व कम नही है। यह विचार इस कथन पर आधारित है कि प्रादेशिक स्तर पर नगरीय स्वरूप एवं उनके स्थानिक वितरण में गहरा तथा महत्वपूर्ण सम्बन्ध पाया जाता हैं यही कारण है कि किसी क्षेत्र में नगरों के आकार में वृद्धि के साथ–साथ उनकी संख्या में कमी देखी जाती है। दूसरे शब्दों में उनके स्वरूप और आन्तरिक कार्यो में गहरा तथा विशेष प्रकार का सम्बन्ध पाया जाता है यही कारण है कि वर्तमान अध्याय में नगरों के बीच इस पारस्परिक सम्बन्ध के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिनमें नगरीय आकार एवं कोटि, नगरीय पदानुक्रम, केन्द्र स्थलों के रूप में नगर का विकास में योगदान आदि प्रमुख विचारणीय बिन्दु है।

11.1 उद्देश्य

यह आवास भूगोल की ग्याहरवा अध्याय है इसमें आप स्पष्ट कर सकेगें कि–

- नगरीय आकार एवं उनके स्थानिक वितरण में प्रादेशिक स्तर का महत्व, स्पष्ट कर सकेगें
- विश्व के आर्थिक विकास और नगरीयकरण को नगर कोटि तथा जनसंख्या के आकार के मध्य सम्बन्ध जान सकेगें।
- नगरीय तंत्र विश्लेषण, केन्द्रस्थल की भूमिका का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- नगरीय पदानुक्रम के निर्धारण में प्रविधियों को जान जायेगे।

11.2 कोटि आकार नियम

यह इस नियम पर निर्धारित करता है कि किसी बड़े क्षेत्र में छोटे नगरों की संख्या सर्वाधिक होती है, तथा मध्यम नगरों की संख्या उससे कम और बड़े आकार के नगरों की संख्या सबसे कम पाई जाती है यह विश्व के अधिकांश भागों में भिन्न आर्थिक विकास और नगरीकरण के स्तर वाले क्षेत्रों में समान रूप से दिखाई देता है इस आधार पर इसकी परख नगरीय कोटि और नगरीय जनसंख्या के बीच सह–सम्बन्धों के माध्यम से पता लगाते है।

किसी क्षेत्र के नगरों की जनसंख्या के आधार पर अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया जा है इस प्रकार सबसे बड़े नगर की कोटि 1, उससे छोटी की क्रमशः 2, 3, 4.....आदि होती जायेगी। प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता **फेलिक्स अवरबाच(1913)** ने सर्वप्रथम यह पाया कि इन कोटि संख्याओं को एक अक्ष और उनसे सम्बन्धित जनसंख्या को दूसरी अक्ष के सहारे प्रदर्शित करने पर उनके बीच एक नियमित सम्बन्ध उभर कर सामने आता है।

नगरों की जनसंख्या को 1, 1/2, 1/3, 1/4.....1/n क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है। इसे निम्न सूत्र के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है–

$$Ph = \frac{P_1}{h}$$

जहाँ Ph= अवरोही क्रम में व्यवस्थित जनसंख्या

P1 = वृहत्तम नगर की जनसंख्या

n = उस क्षेत्र में ा नगर की कोटि

कोटि आकार विधि के अनुसार यदि किसी क्षेत्र में उस बड़े नगर की जनसंख्या 60 लाख है तो उससे नीचे दशवे नगर की जनसंख्या मात्र वृहत्तम नगर की जनसंख्या का दसवॉ भाग अर्थात केवल 6 लाख होगी **चार्ल्स टी.स्टीवर्ट (1958)** के अनुसार कोटि आकार विधि आकार के अनुसार कई दृष्टिकोणों से नगरों के वास्तविक वितरण का उचित आकलन किया जाता। इन्होंने 72 देशों के प्रमुख आधार मानते हुए नगरों से मिले आँकड़ों के आधार पर इस विधि के परीक्षण करने का प्रयास किया। स्टीवर्ट के मतानुसार अधिकांश देशों में प्रथम कोटि के नगरों की जनसंख्या दूसरी कोटि के नगरों की जनसंख्या से दोगुनी नहीं हो पाती है। जैसे युरग्वे में प्रथम एवं द्वितीय कोटि के नगरों में यह अन्तर अत्यधिक (17 गुना) पाया जाता है जबकि 72 देशों का यह औसत अन्तर 3.25 है। भारत, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, रूस आदि में यह अनुपात (2.24) और संयुक्त राज्य अमेरिका में 2 से अधिक पाया जाता

है। किसी क्षेत्र में कोटि–आकार नियम के अनुसार प्रथम नगर का प्रत्याशित आकर निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात करते हैं– $P = \frac{åP}{åR}$

क्षेत्र के सभी नगरों की जनसंख्या के योगफल में सभी नगरों की कोटियों के व्युत्क्रम के योगफल का भाग देने पर 'S' प्राप्त किया जा सकता है इसमें कोटि संख्या 2, 3, 4, 5 .....n का भाग देने पर क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे..... n वे नगर की अनुमानित जनसंख्या को ज्ञात किया करते है। किसी क्षेत्र के नगरों में कोटि आकार नियम का चित्रिय प्रदर्शन निम्न दो प्रकार कर सकते है–

1) जब रेखाचित के निर्माण में अंकगणितीय अक्ष का प्रयोग किया गया है तब नगरों के कोटि–आकार सम्बन्ध को दिखाने वाली रेखा वक्राकार अर्थात ऊपर की ओर नतोदर रूप लिये हुए दिखाई पड़ती है।

2) यदि रेखाचित्र के दोनों अक्षों के सहारे लाग मापक का उपयोग किया जाये, तो (जनसंख्या और कोटि दोनों के परास बहुत अधिक उपर्युक्त होता है) तो कोटि–आकार सम्बन्ध को प्रदर्शित करने वाली रेखा सीधी पाई जाती है।

11.3 कोटि–आकार नियम पर विभिन्न विद्वानों के मत

भूगोल तथा उससे सम्बद्ध सभी विषयों में अनेक ऐसे सिद्धान्त को सम्मिलित किये जाने है जिनसे नगरों के रूप और स्थिति सम्बन्धी विशेषताओं का परोक्ष या आपरोक्ष रूप से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। फेलिक्स ओयरबक प्रथम जर्मन विद्वान थे जिन्होंने 1913 में नगरों ने रूप और कोटि के बीच एक नियमित सम्बन्धों का जिक्र किया। 1936 में एच0 डब्ल्यू सिंगर ने गारेटो के आय विधि को नगरों के आकार के अनुसार वर्गीकरण में प्रमुख तत्व का उल्लेख किया। सन् 1949 में जी0के0 जिफ नगरों के रूप और कोटि नियम में मानव आचरण व्यवहार के सामान्य सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया तथा इसके लिए एक सूत्र का प्रतिपादन भी किया।

$$Pr = P_1/r$$

यहाँ Pr = r कोटि के नगर की संख्या P1 = प्रधान नगर की जनसंख्या एवं r = साथ होने वाले नगर की कोटि

यह सूत्र अमेरिका के 100 बड़े महानगरों के अध्ययन करने के उपरान्त उनकी 1940 की जनसंख्या के आधार पर प्रस्तुत किया गया। इस सूत्र के अनुसार यदि P_1 अर्थात सबसे बड़े नगर की जनसंख्या का मान 10 लाख है तो इससे 10वें स्थान के नगर की जनसंख्या 1 लाख और सौवें स्थान के नगर की जनसंख्या 100 हजार होगी। इस सूत्र के अनुसार प्रधान नगर की जनसंख्या से अन्य नगरों की जनसंख्या रूप या कोटि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

वाल्टर क्रिस्टालर और **अगस्त लाश** ने कोटि आकार विधि की आपेक्षा (अधिवासों नगरों) के कार्यात्मक सम्बन्धों पर विशेष जोर दिया है **जिफ** की भाँति यहाँ भी नगरों के रूप एवं उनके कार्यों में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है **लाश** के **क्रिस्टालर** के स्थिर (k) मान के स्थान पर स्थान पर अस्थिर क–मान का प्रयोग किया उनके अनुसार नगरों के पदानुक्रमीय वर्ग विभिन्न रूप में वितरित होते हैं तथा उनमें सातत्वय का अभाव पाया जाता है। 1939 में **मार्क जेफरसन** ने 51 देशों के नगरों की आँकड़ों के आधार पर प्रधान नगर और दूसरी कोटि के नगर के जनसंख्या के मध्य के सम्बन्ध के

विवेचन का प्रयास किया उनके अनुसार 28 देशों में प्रधान नगर की जनसंख्या दूसरी कोटि के नगर की जनसंख्या की दुगुनी और 18 देशों में तिगुनी थी।

एच0ए0सिमन (1955) ने नगर रूप सम्बन्धों की क्रमबद्धता को प्रदर्शित किया। उनके अनुसार कोटि–आकार वितरण परम्परागत और सैद्धान्तिक दोनों ही दृष्टिकोण से अनेक लघु यादृच्छिक शक्ति को प्रदर्शित करता है। सी0टी0 स्टीवर्ट (1958) के अनुसार कोटि–आकार विधि यद्यपि कई स्थितियो में नगरों का आकार के अनुसार उनके वास्तविक वितरण का समुचित अनुमान है। बी0जे0 एल0 बेरी (1961) ने नगरों के आकार में तीन प्रकार के उल्लेख किये गये हैं– 1) सामान्य लघुगणक वितरण अर्थात कोटि–आकार विधि के अनुसार वितरण। (2) प्रधान नगर आकार वितरण अर्थात् नगरों का वितरण श्रेष्ठता के अनुरूप परन्तु कोटि आकार विधि के विपरीत, एवं (3) उभय चरम दशाओं के बीच का वितरण। 1968 में रोलमैन ने अर्जेन्टाइन के नगरों का अध्ययन किया और जिफ के विधि के विपरीत मध्य वितरण सम्बन्धी मत प्रस्तुत किये। इसी प्रकार ए0 लिस्की ने प्रधान नगर की उन विशेषताओं का उल्लेख किया।

11.3.1 भारतीय विद्वानों के मत–

भारत में भी अनेक भूगोलविदों ने कोटि–आकार विधि का अध्ययन **करते** हुए जिफ, ब्राउनिंग एवं गिल्स तथा स्टीवर्ट द्वारा सुझाई गयी विधियों का उपयोग किया है ऐसा ही एक प्रयास एनबी0के0 रेड्डी ने (1969) ने 1961 की जनगणना के आधार पर कृष्णा गोदावरी डेल्टा के नगरीय आवासों के अध्ययन में किया। इन्होंने प्रधान नगर की जनसंख्या को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया–

$$P_1 = \frac{SP}{S_1/R}$$

जहाँ S P = सभी नगरीय आवासों की कुल जनसंख्या

P_1 = प्रधान (Primate) नगर की जनसंख्या

1/R = कोटि का व्युत्क्रम कोटि 1 है तो दूसरा कोटि के 1/R का मान 0.5 तीसरी का 0.3 तथा चौथी का 0.25 होगा इन सबका कुल योग S_1/R कहलायेगी।

ओ.पी. सिंह ने (1971) ने कोटि–आकार विधि के अनुसार पर उत्तर प्रदेश के केन्द्र स्थलों के वितरण के आधार पर आकलन प्रस्तुत करते हैं। अध्ययन में पाया। पी0सी0 दक्ष (1974) ने ब्राउलिंग और ग्रिल्स द्वारा प्रस्तुत विधि के आधार पर तमिलनाडु के नगरों के स्थानिक प्रतिरूप के विश्लेषण करने का प्रयास किया। श्री निवास गुप्ता (1982) ने भी पूर्वी पठारी प्रदेश के नगरों में कोटि–आकार सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए क्षेत्र के नगरों को वास्तविक आकार में उसके स्वरूप 48.99 छोटा या बड़ा के रूप में पाया है।

11.3.2 भारतीय नगरों में कोटि–आकार नियम

भारत में नगरों की जनसंख्या में लगातार एवं सतत् वृद्धि हो रही है जिससे उनके आकार में भी बदलाव दिखाई पड़ रहा है। परन्तु इस वृद्धि की दर विभिन्न कोटि के नगरों में अलग–अलग तरीके के सारणी में भारत के प्रमुख नगरों में सन् 1961 से 1991 के बीच जनसंख्या आकार में वृद्धि को प्रदर्शित किया गया है।

भारत के सात प्रधान नगरों की जनसंख्या आकार में वृद्धि–

कोटि	जनसंख्या आकार वृद्धि का अनुपात		
	1961-71	1971-81	1981-91
I	1.000	1.000	1.000
I I	0.712	0.675	0.490
I I I	0.708	0.650	0.778
IV	0.674	0.350	0.315
V	0.300	0.234	0.508
VKI	0.249	0.396	0.349
VKII	0.294	0.252	0.215

1991 की जनगणना के आधार पर भारत के दस प्रमुख नगरों के जनसंख्या आकार को प्रधान (Primate) नगर के अनुपात में व्यक्त किया गया है।

भारत के दस प्रमुख नगरों के कोटि–आकार का अनुपात–

नगर	कोटि क्रम	कोटि–आकार का अनुपात	
		वास्तविक	आपेक्षित
मुम्बई	1	1.000	1.000
कलकत्ता	2	0.863	0.500
दिल्ली	3	0.666	0.333
चेन्नई	4	0.426	0.250
हैदराबाद	5	0.339	0.200
बंगलौर	6	0.327	0.166
अहमदाबाद	7	0.261	0.143
पुणे	8	0.194	0.125
किशनपुर	9	0.167	0.111
लखनऊ	10	0.133	0.100

उपर्युक्त सारिणी के सूक्ष्म निरीक्षण से पता चलता है कि भारत के नगर में कोटि–आकार विधि युक्तिसंगत नहीं ज्ञात होता है।

11.4 प्रधान नगर का नियम

किसी क्षेत्र या प्रदेश के सबसे बड़े नगर को उस क्षेत्र का प्रधान नगर कहा जाता है। इस प्रधान नगर और इससे नीचे के छोटे नगरों के मध्य आपसी सम्बन्धों का विवेचन अनेक भूगोलविद्ो द्वारा किया गया है जैसे जिफ के कोटि आकार विधि के आधार पर प्रधान नगर की जनसंख्या आकार में दूसरे क्रम के नगर का दोगुना पाई जाती हैं, प्रधान नगर और द्वितीय नगर के बीच का यह

अनुपात जो प्रमाणित तौर पर 2:1 का अनुपात होना चाहिए। मार्क जेफरसन ने भी 1939 में एक लेख द्वारा विश्व के 51 देशों को आधार मानकर प्रथम और द्वितीय स्तर के नगरों के बीच उनके सम्बन्धों के अध्ययन पर जोर दिया। उनके अनुसार 28 देशों में प्रधान नगर का आकार का स्वरूप द्वितीय स्तर के नगर की आपेक्षा दोगुना से अधिक और 18 देशों में 3 गुना से अधिक पाया जाता है। हाल में ए लिन्सकी ने भी उन कारकों के मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। जिससे नगर की प्रधानता को प्रोत्साहन मिलता है।

11.5 नगरीय पदानुक्रम की संकल्पना

अंग्रेजी भाषा का hireach शब्द का शाब्दिक अर्थ है। विशप, पुरोहित या धार्मिक नेता। यह धर्म के क्रमानुपतिक संगठन को प्रदर्शित करता है। भूगोल में अधिकांशतः, बस्ती भूगोल में इस शब्द का प्रयोग आवासों के क्रमिक वर्गों/श्रेणियों अथवा समूहों को प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग जाता है। आकार (क्षेत्रीय/जनसंख्याद्ध या केन्द्रीयता आदि के आधार पर किसी क्षेत्र के आवासों के अवरोही अथवा आरोही क्रम में वर्गों समूहों या श्रेणियों में विभाजन की प्रक्रिया की अवस्था को उनका पदानुक्रम या अनुक्रम कहते हैं। पदानुक्रम की संकल्पना नगरों के अलावा उनके कार्यों, प्रदेशों, वस्तुओं आदि पर भी प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार पदानुक्रम कई तरह का होता है– (1द्ध क्षेत्रीय या जनसंख्या आकार पर आधारित आकार–पदानुक्रम एवं (2) कार्यों पर आधारित कार्यात्मक पदानुक्रम आदि कार्यात्मक पदानुक्रम के निर्धारण में केन्द्रीयता मान का उपयोग किया गया हैतथा नगरों की पहचान केन्द्र स्थलों के रूपप में की जाती है।

11.5.1 नगरीय पदानुक्रम के आधार–

किसी क्षेत्र में या प्रदेश नगरों के पदानुक्रम के निर्धारण में निम्न आधारों का उपयोग किया जा सकता है–

1) **जनसंख्या–** नगरों के पदानुक्रम निर्धारण में जनसंख्या आकार को एक प्रमुख आधार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इस दृष्टि से सर्वाधिक जनसंख्या वाले नगर को प्रथम वर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इसके उपरान्त अवरोही क्रम में व्यवस्थित करके अन्य नगरों की श्रेणियाँ को भी निर्धारित कर ली जाती है। भारतीय जनगणना विभाग द्वारा जनसंख्या के आधार पर नगरों को निम्नलिखित 6 वर्गों में विभाजित किया जाता है–

प्रथम वर्ग	100000 से अधिक
द्वितीय वर्ग	60,000 से 99,999
तृतीय वर्ग	20,000 से 49,999
चतुर्थ वर्ग	10,000 से 19,999
पंचम वर्ग	5,000 से 9,999
षष्ठ वर्ग	5,000 से कम

1981 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश में 22 प्रथम वर्ग, 20 द्वितीय वर्ग, 67 तृतीय वर्ग, 90 चतुर्थ वर्ग, 81 पंचम वर्ग और 10 षष्ठम् वर्ग के नगर थे।

2) **केन्द्रीय कार्य–** केन्द्रीय कार्य वे कार्य होते है जो आपनी प्रकृति एवं स्वभाव के कारण कुछ ही नगरों के भीतरी भागों में पाये जाते हैं। ये वे कार्य है जिनका केन्द्रीकरण नगर में पाया जाता है।

इन्हीं के कारण नगर को एक केन्द्र स्थल के रूप में पाया जाता है। इन केन्द्रीय कार्यों को प्रशासनिक, वाणिज्यिक, शैक्षिक, परिवहन एवं संचार आदि कई वर्गों में बॉटा गया है।

3) सेवा क्षेत्र– किसी नगर को उसके केन्द्र के सेवा क्षेत्र प्रभाव क्षेत्र आदि के विस्तार के कारण नगरों को विभिन्न पदानुक्रम वर्गों में बॉट सकते है। क्रिस्टालर के अनुसार पदानुक्रम की सबसे छोटी इकाई का सेवा क्षेत्र छोटा होता है और कम विस्तृत होता है। प्रथम स्तरीय सेवा केन्द्र में द्वितीय, तृतीय आदि स्तर के केन्द्रस्थलों के सेवाकेन्द्रों को सेवा क्षेत्र आपने आप सम्मिलित हो जाता है।

4) आर्थिक आधार– वाणिज्य, उद्योग, परिवहन के आदि आधार पर कार्यों को भी नगरों के पदानुक्रम के निर्धारण में उपयोग कर सकते है। उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में प्रथम पदानुक्रम के अन्तर्गत वे नगर आते हैं। जहाँ औद्योगिक श्रमिकों का लगभग एक तिहाई भाग भारी उद्योगों में लगा हुआ है। जैसे– कानपुर, मोदी नगर, गाजियाबाद आदि।

11.5.2 नगरीय पदानुक्रम के निर्धारण की विधियाँ

नगरों के पदानुक्रम के निर्धारण में अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है। इनमें निम्न चार विधियों का विशेष महत्व प्रदान किया गया है।

1) कार्यों की संख्या और विविधता पर आधारित विधि–

यह विधि सबसे सरल और लोकप्रिंय है जिसमें नगर में सम्मिलित समस्त सुख सुविधाओं और सेवाओं को पदानुक्रम निर्धारण में ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार जिस नगर में कार्यों की संख्या सर्वाधिक होती है। उस पदानुक्रम में प्रथम स्थान प्राप्त होता है। स्मेल्स ने नगरीय पदानुक्रम का निर्धारण में व्यापारिक कार्यों के महत्व पर जोर देते हुए स्कूल, अस्पताल, विशेष चिकित्सा सुविधा विभिन्न शिक्षा केन्द्रों, समाचार पत्र, थोक व्यापार आदि सेवाओं का उपयोग किया है।

डब्ल्यू कारूथर्स (19670) ने इंग्लैण्ड एवं वेल्स के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों के पदानुक्रम के निर्धारण हेतु खुदरा व्यापार के आँकड़ों का उपयोग करते है। इसी प्रकार जे0आर0 टारण्ट (1968) ने बस्तियों के खुदरा व्यापार से सम्बन्ध तीन विशेषताओं का निर्धारण करने के प्रयास किया है। जो इस प्रकार है–

(1) खुदरा दुकानों की संख्या (2) दुकानों की उनके प्रकार के अनुसार संख्या (3) विशेष दुकानों की संख्या के आधार पर पदानुक्रमण।

2) कार्यो की केन्द्रीयता पर आधारित विधि– यह विधि आवास और उसके प्रभाव क्षेत्र के बीच सम्बन्धों की व्याख्या करती है जिसके अन्तर्गत उसकी केन्द्रोन्मुखी शक्ति का आकलन किया जाता है। इन्ही केन्द्रीय कार्यो के कारण हम उन्हे केन्द्र स्थल के नाम से जानते है।

3) कार्यो के संख्यात्मक मान पर आधारित विधि– इस विधि में केन्द्रीय स्थान (नगर) द्वारा उसके समीवतर्ती क्षेत्रों या प्रदेश को प्रदान की जाने वाली सेवाओं या कार्यो की गणना के आधार पर की जाती है इसमें अधिवास में उपलब्ध कार्यो/सेवाओं की संख्या या स्तर के आधार पर मूल्यांकित करके मान दिया जाता है। इस अंकमान के सम्पूर्ण योग के आधार पर क्षेत्र के नगरों/केन्द्र स्थलो को विभिन्न पदानुक्रम वर्गो में विभक्त कर लिया जाता है। डब्ल्यू0के0डी0डेवीज ने किसी कार्य की केन्दीयता के परिकलन हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया है –

$$c = \frac{t \times 10}{h}$$

c - कार्य की स्थिति गुणांक

t -

4) जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना पर आधारित विधि –

किसी नगरीय केन्द्र की केन्द्रीयता के निर्धारण में उसकी व्यवसायिक संरचना को विशेष योगदान महत्व दिया जाता है। व्यवसायिक संरचना पर क्रिस्टालर ने एतदर्थ फुटकर व्यापार में लगे व्यक्तियों को मुख्य आधार बनाया था।

11.6 केन्द्र स्थलों के रूप में नगर

प्रत्येक नगर आपने चारों तरफ के ग्रामीण क्षेत्र में एक द्वीप की तरह पाया जाता है। इसकी स्थिति इसके आसपास के क्षेत्र के सन्दर्भ में केन्द्रीय होती है, जिसे वह अनेक प्रकार की सेवायें प्रदान करता है। मार्क जेफरसन के अनुसार नगर स्वयं अपने आप अर्थात विकसित नही होते है। नगर में संग्रहीत इन्ही कार्यो के लिए उसे केन्द्र स्थल या सेवा केन्द्र के रूप में जाना जाता है। आपने आसपास के नगरों का प्रभाव क्षेत्र के लिए सम्पादित किये गये कार्यो को ही केन्द्रीय कार्य कहा जाता है। इनकी अवस्थिति कुछ ही आवासीय क्षेत्रों में पाई जाती है तथा ये अपनी अधिकतम को अपनी सेवायें प्रदान करते है ये कार्य सर्वव्यापी नही होते है तथा इनके सकेन्द्रण से केन्द्रस्थल के आसपास प्रभाव क्षेत्र का निर्माण हो जाता है किन्तु जिसका प्रयोग सभी करते है उसे केन्द्रीय कार्य कहते है। उत्पादन क्रियाओं को इसमें नही मिलाया जाता है। इसी प्रकार विश्वविद्यालय, आयुर्वेद संस्थान ऐसी सेवाओं को भी इसके परिधि के बाहर रखा जाता है दूसरे तरीके से कहा जाए तो ऐसा कार्य जो लोगों के आवागमन से जुड़ा होता है केन्द्रीय कार्य कहा जाता है।

11.6.1 केन्द्र स्थन सिद्धान्त–

अंग्रेजी भाषा के शब्द (Central Place) का सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1931 में मार्क जेफरसन ने किया। इसके पहले अमेरिका समाज शास्त्री गालपिन ने बताया था कि समान भौतिक सांस्कृतिक दशाओं में व्यापार केन्द्रों की स्थिति षट्कोणीय पाई जाती है तथा इन केन्द्रों की सेवाक्षेत्र ऐसे वृत्तों से घिरे होते है जो परस्पर अति छादन करते है। इस प्रकार बाबेल ने 1927 ई0 में ही केन्द्र स्थल सिद्धान्त के प्रारम्भिक बीजारोपण का दावा किया है। सन् 1933 मे वाल्टर क्रिस्टालर ने दक्षिणी जर्मनी के केन्द्रस्थलों पर एक शोध ग्रंथ प्रस्तुत कर केन्द्रस्थल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह सिद्धान्त मानव और आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है।

केन्द्र स्थल सिद्धान्त किसी क्षेत्र में जनसंख्या समुदायों और आवासों के अन्तरण में एक क्रमबद्ध अवस्था ढूंढने का प्रयास करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सेवाकेन्द्रो या केन्द्रस्थलों का एक निश्चित पदानुक्रम होता है।

केन्द्र स्थल सिद्धान्त का भूतल पर जनसंख्या समुदाय एवं आवासों के मध्य में अनुक्रम ढूढ़ने के प्रयास से सम्बन्धित होता है। बेरी के अनुसार केन्द्र स्थल सिद्धान्त केन्द्र स्थलों की अवस्थिति, आकार, प्रकृति अन्तरण एवं उनकी क्रियाओं का सिद्धान्त में पदानुक्रम की सात प्रमुख विशेषताएं सम्मिलित होती है–

(1) केन्द्र स्थलों की स्थानीय अर्न्तनिर्भरता। (2) समूचे समूह की आर्थिक समग्रता। (3) केन्द्रीयता का सतत स्तरण। (4) अन्तरालीय क्रम के अनुसार अन्तरालीय स्थापना। (5) सेवाओं की क्रमिक वृद्धि।

(6) क्रम में तीन क्रमों का होना। (7)क्रम के अनुसार सांख्यिकी पिरामिड।

जगदीश सिंह के मतानुसार केन्द्रस्थल सिद्धान्त का सम्बन्ध ऐसे अधिवास पुंजो की

अवस्थिति, अन्तरण, आकार, अनुक्रम एवं प्रकृति से है जो समीपवर्ती क्षेत्र को व्यापार एवं सेवाओं को प्रदान करते है और केन्द्र स्थल कहे जाते है।

केन्द्र स्थल सिद्धान्त – प्रमुख प्रयोगकर्ता –

केन्द्र स्थल सिद्धान्त के विकसित एवं लोकप्रिय बनाने में अनेक विद्वानो का योगदान है जिसमें से निम्न का उल्लेख प्रमुख रूप से किया जा सकता है।

(1) वानथ्यूनेन का सिद्धान्त –

वानथ्यूनेन जर्मन भूगोलविद् थे जिन्होने 1826 ई0वीं में आपनी पुस्तक "Der Isolierte" द्वारा कृषि अवस्थिति का सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रस्तुत किया। इन्होने एक संमागी क्षेत्र की कल्पना करते हुए एक नगरीय केन्द्र के चारों ओर विभिन्न भूमि उपयोग की 6 मेखलाओं के विकास की संभावना व्यक्त की। नगर से बाहर की ओर इन पेटियों का फैलाव क्रमशः निम्न प्रकार से पाया जाता है। (1) बाजार–बागवानी एवं दुग्ध उत्पादन। (2) जलाऊ लकड़ी एवं कास्ठ उत्पादन। (3) परती एवं चारागाह सहित अनाज उत्पादन। (4) परती एवं चारागाह उत्पादन। (5) तीन खेत प्रणाली। (6) पशुपालन।

वानथ्यूनेन महोदय ने आपने सिद्धान्त में एक नौगम्य नदी और एक छोटे नगर का जिक्र किया है जिसका एक अलग से छोटा प्रभाव क्षेत्र है। नदी के उपलब्ध परिवहन सुविधा के कारण उपर्युक्त पेटियों का विस्तार पूर्णतः स्वकेन्द्रित न होकर नदी के सहारे विस्तारित हो जाता है। ध्यूनेन का यह सिद्धान्त आर्थिक मूल्य अथवा भूमि उपयोग के सिद्धान्त पर आधारित है। इसका (P) परिकलन प्रति इकाई फसल की लागत (a) है जो वास्तविक संसार के तथ्यों से मेल नही खाता है परन्तु केन्द्र स्थल सिद्धान्त के विकास की दिशा में प्रथम प्रयास होने के नाते इसक विशेष महत्व है।

(2) जे0जे0 कोल (J.G. Kohal) के सिद्धान्त – जे0जे0 कोल (1891) में नगर तथा उसके प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के बीच सम्बन्धों का निरीक्षण करते हुए नगर की उत्पत्ति और विकास में परिवहन मार्गो के महत्व पर बल दिया।

(3) सी0जे0 गालपिन के विचार – सी0जे0 गालपिन (1915) ने किसानों और वाणिज्य केन्द्रो के निवासियों के बीच सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन पर बल देते हुए केन्द्र स्थल सिद्धान्त का प्रारम्भिक बीजारोपण किया। इन्होंने कहा कि व्यापार केन्द्रो की अवस्थिति यातायात की अरीय प्रवाह के द्वारा निर्धारित होती है तथा इनके सेवा क्षेत्र ऐसे वृत्तो का निर्माण करते है जिनके समीपवर्ती भाग उभयनिष्ठ होते है।

(4) अल्फेड वेबर का सिद्धान्त – जर्मनी के महान अर्थशास्त्री अल्फ्रेड बेवर (1909) के औद्योगिक अवस्थिति सिद्धान्त को न्यूनतम लागत सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इसमें सभी स्थानों पर उत्पादों की समान मांग, समान मूल्य तथा न्यनतम लागत की अवस्थिति वाले कारखानों को सर्वाधिक लाभ जैसी मान्यताओं के आधार पर बेवर ने आपने विचार व्यक्त किया कि उद्योग की स्थापना ऐसे स्थानों पर होती है जहाँ परिवहन लागत न्यूनतम हो अर्थात जहाँ कच्चामाल और उत्पादित वस्तुओं के परिवहन का खर्च सबसे कम होगा उसे वस्तु के भार को दूरी से गुणा कर लिया जाता तो उसका मूल्य ज्ञात करते है। उनके अनुसार परिवहन लागत बिन्दु भार उद्योगो (लौह–इस्पात आदि) में कच्चे माल के स्रोत तथा भार वर्(क (बेकरी आदि) में बाजार केन्द्रो के निकट स्थित होता है।

(5) वाक्टर क्रिस्टालर का केन्द्र स्थल सिद्धान्त .

प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेता क्रिस्टालर ने अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त केन्द्र स्थल सिद्धान्त दक्षिणी जर्मनी के केन्द्रस्थल नामक एक शोध प्रबन्ध के रूप में 1933 में प्रस्तुत किया। बाद में 1938 की अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल कांग्रेस के अधिवेशन में भी इसकी जानकारी दी गई। प्रारम्भ में क्रिस्टालर के विचारों को जर्मनी में अधिक सहमति नही मिली परन्तु 1940–50 के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका में इसे महत्व मिलने के बाद यह विश्व के अन्य देशो में भी सर्वमान्य हो गये।

क्रिस्टालर के सिद्धान्त का निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक नगरीय केन्द्र का विकास एवं पोषण उसके आसपास स्थित उत्पादन क्षेत्र से होता है जो नगर जितना बड़ा होता है उसका प्रभाव क्षेत्र उतना ही बड़ा तथा उसके द्वारा प्रदत्त सेवायें उतनी ही कठिन और उच्च स्तर की होती है – जैसे थोक व्यापार बड़े बैंक, विशेष प्रकार के अस्पताल, विश्वविद्यालय एवं प्रशासन केन्द्र।

वान थ्यूयेन के सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक केन्द्र स्थल का एक वृत्तीय प्रभाव क्षेत्र होता है तथा नगर की स्थिति इसके केन्द्र में होती है परन्तु यदि तीन या अधिक स्पर्शी वृत्त खीचे जाये तो उनके बीच या तो असीमित क्षेत्र रह जाएगा अथवा उनके पार्श्व भाग उभयनिष्ठ हो जायेगा।

क्रिस्टालर ने आपने अध्ययन के द्वारा दक्षिणी जर्मनी में सात स्तरीय केन्द्र स्थलों के औसत आकार, उनके बीच की औसत दूरी, उनके षट्भुजीय व्यापार क्षेत्र के क्षेत्रफल तथा उससे लाभान्वित जनसंख्या का वितरण दिया है।

क्रिस्टालर ने इन केन्द्र स्थलों में उपस्थित केन्द्रीय सेवाओं को प्रशासन संस्कृति, स्वास्थ्य, सामाजिक सेवा, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन का संगठन, व्यापार राजस्व उद्योग, श्रम बाजार का संगठन और यातायात से सम्बद्ध माना जाता है। उन्होने इन सेवाओं को निम्न, मध्यम एवं उच्च वर्ग वाले तीन भागों में विभक्त किया है साथ ही क्रिस्टालर ने प्रत्येक केन्द्र स्थल की केन्द्रीयता के आकलन हेतु टेलीफोन सेवाओं (प्रति हजार निवासियों पर टेलीफोन की संख्या तथा टेलीफोन घनत्व) के आधार का प्रयोग किया है।

क्रिस्टालर के दक्षिणी जर्मनी के अध्ययन के आधार पर सबसे छोटा स्तर का केन्द्र स्थल बाजार पुरवा है जिसमें रजिस्ट्रार कार्यालय, पुलिस स्टेशन, डॉक्टर, दन्त चिकित्सक, पशु चिकित्सक (केवल कुछ केन्द्रों में) एक छोटा होटल, जिला बैंक की स्थानीय शाखा, क्राफ्ट्रसमैन, मरम्मत की दुकानें, शराब बनाने का कारखाना, प्रधान डाकघर, टेलीफोन एवं रेलवे स्टेशन आदि सेवायें पाई जाती है।

बाजार पुरवा से ठीक ऊपर कस्बा केन्द्र, एक सूक्ष्म स्तरीय प्रशासकीय केन्द्र होता है जिसमें पुलिस, न्यायालय, पुस्तकालय, प्राथमिक विद्यालय, संग्रहालय, दवा विक्रेता, पशु चिकित्सालय, बैंक, सिनेमा, स्थानीय व्यापारिक परिषद्, विशेष वस्तुओं की दुकानों जैसी सुविधाएं उपलब्ध होती है। काउन्टी नगर का विकास उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ में प्रशासकीय केन्द्रो के रूप में हुआ। जिला नगर का आर्थिक दृष्टिकोण से विशेष महत्व है जहॉ जिला श्रम कार्यालय, उच्च शिक्षा संस्थान, विशेषज्ञ चिकित्सक, कई सिनेमा घर, विशिष्ट दुकाने, गोदाम, दैनिक समाचार पत्र, जिला बैंक, कई डाकघर आदि सेवाये उपलब्ध है।

(1) केन्द्र स्थलों का 'K' मान .

एक केन्द्र स्थल द्वारा उसके बाजार क्षेत्र में स्थित अथवा उसके द्वारा सेवित निम्न स्तरीय केन्द्र स्थलों की संख्या को K–मान कहा जाता है। इस प्रकार K मान किसी क्षेत्र में किसी उच्च स्तर के केन्द्र स्थलों और उससे निम्न स्तर के केन्द्र स्थलों के मध्य अनुपात का घोतक होता है। क्रिस्टालर

के अनुसार किसी क्षेत्र के सबसे छोटे केन्द्र स्थल पर जितने आवास निर्भर होते है वही उसी पदानुक्रम का K मान होता है। इसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। $K = T - \frac{P T_1}{P_1}$

क्रिस्टालर के अनुसार किसी भी क्षेत्र के समूचे पदनुक्रम के लिए एक स्थिर (Fixed) एवं अचर K मान होता है अर्थात एक पदानुक्रम की किसी भी दो श्रेणी के केन्द्र स्थलों और उनके प्रदेशो के मध्य एक आपरिवर्तित K मान पाया जाता है। इसीलिए क्रिस्टालर के सिद्धान्त को स्थिर K सिद्धान्त तथा उनके पदनुक्रम को स्थिर K पदनुक्रम कहा जाता है।

बाजार नियम . यह व्यापारिक प्रभावित क्षेत्र के लिए अधिक उपयोगी है। केन्द्र स्थल सिद्धान्त में यह सबसे महत्वपूर्ण नियम है जिसमें केन्द्र स्थलों की संख्या सर्वाधिक होती है। इसमें K का मान 3 होता है जिसमें निम्न स्तर के केन्द्र स्थल और उनके प्रदेश उससे बड़े प्रत्येक केन्द्र स्थल और उसके प्रदेश के साथ नीडित या सेवित होते है। इस नियम के अनुसार निम्न वर्ग के केन्द्र स्थलों की स्थिति उससे ऊँचे वर्ग के केन्द्र के षड्भुजीय बाजार क्षेत्र के सिरों पर पाई जाती है।

(2) यातायात नियम . इस नियम के अनुसार K का मान 4 पाया जाता है जिसमें केन्द्र स्थलों की संख्या में 1, 4, 16, 64, 256 की ज्यामितीय श्रेणी में वृद्धि होती है। (वास्तविक वृद्धि 1, 3, 12, 48, 192,.....) यह अवस्था यातायात प्रधान क्षेत्र के लिए उपर्युक्त होती है जिसमें निम्न श्रेणी के केन्द्रस्थल षटभुज के शीर्ष बिन्दुओं पर स्थित होते है।

3) प्रशासकीय नियम – इस नियम में K का मान 7 होता है। इसमें केन्द्रों और प्रदेशों की कुल संख्या 1, 7, 49, 342..... के अनुपात में बढ़ती है। यह नियम प्रशासकीय नियंत्रण वाले क्षेत्रों के लिए उपर्युक्त होता है। जिसमें छोटे स्तर के 6 केन्द्र स्थल उच्च स्तर के केन्द्र स्थल के प्रभाव क्षेत्र के अन्तर स्थित होते हैं।

उपर्युक्त तीन नियमों के अन्तर्गत विकसित प्रत्येक केन्द्र स्थल तंत्र में परिवहन तंत्र का विकास अलग प्रकार से पाया जाता हैं इनमें से कोई भी एक नियम किसी प्रदेश में प्रभावशाली हो सकता है।

आलोचना– क्रिस्टालर के सिद्धान्त की आलोचना कई आधारों पर की जाती है–

1) क्रिस्टालर का केन्द्र स्थल सिद्धान्त इतना अधिक सैद्धान्तिक सूक्ष्म एवं उत्तम किस्म का है कि इससे वास्तविक संसार में लागू करना अत्यन्त जटिल है।

2) क्रिस्टालर के अनुपात और सम्बन्ध क्षेत्र अनुभवों पर आधारित न होकर वैचारिक मान्यताओं से अधिक प्रभावित है ई0 उलमैन के अनुसार स्थानीय विशेषताओं के कारण केन्द्र स्थल के वितरण की यह योजना लागू नही हो पाती है।

3) औद्योगीकरण जैसे कुछ महत्वपूर्ण कारक सिद्धान्त से भिन्न केन्द्र स्थलों के प्रतिरूप का निर्माण करते हैं कुछ औद्योगिक नगरों में तो केन्द्रीय कार्यों का विकास काफी बाद में देखा जाता है।

4) केन्द्रीय स्थलों की स्थिति और विकास पर बदलती हुई परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार यातायात के साधनों में विकास का भी केन्द्र स्थलों पर असर पड़ता है।

5) क्रिस्टालर का केन्द्रीयता निर्धारित करने का आकार (टेलीफोनों की सख्यां) पर्याप्त एवं उपर्युक्त नहीं है।

6) अगस्त लाश का केन्द्र स्थल तंत्र –

महान जर्मन अर्थशास्त्री अगस्त लाश (1940) ने क्रिस्टालर के सिद्धान्त में कुछ सुधार करके उसे अधिक व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया। लॉश ने जिस आर्थिक भू–दृश्य की सैद्धान्तिक संकल्पना का प्रतिपादन किया है। वह आपेक्षाकृत अत्याधिक कठिन परन्तु वास्तविक है। क्रिस्टालर की ही तरह लाश ने भी माना कि किसी प्रदेश में या क्षेत्रों का सर्वोत्तम विकास षटभुजीय ढंग से ही किया जा सकता है।

प्रारम्भिक बिन्दु के चारो ओर विकसित महानगरीय षटभुजीय क्षेत्र को 60^0 के छः खण्डों में बाँटा जा सकता है। जिनमें केन्द्र स्थलों के प्रतिरूप में समरूपता साम्यता पाई जाती है।

क्रिस्टालर एवं लॉश की तुलना–

क्रिस्टालर के सिद्धान्त एवं लॉश के सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है–

1) क्रिस्टालर का सिद्धान्त उच्चतम सेवा वाले कार्य तथा प्रादेशिक महानगर से प्रारम्भ होते है तथा ऊपर से नीचे क्रम की की ओर अग्रसर होते है इसके विपरीत लॉश सबसे निचली कार्याधार वाली सेवा एवं सबसे छोटे केन्द्र स्थल (केन्द्रीय ग्राम) से प्रारम्भ कर ऊपर की ओर महानगर तक बढ़ते हैं।

2) क्रिस्टालर का सिद्धान्त जहाँ तृतीयक सेवाओं के लिए महत्वपूर्ण हेतु उपर्युक्त है। वही लॉश का मॉडल माध्यमिक क्रियाओं हेतु अधिक समचीन है।

3) क्रिस्टालर के बड़े केन्द्र स्थलों में छोटे केन्द्र स्थलों के सभी कार्य एक समान पाए जाते हैं परन्तु लॉश के तंत्र में ऐसा जरूरी नही है इनके छोटे केन्द्रों में उच्च स्तरीय कार्य उपलब्ध तथा निम्न स्तरीय कार्य अनुपस्थित हो सकते हैं।

4) क्रिस्टालर के षट्भुजीय तंत्र में K मानों को स्थिर एवं अचर रखा जाता है। जिससे उनका पदानुक्रम काफी मजबूत बन जाता है। जिससे इनका सिद्धान्त काफी सरल एवं लचीला पाया जाता है तथा वास्तविकता के अधिक नजदीक लगता है।

5) क्रिस्टालर का मॉडल सरल एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। जबकि लॉश का पदानुक्रम कठिन एवं व्यवहारिक है।

7) वाल्टर इजार्ड की विचारधारा –

वाल्टर इजार्ड भी अपना विचार व्यक्त किया है कि यद्यपि लॉश ने षट्भुजीय प्रतिरूप को स्वीकार तो किया है, परन्तु जो उन्होंने बताया है उसके अनुसार लागू होने की स्थिति में नही है। लॉश ने उभोक्ताओं के समान वितरण की संकल्पना प्रस्तुत की है परन्तु उनके सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न केन्द्रस्थलों पर सेवाओं की संख्या में असमानता पायी जाती है, सामान्यता उच्च स्तरीय केन्द्र स्थलों के चारों ओर समीपवर्ती भाग में जनसंख्या का घनत्व उत्तरोत्तर कमी होता जाता है। अतः केन्द्रस्थल के निकट बाजार क्षेत्र का आकार सबसे छोटा मिलता है। जो दूरी बढ़ने के साथ–साथ उत्तरोतर बढ़ता जाता है। इस तरह केन्द्र स्थलों का बाजार क्षेत्र षटभुज के रूप में न पाकर ऋजुरेखीय विषमकोण चतुर्भुज का रूप को धारण कर लेता है।

8) फिलब्रिक का समावेशी पदानुक्रम सिद्धान्त –

संयुक्त राज्य अमेरिका के भूगोलवेत्ता ए0के0 फिलब्रिक (1957) ने अपने प्रसिद्ध लेख 'प्रादेशिक मानव भूगोल में क्षेत्रीय कार्यात्मक संगठन के सिद्धान्त' द्वारा संयुक्त राज्य के नगरो और सेवा केन्द्रो

के विशेष सन्दर्भ में समावेशी पदनुक्रम सिद्धान्त प्रतिपादित किया यह सिद्धान्त निम्न तीन मान्यताओं के आधार पर प्रस्तुत की है।

(i) विभिन्न व्यवसायों में अर्न्तसम्बन्ध –इसके अनुसार कृषि, पशुपालन, खनन, निर्माण, उद्योग, व्यापार आदि मानव व्यवसाय में अन्तः–सम्बन्ध प्राप्त होता है। इनमें से कुछ अन्तःसम्बन्ध समांग क्षेत्रो के मध्य पाए जाते है। यहाँ समांग क्षेत्र से अभिप्राय ऐसी छोटी या बड़ी क्षेत्रीय इकाई से है जिनकी कुछ प्रमुख विशेषताओं में समानता पाई जाती है इसमें लघु क्षेत्र के रूप में मक्का या गन्ना में खेत तथा बड़े क्षेत्र के रूप में कृषि प्रदेश का उल्लेख किया जा सकता है।

(ii) पातिक क्षेत्रों की उत्पत्ति – विभिन्न इकाइयों अथवा कार्य इकाइयों के बीच अर्न्तसम्बन्धों से पातिक क्षेत्रों या कार्यात्मक प्रदेश का आविर्भाव होता है एक लघु नोडल क्षेत्र का उदाहरण एक फार्म हाउस है जिसके केन्द्र में खेत घर स्थित होता है इसी प्रकार बड़ा नोडल क्षेत्र एक नगर का व्यापार क्षेत्र है जिसमें विभिन्न एक समान क्षेत्र पाये जाते है।

(iii) समावेशी पदानुक्रम का नोडल संगठन – ऐसे कार्यात्मक इकाईयों के कार्यात्मक क्षेत्रों के समावेशी पदनुक्रम में पाया जाता है यह समावेशी पदनुक्रम, जिसमें छोटे क्रम/स्तर के केन्द्र और उनके नोडल क्षेत्र (प्रभाव क्षेत्र बड़े स्तर के केन्द्र के प्रभाव क्षेत्र के अन्दर स्थित होते है। इस पदनुक्रम में छोटे केन्द्र के कार्य बड़े केन्द्र में भी पाये जाते है।

फिलब्रिक ने ऐसे कार्यात्मक संगठन को एक पिरामिड के रूप में प्रस्तुत किया है। इस पिरामिड में त्रिभुज को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि वे पिरामिड के आधार पर एक–दूसरे के सामान्तर नीचे से ऊपर की ओर इस प्रकार व्यवस्थित है ताकि प्रत्येक वह कार्य जो उच्च श्रेणी के केन्द्र में विशेषीकरण प्राप्त कर लिया है निम्न श्रेणी के केन्द्र को आधार प्रदान करता है।

फिलब्रिक ने विभिन्न स्तर के केन्द्रों उनके प्रतिनिधि कार्यो तथा नोडल क्षेत्रों को निम्न सात समावेशीय पदानुक्रमीय वर्गो में विभक्त करने का प्रयास किया है।

(1) प्रथम श्रेणी का केन्द्र – इसका प्रतिनिधि कार्य उपभोग है। श्वेतघर (Form Stead) इसका उदाहरण है।

(2) द्वितीय श्रेणी का केन्द्र – इसका प्रतिनिधि कार्य फुटकर व्यापार (Retail Trade) है। उदाहरण ग्राम।

(3) तृतीय श्रेणी का केन्द्र – इसका प्रभाव कार्य थोक व्यापार (Whole Sale) है। उदाहरणार्थ कस्बा या नगर।

(4) चतुर्थ श्रेणी का केन्द्र – इसका प्रमुख कार्य स्थान परिवर्तन (Transhipment) है जैसे बड़ा नगर और उसका प्रभाव क्षेत्र।

(5) पंचम श्रेणी का केन्द्र – इसका प्रमुख कार्य विनिमय (Exchange) है उदाहरण महानगर और उसका क्षेत्र।

(6) षष्ठम श्रेणी का केन्द्र –इसका प्रधान कार्य नियंत्रण (Comtrol) है। उदाहरण का महानगर।

(7) सप्तम श्रेणी का केन्द्र–इसका प्रतिनिधित्व कार्य नेतृत्व प्रदान करने का है। उदाहरण प्राथमिक नगर (Primate city) एवं उसका प्रभाव क्षेत्र।

फिलब्रिक ने सांतव श्रेणी के केन्द्रों को केन्द्र स्थल नाम दिया है तथा प्रथम से तीन तक के

केन्द्रो को नाभीय स्थल कहा है। उनके अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में चतुर्थ, पंचम और षष्ट्म श्रेणी के केन्द्रो की संख्या क्रमशः 300, 50 और 10 पाई जाती है। इनमें साउथ मेन्ज चतुर्थ श्रेणी सेण्ड लुइस प्रथम श्रेणी शिकागो, षष्ट्म श्रेणी और न्यूयार्क सप्तम श्रेणी के केन्द्रो का उदाहरण है। इन्होने न्यूयार्क, शिकागो और लांस ऐन्जिल्स को क्रमशः पूर्व, मध्य क्षेत्र और पश्चिम में नेतृत्व करने वाले सातवीं श्रेणी के केन्द्रो के रूप में माना है।

9) विकास ध्रुव सिद्धान्त –

विकास ध्रुव संकल्पना का प्रतिपादन पेराक्स (1955) महोदय ने किया। वोडविले ने इसे भौगोलिक समष्टि के लिए उपयोगी बनाया बाद में मिर्डाल (1967) हिर्समेंन (1969) ने इसे अधिक उपयोगी बनाया। इस सिद्धान्त के विकास में अगस्त लॉश के विचारों का स्पष्ट प्रभाव रहा है।

पेराक्स के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र में विकास ध्रुवों का एक तंत्र होता है, जो उसके विकास में सहायक होता है विकास ध्रुव एक नगरीय कोटि और ग्रामीण पृष्ट प्रदेश वाला केन्द्र है जिसमें विकास को बढ़ावा देने की क्षमता विकसित होती है इससे उपकेन्द्रीय शक्ति आकर्षित होती है। एक आकर्षण और प्रक्षेपण के केन्द्र के रूप में प्रत्येक रूप में प्रत्येक विकास ध्रुव का एक प्रभाव क्षेत्र होता है।

10) नवाचारो के स्थानिक प्रसारण का सिद्धान्त –

इस सिद्धान्त की उत्पत्ति भी केन्द्र स्थल सिद्धान्त से जुड़ी हुई है इसके प्रणेता हैगर स्ट्रेण्ड है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी क्षेत्र में नवाचारों का प्रसारण एक स्थानीय सामाजिक तंत्र में सर्वाधिक साधनों तथा व्यक्तिगत सम्पर्को के मार्ग से उच्च श्रेणी अधिवासो (नगरोंद्ध से उससे निम्न श्रेणी वाले आवासों की तरफ होता रहता है। इस सिद्धान्त की मान्यताओं के आधार पर यह कहा जाता है कि स्थानीय प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर संचार क्षेत्र कार्य करते है।

11.6.2 केन्द्र स्थलों की केन्द्रीयता –

किसी बस्ती द्वारा सम्पादित केन्द्रीय कार्यो को गुणवत्ता और परिमाण को उसकी केन्द्रीयता के नाम से जाना जाता है। यह केन्द्रीयता उस केन्द्र स्थल में उपलब्ध कार्यो की संख्या विशेषता, विस्तार तथा उनकी मात्रा द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रकार केन्द्रीयता किसी केन्द्र स्थल के महत्व का परिचय कराती होती है। अधिकांशतः केन्द्रीयता का सीधा सम्बन्ध जनसंख्या आकार से होता है जो एक परीक्षा चर के रूप में कार्य करता है। यह इसलिए क्योकि जनसंख्या आकार जितना ही बड़ा होता है केन्द्र में सेवाओं की मांग उतनी ही बड़ी होती है तथा केन्द्र में उन्हे आकर्षित करने की क्षमता भी उतनी ही प्रबल सम्भावना होती है। केन्द्रीयता के दो स्वरूप है –

(1) अन्तर प्रादेशिक अवस्थिति या मार्ग सगंमता जिसका मापक केन्द्र स्थल के कार्यो के विस्तार एवं उसकी सम्बद्धता के विभिन्न संकेताकों द्वारा किया जाता है।

(2) केन्द्रस्थल कार्यो की संख्या एवं गुणवत्ता। डब्ल्यू खान (1977) के अनुसार केन्द्रीयता किसी क्षेत्र के लोगो के उपभोक्ता, व्यवहार की अभिव्यक्ति है जिसके आधार पर केन्द्रस्थलों को पदानुक्रम वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। केन्द्रीयता दो प्रकार की होती है। (1) कार्यात्मक केन्द्रियता (2) सम्पूर्ण केन्द्रियता।

केन्द्रीयता मापन की विधिया – केन्द्रस्थलों की केन्द्रीयता के मापन हेतु अनेक विधियाँ का उपयोग किया जाता है। क्रिस्टालर ने केन्द्रियता के मापन में टेलीफोन सम्बन्धनों का प्रयोग किया। इसे उन्होने केन्द्र स्थल पर उपलब्ध टेलीफोन सम्बन्धों की संख्या में से प्रदेश की प्रति व्यक्ति जनसंख्या

के औसत के आधार पर आकलन करके टेलीफोन सम्बन्धों की संख्या को घटाकर प्राप्त किया है।

11.6.3 केन्द्र स्थलों का पदानुक्रम –

केन्द्र स्थलों की केन्द्रीयता या आकार पर उनकी अवरोही वर्गो समूहो या श्रेणियों में विभाजन को उसका पदानुक्रम या अनुक्रम कहते है। इस प्रकार पदानुक्रम एक क्रमिक सोपानिक व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी क्षेत्र के केन्द्रस्थलों/ नगरों को कई वर्गो में बांटा जाता है जैसे विकास ध्रुव, विकास केन्द्र, विकास बिन्दु, सेवा केन्द्र एवं केन्द्रीय ग्राम वृहतनगर, महानगर, नगर, कस्बा, गांव एवं पुरवा अथवा क्रिस्टालर के अनुसार प्रादेशिक राजधानी प्रांतीय मुख्यनगर, लघु प्रान्तीय राजधानी, जनपद नगर, काउण्टी नगर, कस्बा केन्द्र एवं बाजार पुरवा के रूप में मिलता है।

11.6.4 केन्द्र स्थलों के प्रभाव प्रदेश –

प्रभाव प्रदेश किसी केन्द्र स्थल के चारों ओर स्थित एक ऐसा क्षेत्र है जो उससे भली भांति अभिगम्य हो तथा जो उसकी केन्द्रीय सेवाओं से लाभान्वित होता हो। यह क्षेत्र सामान्य स्तर के अन्य केन्द्र स्थलों की आपेक्षा उस केन्द्र से कार्यात्मक तौर पर अधिक सम्बद्ध होता है। इसी क्षेत्र से केन्द्र को कच्चा माल की उपलबधता और खाद्य्य पदार्थो की आपूर्ति होती है तथा इसी में वह केन्द्रीय सेवाओं और उत्पादित वस्तुओं की भी पूर्ति को प्रदान करता है। इसे प्रभाव क्षेत्र या व्यापार क्षेत्र या बाजार क्षेत्र या सेवा क्षेत्र, पूरक क्षेत्र आदि कई नामों से जाना जाता है।

प्रभाव प्रदेश का परिसीमन –

केन्द्र स्थलों के प्रभाव प्रदेश को संयाजित और सीमांकन हेतु अनेक विधियों का उपयोग किया गया है जिन्हे सुविधानुसार निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) अनुभावात्मक या गुणात्मक विधियाँ

(2) सैद्धान्तिक या सांख्यिकीय विधियाँ

नीचे कतिपय सांख्यिकीय विधियों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

द्वितीय स्तरीय प्रभाव प्रदेश –

(1) **फतेहपुर नगर प्रदेश** – चार द्वितीय स्तरीय प्रभाव प्रदेशों में सबसे बड़ा क्षेत्र (जनपद का 36.39 प्रतिशत क्षेत्र) फतेहपुर नगर के अन्तर्गत समाहित है जो आपने चतुर्दिक फैले प्रभाव प्रदेश की 6.14 लाख जनसंख्या को पोस्ट एवं तार, महाविद्यालय, अस्पताल, नगर–क्षेत्र, पुलिसख, बैंक, व्यापार आदि की सुविधाये प्रदान करता है। प्रादेशिक स्तर पर यह कानपुर महानगर का प्रभाव क्षेत्र माना जाता है।

(2) **बिन्दकी प्रदेश** – इस प्रदेश का विस्तार बिन्दकी तहसील के पूर्वी भाग (खजुहा और मलवा विकास खण्ड) तथा तेलियानी विकास खण्ड (फतेहपुर तहसील) पर पाया जाता है जिसके अन्तर्गत फतेहपुर जनपद जिसके अन्तर्गत फतेहपुर जनपद का 22.56 प्रतिशत क्षेत्र समाहित है तथा यह उसकी 21.22 प्रतिशत जनसंख्या को केन्द्रीय सेवायें प्रदान करती है। बिन्दकी कस्बा फतेहपुर नगर के बाद जनपद का दूसर प्रमुख केन्द्र स्थल है जिसे तहसील, मुख्यलय, म्यूनिसिपल बोर्ड, पुलिस स्टेशन, अस्पताल, डाक एवं तार कार्यालय, बैक, बाजार की सुविधाओं के लाभ प्राप्त है।

(3) **कोड़ा–जहानाबाद प्रदेश** – कोड़ा जहानाबाद प्रदेश का विस्तार जनपद के पश्चिमी वाह्य भाग में एक छोटे क्षेत्र (जनपद का 14.28 प्रतिशत) पर पाया जाता है जिसमें अमौले एवं देवमई विकास–खण्डों के क्षेत्र सम्मिलित है। कोड़ा–जहानाबाद फतेहपुर जनपद का तीसरा सबसे बड़ा कस्बा

है। मुगल शासक काल में प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र होने के नाते यहाँ चिकित्सा, डॉक्टर, शिक्षा, बैंक केन्द्रित है। मुख्य परिवहन मार्ग से दूर होने के कारण उस केन्द्र स्थल का भरपूर विकास नही हो पा रहा है। इसके प्रभाव का कुछ भाग कानपुर जनपद में भी फैला है।

(4) **खागा प्रदेश –** फतेहपुर जनपद के पूर्वी भाग में खागा तहसील के अधिकांश भाग पर फैले खागा प्रभाव प्रदेश जनपद का दूसरा महत्वपूर्ण प्रदेश है (जनपदीय 27.14 प्रतिशत) खागा कस्बा की स्थिति दिल्ली–कलकता प्रमुख यातायात मार्ग पर पाई जाती है जिसके कारण एक प्रमुख व्यापार केन्द्र के रूप में विकसित होने के साथ–साथ यह तहसील, मुख्यालय, विद्यालय, डिस्पेंसरी, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिनेमा, सार्वजनिक पुस्तकालय, डाक एवं तार, बैंक, बाजार आदि की सुविधाएं प्रदान करता है। इसके प्रभाव प्रदेश में विभिन्न स्तर के कुल 29 केन्द्र स्थल स्थित है। खागा कस्बा की स्थिति फतेहपुर जनपद के पूर्वी भाग में होने के कारण यह इलाहाबाद नगर के प्रभाव क्षेत्र में मिलता है।

11.7 सारांश

नगर क्षेत्रों का भौतिक विस्तार तथा उसके क्षेत्रफल, जनसंख्या आदि की बेतह्रासा वृद्धि ने एक समुचित ढंग सही वास्तविक रूप में आकलन करने के लिए एक तंत्र के रूप प्रस्तुत किया गया है।

यह तंत्र कोटि आकार नियम में किसी क्षेत्र के नगरों की जनसंख्या आकार के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने आपने आधार सूत्रों के द्वारा आकलन का प्रयास किया है। भारतीय विद्वानों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आप भलीभाँति समझ गये हों कि किसी क्षेत्र के सबसे बड़े नगर को उस क्षेत्र का प्रधान नगर कहते हैं इस प्रधान नगर और इनसे छोटे नगरों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों को विद्वानों कोटि आकार नियम के तहत निर्धारित किया है। नगरीय पदानुक्रम के विश्लेषण किन आधारों का प्रयोग किया गया है तथा केन्द्र स्थल सिद्धान्त ने नगरों के विकास व्यवस्थित आधार विश्लेषण किया है। आप इन इकाई में भलीभाँति समझ गये होगें।

11.8 स्वमूल्यांकन आदर्श उत्तर

1) कृषि अवस्थिति सिद्धान्त का प्रतिपादक कौन है?

   अ) बेवर ब) हैरिस

   स) थ्यूनेन द) शफी

2) प्रधान नगर किसकी अवधारणा है–

   अ) जिफ ब) शेफर

   स) स्टीवर्ट द) मार्क जेफरसन

3) केन्द्र स्थल सिद्धान्त के प्रतिपादक है–

   अ) डब्ल्यू क्रिस्टालर ब) डेविस

   स) पावेल द) बेवर

4) K4 प्रदर्शित करता है–

   अ) बाजर ब) यातायात

स) प्रशासन द) क्षेत्रीय

आदर्श उत्तर–

1) स 2) द 3) अ 4) ब

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69

2. तिवारी राम चन्द्र (1983) : अधिवास भूगोल–विकास एवं सम्भावनाएं भूसंगम अंक–1 संख्या , प्र0 41.

3. Singh R.L. et al (1976) : Geographic Dimensions of Rural Settlements (Vanansi : N.9 S.7)

4. सिंह काशी नाथ एवं सिंह जगदीश ;1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, वाराणसी : तारा पब्लिकेशन वाराणसी।

5. Demange on, A (1920) : L/ Habitation Rural France, Annals de Geography e. Vo1. 29. PP-352-375.

6. Lefevre, MA (1945) : Principles Geography Humain (Bruxelles)

7. Haggett, P (1965) Location Analysis in Human Geography (London) : Edward Arnold.

8. Chatterjee, S.P. (1964) Progress of (Geography) (Calutta) : Indian Science Congress Association.

9. तिवारी राम चन्द्र :अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

10- करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।

11. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

11.10 अभ्यास प्रश्न सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु

प्र0–1 नगरीय तंत्र से आप क्या समझते हैं? नगरीय पदानुक्रम के निर्धारण में कौन–कौन सी विधियॉ है, समझाइये?

प्र0–2 नगरीय तंत्र के निर्धारण में कोटि आकार नियम पर प्रकाश डालिए?

प्र0–3 नगरीय पदानुक्रम के संकल्पना की विवेचना कीजिए?

प्र0–4 नगरीय विकास में केन्द्र स्थल सिद्धान्तों की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए?

इकाई–12 नगर–प्रदेश पारस्परिक प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 ग्रामीण–नगरीय उपान्त

- 12.2.1 नगर उपान्त की संकल्पना
- 12.2.2 नगरीय उपान्त की विशेषतायें
- 12.2.3 नगरीय उपान्त के प्रकार
- 12.2.4 विकास के कारक
- 12.2.5 उपान्त का सीमांकन
- 12.2.6 भारतीय प्रयास
- 12.2.7 बरेली नगर का ग्रामीण–नगरीय उपान्त

12.3 उपनगर

12.4 उपग्रह नगर

- 12.4.1 उपनगर व उपग्रह नगर में अन्तर

12.5 सन्ननगर

- 12.5.1 सन्नगर का विकास
- 12.5.2 सन्ननगर की विशेषतायें
- 12..5.3 सन्ननगर का परिसीमन
- 12.5.4 विश्व के प्रमुख सन्ननगर

12.6 परिनगर

- 12.6.1 परिनगर के प्रकार
- 12.6.2 परिनगर का सीमांकन
- 12.6.3 परिनगर के परिसीमन के भारतीय प्रयास

12.7 सारांश

12.8 शब्द सूची

12.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

12.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

12.11 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

12.0 प्रस्तावना

अधिवास भूगोल के लिये लेखन की यह इकाई भूगोल के आधार पाठ्यक्रम MAGO – 109 की बारहवीं इकाई है। इकाई में आप "नगर–प्रदेश पारस्परिक प्रभाव" का अध्ययन करेगें। इसके अन्तर्गत ग्रामीण–नगरीय उपान्त की संकल्पना, विशेषतायें, प्रकार, विकास के कारक, उपान्त का सीमांकन आदि सम्मिलित हैं। उपनगर क्या है। उपनगर व उपग्रह नगर कैसे विस्तृत होते है तथा उनके मध्य के अन्तर को भी स्पष्ट करेगें।

इस इकाई के अन्तर्गत सन्ननगर के विकास का भी अध्ययन करेगें। सन्ननगर का विकास कैसे हुआ, उसकी विशेषता क्या है, विश्व के देशों के प्रमुख सन्ननगर का अध्ययन करेगें। परिनगर, प्रकार, सीमांकन व परिसीमन का भारतीय का भारतीय प्रयास क्या है, इसका भी अध्ययन कर सकेगें।

12.1 उद्देश्य

भूगोल में आधार पाठ्यक्रम MAGO - 109अधिवास भूगोल की बारहवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- अधिवास भूगोल के अन्तर्गत ग्रामीण व नगरीय उपान्त को पूर्णतया समझ सकेगें।
- नगरीय उपान्त की संकल्पना, विशेषताये, प्रकार कारक व सीमांकन आदि को जान सकेगें।
- बरेली नगर का ग्रामीण–नगरीय उपान्त की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- सन्ननगर, परिनगर आदि नगरों की विभिन्नता में अन्तर को समझ सकेगें।
- परिनगर के लिये भारतीय भूगोल वेत्ताओं के प्रयास का अध्ययन कर सकेगें।

12.2 ग्रामीण–नगरीय उपान्त

नगर के बाह्य भाग में नगर व गाँवों के बीच की संक्रमण मेखला, जिसमें नगर ग्रामीण दोनों प्रकार विशेषता पायी जाती है। ग्रामीण–नगरीय उपान्त कहते है। यह नगर की बाहरी सीमा पर विसरित होता हैं नगर व ग्रामीण क्षेत्र के बीच का भाग द्वान्भा मेखला (Twilight Zone) कहलाती है जिसमें नगरीय प्रसरण के कारण नगर की आकृति तारा जैसी प्रतीत होता हे। इसमें नगरीय भूमि उपयोग उंगलियों की भांति प्रमुख राजमार्गों के सहारे होती है। नगर उपान्त प्रदेश को तीन उपभागों में बांटा जा सकता है।

डिकिन्सन के अनुसार "नगर की बाह्य सीमा पर नगरीय और ग्रामीण भूमि उपयोग के बीच एक मध्यवर्ती पेटी पायी जाती है, जिसमें दोनों की विशेषतायें पायी जाती है।"

एन्ड्रयूज के अनुसार "ग्रामीण नगरीय उपान्त आन्तरिक से संलग्न आर्थिक नगर की बाह्य सीमा पर स्थित क्षेत्र है, जिसमें विशिष्ट कृषि और नगरीय भूमि उपयोग की विशेषतायें मिले–जुले रूप में पायी जाती है।"

12.2.1 नगर उपान्त की संकल्पना–

नगर उपान्त की संकल्पना वान थ्यूनेन (1826) के कृषि भूमि उपयोग सिद्धान्त में उल्लेखित है, जिसमें केन्द्रिय नगर के चारों ओर भूमि उपयोग की मेखला का वर्णन किया गया है। क्रिस्टालर महोदय के सिद्धान्त के बाद इसमें अधिक बल मिला। नगर उपान्त (Urban tring) शब्द का प्रयोग

(T.L Smith) ने 1937 में बर्हिवती क्षेत्र के लिये किया। साल्टर (1940) में स्पष्ट किया कि ग्रामीण नगरीय उपान्त में नगरीय तथा कृषि भूमि उपयोग का समिश्रण मात्र है।

बेहरवीन ने इस मत का समर्थन किया। हेरिस महोदय ने स्पष्ट किय कि 60 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय उपान्त कि अन्तर्गत आती है। एन्ड्रयूज महोदय ने इसे सतत् विकसित भाग को नगर उपान्त तथा उसकी परिधि से सलंग्न भाग को "ग्राम्य नगर उपान्त" कहा है। पेस्टालान महोदय ने उपान्त को ऐसा संक्रमण स्वीकार किया जहाँ ग्रामीण भूमि उपयोग, नगरीय भूमि उपयोग हेतु दिशा प्रदान करती हे। इसको गिब्स महोदय ने "परिवर्तनशीलता" व ह्वाइट हैण्ड ने "विषमता को उपान्त" कहा है।

12.2.2 नगरीय उपान्त की विशेषतायें–

नगरीय उपान्त नगर की बाहरी सीमा का वह क्षेत्र है जहां ग्रामीणता का परिदृश्य दिखता है। जहां अच्छे अधिवास सड़कों के किनारे, कल कारखाने व अन्य कार्य विकसित होने लगते है। नगर का बाह्य क्षेत्र होने कारण, सीवेज कूड़ा करकट, वाटर वर्क्स, गोल्फ कोर्स, हवाई अड्डा, बूचडखाना तेल डिपों आदि पाया जाता है। फिरे महोदय ने निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया।

1. उत्पादक भूमि का हनन
2. भूमि का असमान आकार
3. परिवहन व टैक्स
4. भूमि मूल्य में वृद्धि
5. जनसंख्या

पहल ने उपान्त मेखला को निम्न चार भागों में विभाजित किया।

(अ) अलगाँव –इसमें नयी इमारतों बहुलता रहती हे, जो पुरानी इमारतों से पूर्णतया भिन्न रहती है।

(ब) चयनात्मक आप्रवासन –उपान्त पेटी में निवास करने वाले मध्य आय वाले आप्रवासक होते है, जो आपनी जीविका हेतु नगर पर निर्भर होते है। इसका मुख्य आकर्षण केन्द्र नगर है। इनकी सारी गतिविधियाँ नगर में ही होती है। ये नगर के मूल निवासी होते है।

(स) अभिगमन–उपान्त निवासी सुबह या शाम उपान्त क्षेत्रों की ओर आवागमन करते है।

(द) भौगौलिक और सामाजिक पदानुक्रमों का मिलाप–इस पेटी में निवास करने वाली जनसंख्या आपने भरण–पोषण हेतु नगर पर निर्भर रहती है परन्तु दिन प्रतिदिन इस पर दबाव बनता जाता है, जिस कारण नगर का रूपान्तरण हो जाता है।

12.2.3 नगरीय उपान्त के प्रकार–

उपान्त मेखला दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है।

1. **प्रमुख नगरीय उपान्त** –यह नगर बाह्य सीमा से सटा हुआ क्षेत्र होता है, जिसमें अधिकतर गतिविधियाँ भी नगर के समान होता है। इसे नगरीय उपान्त, बाह्य आसन्न मेखला, वास्तविक आन्तरिक उपान्त मेखला, नगरीय–उपनगरीय उपान्त आदि के नाम से जाना जाता है।
2. **गौण नगरीय उपान्त** –यह प्रमुख नगरीय उपान्त के बाद ग्रामीण विशेषता की पेटी होती है, जिसमें ग्रामीण परिवेश की झलक साफ दिखायी देती है। ये ग्रामीण उपान्त, उपनगरीय क्षेत्र,

ग्रागर उपान्त, बाह्य उपान्त आदि नाम ने प्रचलित है। कुछ विद्वानों ने इसे मध्यवर्ती मेखला, अर्द्धनगरीय उपान्त व मध्यवर्ती उपान्त भी कहा है।

12.2.4 विकास के कारक–

नगरीय उपान्त के विकास के कारण निम्नलिखित है।

1. **नगरीय समस्यायें** – नगर में तीव्र जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, भीड़–भाड़, प्रदूषण आदि के कारण उपान्त क्षेत्रों का जन्म होता है। इसके उद्‌भव के निम्न कारण है।
   i. भूमि अभाव
   ii. मूल्य वृद्धि
   iii. भीड़, कोलाहल, प्रदूषण
   iv. नैतिक पतन और असुरक्षा
   v. सरकारी नीति
   vi. मानवीय वरीयतायें एवं इच्छा शक्ति
2. **बाह्य क्षेत्रों का आकर्षण** –इस वर्ग में गैर–नगरीय क्षेत्रों के आकर्षण का मुख्य योगदान है। जो निम्नलिखित है।
   i. सस्ती व पर्याप्त भूमि।
   ii. भीड़–भाड़ की कमी और प्रदूषण रहित पर्यावरण।
   iii. सामाजिक जीवन एवं पारस्परिक सहयोग।
   iv. सरकारी नीति
   v. व्यक्तिगत अभिरूचि।

12.2.5 उपान्त का सीमांकन–

ग्रामीण–नगरीय उपान्त वास्तव में एक जटिल समस्या जिसका मुख्य कारण नगरीय नवाचारों की वृद्धि के द्वारा इस नगरीय व उपान्त क्षेत्रों की पेटी भी बढ़ती जाती है। निरन्तर बढ़ता चला जाता है।

उपान्त सम्बन्धी मान्यतायें निम्नलिखित है।

1. **वेहरवीन** –वेहरवीन का 1942 में प्रकाशित लेख के अनुसार "जिसमें इन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों की ओर नगरीय विकास और प्रसार में यातायात और परिवहन साधनों में भूमिका को माना। इन्होंने इण्डियानापोलिस नगर के चतुर्दिक 150 व्यक्ति प्रति वर्गमील के जनसंख्या घनत्व के आधार पर उपान्त को माना।"
2. **एन्ड्रयूज** –रिचर्ड एन्ड्रयूज उपान्त के दो प्रकार है।

   (अ) नगरीय उपान्त – यह सक्रिय नगर है, जिसका उपयोग हर प्रकार के अधिवासी के लिये होता है।

   (ब) ग्रामीण–नगरीय उपान्त – यह नगरीय उपान्त का आसन्न क्षेत्र है, जिसमें नगरीय भूमि

उपयोग के साथ कृषि भूमि उपयोग भी शामिल हैं।

3. **हैरिस –** हैरिस ने अपने अध्ययन द्वारा ऐसे उपान्त नगरों की खोज की जिसकी 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या उपान्त क्षेत्रों में निवास करती है। इसको उन्होने 6 वर्गो में वर्गीकृत किया है।

   (क) औद्योगिक उपान्त

   (ख) औद्योगिक

   (ग) औद्योगिक समूह (Complex)

   (घ) आवासीय समूह

   (च) शयनागार

   (छ) खनन एवं औद्योगिक

4. **रोडहेवर –** एम. डब्लू रोडहेवर ने संयुक्त राज्य के मेडीसन नगर उपान्त क्षेत्र के परिसीमन हेतु तीन अभिसूचक मुख्य है।

   (क) कुल परिवारों में अकृषित परिवारों का अनुपात

   (ख) अकृषित – परिवारों का घनत्व

   (ग) इमारतों एवं भूमि का प्रति एकड़ मूल्य

5. **मार्टिन –**मार्टिन ने यूगेनी नगर के उपान्त क्षेत्र के सीमांकन हेतु एक परिवार आवासीय का उपयोग किया।

6. **हवाइंट हैण्ड**– इन्होंने उपान्त क्षेत्र को तीन उपकटिबन्धों में बाँटा है।

   (क) भीतरी उपान्त मेखला – केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (C.B.D)

   (ख) मध्यवर्ती उपान्त क्षेत्र – ये भीतरी उपान्त मेखला से लगे वास है।

   (ग) बाह्य उपान्त क्षेत्र – इसका फैलाव ग्रामीण क्षेत्र की कृषि भूमि पर प्राप्त होता है।

12.2.6 भारतीय प्रयास

कुछ विद्वानों ने उपान्त मेखला का परिसीमन किया ।

1. **सुन्दरम् –(1968)** के.वी. सुन्दरम् के अनुसार, उन ग्रामीण क्षेत्रों को सम्मिलित करना है, जिनमें नगरीय विकास क्षमता विधमान हो, यहाँ श्रम शक्ति के संघटन का विश्लेषण श्रेयस्कर है।

2. **उजागर सिंह – (1966)** उजागर सिंह ने उत्तर प्रदेश कवाल (KAVAL) क्षेत्रों के लिये सुझाव दिया।

   1) मकानों के प्रकार और निर्मित क्षेत्रों में अन्तर,

   2) निवासियों की व्यवसायिक संरचना,

   3) आवश्यक सेवाओं का विस्तार,

   4) चुना और ईंट भट्टो की स्थिति,

5) बच्चो के विद्यालय की संख्या

3. **श्रीवास्तव – (1971)** मिथिलेश कुमार श्रीवास्तव ने भारतीय नगरी के उपान्त क्षेत्रों के सीमांकन हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत किये।

   1) भूमि उपयोग प्रतिरूप,

   2) परिवहन सुविधाएँ,

   3) जनसंख्या की व्यवसायिक संरचना,

   4) सामाजिक आर्थिक विकास,

   5) टेलीफोन, पार्क, बिजली, पेयजल, सीवेज, जैसी सुविधाओं की उपलब्धता,

4. **ओ०पी० सिंह (1979)** –ओ०पी० सिंह ने नगरीय–ग्रामीण उपान्त के सीमांकन हेतु निम्न सुझाव दिये।

   1) भूमि उपयोग में परिवर्तन,

   2) मकानों के प्रकार तथा निर्मित क्षेत्र में परिवर्तन,

   3) कार्यात्मक संरचना,

   4) नगर की अत्यन्त आवश्यक सेवाओं का प्रसार,

   5) बड़े–बड़े औद्योगिक व कार्य इकाईयों की स्थिति एवं विस्तार

   6) जनसंख्या घनत्व तथा नगरीय विशेषताओं का संक्रमण,

12.2.7 बरेली नगर का ग्रामीण–नगरीय उपान्त

हीरा लाल (1987) में बरेली नगर के ग्रामीण–नगरीय उपान्त का विस्तृत अध्ययन किया। इनके अनुसार बरेली नगर के उपान्त की आन्तरिक सीमा, नगर पालिका की सीमा दोनों समान है। इस उपान्त का क्षेत्रफल 134.5 कि.मी. है। इसमें कुल 77 ग्राम सम्मिलित है। उपान्त का विस्तार वृत्ताकार न हो कर ताराकार रूप में होता है, जो केन्द्र से उसे 10 कि.मी. तक क्षेत्र तक पाया जाता है। इसका सर्वाधिक प्रसार अक्षीय सड़क मार्गो के किनारे होता है।

बरेली नगर उपान्त मुख्यतः दो नगरों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) मुख्य उपान्त

(2) गौण उपान्त

मुख्य उपान्त के अन्तर्गत वो गांव आते है जिसकी जनसंख्या 30 प्रतिशत से अधिक गैर कृषि कार्यों में लगी है। इसमें कुल 34 गांव शामिल है। इसका कुल क्षेत्रफल 5521हेक्टेयर इस क्षेत्र में नगरीय भूमि उपयोग व कार्यो की प्रधानता रहती है।

गौण उपान्त के अन्तर्गत 43 गाँव सम्मिलित है, जिसका कुल क्षेत्र 7958 हेक्टेयर है। इस क्षेत्र में ग्रामीण भूमि उपयोग व कार्यों की बहुलता पायी जाती है। 10 ग्राम नगरीय ग्राम कहलाते हैं, जो नगरपालिका की सीमा के अन्तर्गत आते है। इन क्षेत्रों का विकास अत्यधिक तीव्र गति से हो रहा है।

12.3 उपनगर

ग्रामीण नगरीय उपान्त 'संक्रमण क्षेत्र के अन्तर्गत लघु नगरीय एवं अर्द्धनगरीय क्षेत्र आते हैं, जिन्हें "उपनगर" व उपनगरीय क्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र में गैर कृषि व व्यवसायों की प्रधानता रहती है। कुछ लोग इसे उपग्रहीय नगर व उपग्रहों के समक्ष मानते है।

हेरिस व उलमैन के अनुसार आर्थिक संरचना व दूरी में अन्तर है। उपनगर मुख्य रूप से आवासीय तथा उपग्रहीय ऐसे उपनगर होते है, जो रोजगार देते है।

मर्फी के अनुसार उपनगर एक गुच्छित छोटी बस्तियों की तरह है जो मुख्य नगर के अत्यन्त समीप एवं सामाजिक–आर्थिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है।

उपनगरीयकरण वर्तमान शताब्दी के नगरीकरण को प्रमुख विशेषता है। हैरिस महोदय ने उपनगर वृद्धि के तीन मुख्य कारण बताए है।

1) मोटर यातायात की वृद्धि से दूरदराज के क्षेत्रों की दूरी कम होती जा रही है, जिस कारण उपनगर के आवासों में सरलता से पहुंचा जा सकता है। सस्ती भूमि व टैक्स के कम होने के कारण भी यह क्षेत्र विकसित हो गये हैं।

2) परिवार के घटते आकार व आवासो की अत्यधिक माँग ।

3) नगर के निर्मित क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुरूप प्रसरण की प्रवृत्ति का अभाव

हैरिस ने उपनगरों को निम्न छः भागों में वर्गीकृत किया है।

1) **औद्योगिक उपान्त नगर –** इसमें कल कारखानों की अत्यधिक संख्या मिलती है, जिनकी जनसंख्या कम पायी जाती है। इन क्षेत्रों में सस्ती भूमि, नगर पालिका करो में कमी आदि के कारण विकास हुआ है।

2) **औद्योगिक उपनगर –** इसमें कल कारखानों के अतिरिक्त काम करने वाले श्रमिक भी निवास करते है। उपनगर थोक व्यापार, फुटकर व्यापार व व्यावसायिक सेवाओं हेतु केन्द्रीय नगर पर निर्भर है।

3) **सम्मिश्र उपनगर**– इसके दो उपनगर है।

   1) अर्ध औद्योगिक उपनगर –इस उपनगर में उद्योगों का अनुपात 0.08 से अधिक पाया जाता है।

   2) अर्ध आवासीय उपनगर –इस उपनगर में अधिवासो को अधिकता देखी जा सकती है, यहाँ उद्योगों का अनुपात 0.04 से 0.08 के मध्य पाया जाता है।

4) **शयन कक्षीय या आवासीय उपनगर –** इसमें आवासीय मकानों की अधिकता रहती है। इस क्षेत्र में फुटकर व्यापार भी होता है। इसके अतिरिक्त सैरगाह और राजनीतिक केन्द्र भी इसके अन्तर्गत आते हैं।

5) **खनन –** औद्योगिक उपनगर – इस उपनगर के निवासी अधिकतर खनन व कार्यों में लगे हुए है।

12.4 उपग्रह नगर

ग्रामीण–नगरीय उपान्त संक्रमण क्षेत्र में कुछ छोटे नगरीय अधिवास विकसित हो जाते हैं, जो

मुख्य नगरों से जुड़े रहते है। इन्हें उपग्रह नगर कहते हैं। कुछ विद्वान उसे उपनगर मानते है। उपनगर में अधिकांशतः अधिवास पाये जाते है उपग्रह नगर रोजगार प्रदान करते हैं।

रूस में इसे **"स्पूतनिक"** कहते है। हैरिस व उलमैन के अनुसार "उपग्रह नगर उपनगर से अलग अस्तित्व रखते हैं, क्योंकि ये केन्द्रीय नगर से कई मील दूर स्थित होते हैं, तथा केन्द्रीय नगर और इनके बीच दैनिक अभिगम कम पाया जाता है। यद्यपि इन उपग्रहीय नगरी की आर्थिक क्रियाएँ केन्द्रीय नगर से भली–भाँति जुड़ी होती है।"

उपग्रह नगर दो प्रकार के होते हैं। 1. उपभोक्ता उपग्रह नगर 2. उत्पादन उपग्रह नगर

उपग्रह नगरों का उद्‌भव एवं द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। इसके तीन महत्वपूर्ण कारक है।

1) **महानगरो की जनसंख्या घनत्व को कम करने के लिये** –लन्दन जैसे विशाल नगर की जनसंख्या घनत्व को कम करने हेतु इन नगरों का विकास किया गया, इसे नूतन नगर (New town) कहा जाता है। 1944 में पीटर एबरक्राम्बी ने इसको सुझाव प्रस्तुत किया। उपनगर का मुख्य उद्देश्य नगर की बढ़ती जनसंख्या को कम करना था।

2) **औद्योगिक केन्द्र के चतुर्दिक विकास** – औद्योगिक केन्द्रो के आस–पास अनुषंगी उद्योगो की स्थापना हो जाने के कारण कुछ इकाईयाँ कचरों व औद्योगिक उत्पादों आदि का प्रयोग करते हैं। इससे इन नगरो का बल मिलता है। ऐसे नगरों का सामाजिक, आर्थिक व जनांकिकी उद्देश्य मिलता है।

3) **सरकारी प्रयास**–कभी–कभी कुछ सरकारी योजनाओं के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु ऐसे नगरों की स्थापना हो जाती है। कुछ नगर स्वतः विकसित हो जाते है तथा कुछ समूह का अनुसरण करते हुए विकसित होते हैं। इन नगरो की मुख्य नगर से दूरी कम होने के कारण नगर का एक अंग बन जाते है। राष्ट्रीय राजधानी इसका मुख्य उदाहरण है।

12.4.1 उपनगर व उपग्रह नगर में अन्तर

उपनगर और उपग्रह नगर में निम्नलिखित अन्तर पाया जाता है।

1. उपनगर मुख्यतः आवासीय तथा उपग्रह नगर औद्योगिक होता है।
2. उपनगर नगर में दिन के समय जनसंख्या अपने कार्यों हेतु नगर से बाहर की ओर जाती है, तथा उपग्रह नगर मे जनसंख्या इसके विपरीत राहती है।
3. उपनगर में जनसंख्या रात्रि के समय अधिक हो जाती है। उपग्रह नगर में जनसंख्या दिन में अधिक हो जाती है।
4. उपनगर आर्थिक रूप से मुख्य नगर पर निर्भर रहते हैं, वही उपग्रह नगर आत्मनिर्भर रहते हैं।
5. उपनगर मुख्य नगर से संलग्न रहते हैं, जबकि उपग्रह नगर 30 से 50 किमी. की दूरी पर स्थित रहते हैं।
6. उपनगर व उपग्रह नगर सदैव स्थानान्तरित होते रहते है, नगरीय फैलाव से ये मुख्य नगर द्वारा आत्मसात कर लिये जाते हैं।

1.5 सन्ननगर

दो या दो से अधिक नगरों के प्रसरण द्वारा एक सतत् नगर का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार के नगर को सन्ननगर कहते है।

अंग्रेजी शब्द कोनूर्वेशन (Conurbation) शब्द (Continuous) लगातार और Urban (नगरीय) से हुई हैं। इसका प्रयोग सर्वप्रथम "शिडिसद्ध" महोदय ने किया। सन्ननगर ऐसा क्षेत्र होता है, जो मुख्य नगर से क पृथक नही किया जा सकता है, इसके अन्तर्गत आवास, कारखाना, इमारते, बन्दरगाह, नगरी पार्क, क्रीडा स्थल पाया जाता है। फ्रीमैन के अनुसार – एक नगर अपने उपग्रहीय नगरों के साथ मिलकर सन्नगर का निर्माण करता है।

12.5.1 सन्नगर का विकास

1. **सन्ननगर के कारक –** सन्ननगर विकसित होने के निम्नलिखित कारक है।

   1) औद्योगिक विकास – नगरी के विकास में औद्योगिक विकास का प्रमुख योगदान नगरों में उद्योगों के द्वारा रोजगार के साधन उपलब्ध हो जाने के कारण नगरों का प्रसार होता है, जैसे– कलकत्ता

   2) तीव्र और प्रभावशाली परिवहन – नगरों के आन्तरिक व बाह्य होली में सुलभ यातायात सन्ननगर को विकास का एक कारण है।

   3) पूरक और सहायक उद्योगों का विकास, – बहुत से उद्योगों के समीप कई पूरक उद्योग भी विकसित हो जाते हैं, जो बाद में एक सन्ननगर का रूप धारण कर लेते हैं। इन उद्योगो की स्थापना के बाद श्रमिक बस्तियाँ, बाजार व्यापार एवं वाणिज्यिक प्रतिष्ठान स्वतः स्थापित हो जाते है।

   4) सस्ती एवं प्रचुर भूमि उपलब्धता – मुख्य नगर में जनसंख्या घनत्व के कारण भूमि की खपत बढ़ती जा रही है, जिसके कारण लोग नगरी के बाहर सस्ती भूमि को खरीदकर आवास निर्मित कर लेते हैं।

   5) नगरीय समस्याऐं – नगरों की वृद्धि के कारण, भीड़–भाड़, आवासो, गन्दगी प्रदूषण खुले क्षेत्रों का अभाव, नगरीय सेवाओं की कमी से समस्यायें बढ़ती जा रही है। इस कारण लोग नगर के बाहर परिवहन मार्गों के सहारे बस्तियों का निर्माण कराते है, जिससे सन्ननगर का निर्माण होता है।

12.5.2 सन्ननगर की विशेषतायें

1. **भौतिक समानता –** दो नगर जो कार्यात्मक तौर पर एक दूसरे से जुड़े हो, और सतत नगरीय भूमि उपयोग द्वारा यदि भली–भाँति सम्बद्ध न हो, तो भी ये सन्ननगर का निर्माण करते हैं।
2. **जनसंख्या की प्रवृत्तियाँ –** सन्ननगर की एक विशेषता यह है कि नगर के केंन्द्रीय भाग में जनसंख्या घनत्व कम देखा जाता है। इसके अतिरिक्त नगर के पार्श्ववर्ती भागों में तीव्र जनसंख्या वृद्धि देखी जा सकती है। इसका मुख्य कारण परिवहन व तेज वाहनों की अधिक है, जिससे लम्बी दूरी भी कम हो गयी है। नगर के बर्हिवर्ती भागों को शयनागार नगर" की संज्ञा दी गयी है।
3. **कार्यात्मक एकता –** सन्ननगर में सम्मिलित सभी नगरों के बीच आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और कार्यात्मक एकता पायी जाती है।

12..5.3 सन्ननगर का परिसीमन

सन्ननगर सतत् रूप में फैला नगर प्रदेश है जिसमें दो या दो से अधिक नगरीय केन्द्र आपस में जुड़े रहते है। इसके परिसीमन हेतु विभिन्न सुझाव दिये गये है।

1. **संयुक्त राज्य जनगणना ब्यूरो –** सन्ननगर के सीमांकन का प्रथम प्रयास संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा किया गया है। जनगणना ब्यूरो के अनुसार "एक या अधिक केन्द्रीय नगरो, संलग्न समाविष्ट और असमाविष्ट क्षेत्रों को सम्मिलित किया, जिसमे कम से कम प्रतिवर्ग मील 500 आवासीय इकाईयाँ पायी जाती है।
2. **अन्तर्राष्ट्रीय नगरीय शोध संस्थान –**केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के अन्तर्राष्ट्रीय नगरीय शोध संस्थान के अनुसार सीमांकन हेतु निम्न आधार प्रस्तुत किये गये है।
   1) इसकी कुल जनसंख्या एक लाख या इससे अधिक हो।
   2) नगर की जनसंख्या 50,000 या उससे अधिक हो।
   3) इसके कुछ कर्मकरो का 75%से अधिक भाग गैर कृषि कार्यो में लगा हो।
   4) जनसंख्या घनत्व केन्द्रीय नगर का आधा हो अथवा इससे दूर बसे दूसरे प्रशासनिक केन्द्र का ब्रिटेन में का दुगुना हो ।
3. **ब्रिटेन के प्रयुक्त विधि–** ब्रिटेन रजिस्ट्रार जनरल द्वारा वेल्स संननगर के लिये उपयोग किया है।
4. **भारत का परिसीमन प्रयास–** "कलकत्ता महानगरीय नियोजन संगठन" ने सन्ननगर परिसीमन का कार्य किया है जिसमें हुगली क्षेत्र को आधार बनाया गया है।

12.5.4 विश्व के प्रमुख सन्ननगर–

1. **संयुक्त राज्य अमेरिका**–सन्ननगर का सर्वाधिक संकेन्द्रण उत्तरी पूर्वी सागर तट या मेगालोपोलिस की 1000 किमी लम्बी मेखला है। यह विश्व की सबसे बड़ी सन्ननगर मेखला है।
2. **कनाडा** – कनाडा में वाटरलू–किचनर नगरों का विकास भी सन्नगर के रूप में हुआ है।
3. **ऑस्ट्रेलिया**–कैनबर–क्वियनबेयान सन्ननगर का मुख्य उदाहरण है।
4. **जापान –** जापान में टोकियो–याकोहामा सन्ननगर क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त ओसाका व कोबे "युग्म नगर" क्षेत्र है।
5. **यूरोप–** यूरोप में कई देशों में सन्ननगर का विस्तार हुआ, जिसमें ग्रेट ब्रिटेन फ्रांस, जर्मनी, स्वीडन आदि मुख्य हैं। ब्रिटेन मे लन्दन, मानचेस्टर लिवरपुल, बर्मिंघम, लीड्स–ब्रेडफोर्ड, टाईनसाइड व ग्लास्को मुख्य है। फ्रांस में सन्ननगर, जर्मनी में रूरघाटी में एसेन सन्ननगर हैं।
6. **भारत –** भारत में कोलकाता एक सन्नगर है, जो हावड़ा के अतिरिक्त 10 नगरीय केन्द्र व 23 छोटे केन्द्रों से जुड़ा है। दिल्ली–गाजियाबाद, बम्बई–कल्याण, हैदराबाद–सिकन्दराबाद, हैदराबाद–सिकन्दराबाद, इलाहाबाद–नैनी, फैजाबाद–अयोध्या, मिर्जापुर–विन्ध्याचल आदि मुख्य है।

कोलकाता सन्ननगर :–

कोलकाता सन्ननगर को नामकरण "1957" में जनगणना विभाग द्वारा किया गया। इसका क्षेत्र हुगली

नदी के दोनो किनारों पर फैला हुआ। यह सन्नार 569 वर्ग किमी0 में विस्तृत है। इसके प्रमुख नगर कोलकाता व हावड़ा है तथा 72 अन्य नगरीय केन्द्र भी सम्मिलित है। स्वतन्त्रतां प्राप्ति के बाद इस नगर का अत्यधिक तेजी से विस्तार हुआ। 2011 की जनगणना के अनुसार–कोलकाता की जनसंख्या 4,486,679 है। जूट, वस्त्र, होजरी, चमडा, कागज, धातु, खाद्य और उपभोक्ता वस्तुओं आदि उद्योगों का महत्व हैं।

टीटागढ़ कागज क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त नैहाटी, उत्तरपाड़ा, हालीशहर, बाली, चम्दानी, उल्बेरियाँ, बजबज, आदि मुख्य नगर हैं। वर्तमान में कोलकाता एक समस्या ग्रस्त नगर है। जहां प्रदूषण, गन्दगी, आवासीय व स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी व यातायात की कठिनाईयों को झेल रहा है।

12.6 परिनगर

नगर तथा उसके चारों फैले ग्रामों की के बीच एक परस्पर सम्बन्ध पाया जाता है। नगर व उसके आस के गाँव दोनों ही एक दूसरे पर सदैव निर्भर रहते है। दोनो ही आपनी से प्राथमिक द्वारा आवश्यकताएँ एक दूसरे से पूर्ण करते हैं। नगर व उसके सम्पादित सेवा कार्य दो भागो में विभाजित है।

1. **आपकेन्द्रीय कार्य–**नगर द्वारा जो सेवाएं ग्रामीण क्षेत्रो को दी जाती है
2. **अभिकेन्द्रीय कार्य–** प्रदेश द्वारा जो सेवाएँ नगर को दी जाती है। जैसे साग, सब्जी, दूध, अनाज, फल आदि।

डिकिन्सन व हैरिस ने **"परिनगर"** के स्थान पर नगर शब्द का प्रयोग किया। ग्रीन ने **"एतदर्थ नगरीय पृष्ठ प्रदेश"** प्रभाव मेखला तथा अधिग्रहण क्षेत्र कहा है।

गिल्बर्ट के अनुसार Omland की उत्पत्ति स्टेडियस भाषा के शब्द से हुई, जिसका अर्थ है" नगर के चारों ओर"।

12.6.1 परिनगर के प्रकार–

परिनगर के दो प्रकार भिन्न है।

1. **प्राथमिक परिनगर –**इसके अन्तर्गत वह क्षेत्र आता है, जो नगर के समीप हो, तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नगर पर निर्भर हो। क्रय–विक्रय के लिये अभिगमन होता रहता है। इस क्षेत्र को "श्रमशाला" कहा जाता है। नगर उपान्त क्षेत्र भी इसके अन्तर्गत आते हैं।
2. **गौड़ परिनगर –** गौड़ आवश्यकताओं के पूर्ति हेतु नगर पर निर्भर रहते हैं जैसे– अन्न आपूर्ति, बस सेवा, उच्चशिक्षा, थोक व्यापार आदि।

अपकेन्द्रीय व अभिकेन्द्रीय कार्यो के आधार पर परिनगर को दो भागों में बाँटा जाता है।

1. **सेवा परिनगर**– नगर को चारों ओर का क्षेत्र जहाँ नगर अपनी सेवा प्रदान करता है जैसे चिकित्सा, शिक्षा, प्रशासन, मनोरंजनन, व्यापार आदि।
2. **आपूर्ति परिनगर**– नगर के चारों फैला हुआ ग्रामीण क्षेत्र जहां नगर की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। दूध, सब्जी, अन्न, फल, आदि।

12.6.2 परिनगर का सीमांकन–

परिनगर को निर्धारित करने के लिये विद्वानों ने इसे तीन वर्गो में बाँटा है ।

1. अनुभवात्मक त्या गुणात्मक विधियाँ।
2. सैद्धान्तिक या सांख्यिकीय विधियाँ
3. आलेखी विधियाँ ।

1. **अनुभवात्मक या गुणात्मक विधियाँ**– ये विधियां नगर में पायी जाने वाली विशेषता एवं संख्या के आधार पर किया जाता है। इसमें नगर के कार्य एवं सूचकांकों के आधार पर प्रभाव क्षेत्र के अलग–अलग मानचित्र बनाकर एक दूसरे पर अध्यारोपित किये जाते हैं। जिससे उनकी सर्वनिष्ठ सीमा निर्धारित होती है।

2. **सैद्धान्तिक या सांख्यिकीय विधियाँ** –इन विधियों का विकास तार्किक व विश्लेषणात्मक तथ्यों पर आधारित है। इनमें दो नगरों के मध्य रेखीय दूरी, जनसंख्या व नगर से मध्यवर्ती या छोटे कस्बे से दूरी के आधार पर गठित एवं सांख्यिकीय सूत्रों का प्रयोग कर परिसीमन किया जाता है।

   i. **गुरुत्वाकर्षण अथवा अर्न्तक्रिया प्रतिमान** –इस सिद्धान्त का प्रतिपादन "एच०सी०केरी" ने (1958–59द्धमें किया। इसका निर्माण भौतिक नियम आधार पर किया। इस मॉडल में किसी नगर का प्रभाव क्षेत्र के विस्तार उसके आकार (जनसंख्या) और (दूरी) पर निर्भर करता है। इसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है । $I = \frac{P_1 P_2}{d}$

   I=दो नगरों P_1 व P_2 के बीच सापेक्षिक सम्बन्ध,

   P_1 =बड़े नगर की जनसंख्या, P_2 छोटे नगर की जनसंख्या

   d= दो नगरों की बीच की दूरी।

   ii. **फुटकर गुरुत्वाकर्षण का नियम** – इस नियम का प्रतिपादन प्रसिद्ध अमेरिकन अर्थशास्त्री (रेलीद्धने किया। इसके अनुसार किसी नगर से प्राप्त फुटकर व्यपार की मात्रा उसे नगर की जनसंख्या के अनुक्रमानुपात में तथा उस स्थान व नगर के बीच की दूरी वर्ग वाक के व्युत्क्रानुपात में होती है। (सूत्र)

   $$\frac{S_1}{S_2} = \left(\frac{P_1}{P_2}\right)\left(\frac{D_1}{D_2}\right)^2$$

   S_1व S_2 =दिये गये दो नगरों P_1 व P_2 के मध्य स्थित गाँव या कस्बा को विक्रय किये जाने माल की अलग–अलग मात्रा, आपनी आपनी जनसंख्या

   P_1एवंP_2= दोनो की आपनी अलग–अलग जनसंख्या

   D_1एवंD_2= मध्यस्थ ग्राम या कस्बा से दोनो नगरों क वास्तविक दूरियाँ

   iii. **अलगाँव–बिन्दु संकल्पना** –यह रैली के नियम को संशोधित रूप है, जिसे कनवर्स (1949) में प्रतिपादित किया तथा "फुटकर गुरुत्वाकर्षण" के द्वारा नामांकित किया। इसके अनुसार यदि एक सेवाकार्य दो सगीपवर्ती नगरों पर पाया जाता है, तो लाभ प्राप्त करने के लिये कितनी दूर तक लोग आ सकते है। इस सिद्धान्त के अनुसार दो नगरों के प्रभाव क्षेत्र के अलगाँव बिन्दु को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$B = \frac{d}{1 + \sqrt{P_A P_B}}$$

जहाँ B= दो नगरों A और B के मध्य का अलगाँव बिन्दु Bसे P_A एवं P_B = दोनो नगरो A और B की अपनी–अपनी जनसंख्या तथा d= दोनो नगरों के मध्य की दूरी।

3. **आलेखी विधियाँ** –इसमें अलेखो के माध्यम से नगर प्रभाव क्षेत्र को निर्धारित किया गया जाता है।

   1) **थीसन बहुभुज विधि** –इस विधि का प्रयोग बोग महोदय ने संयुक्त राज्य के 67 महानगरीय केन्द्रों के प्रभाव प्रदेशो का सीमांकन किया। इसमें नगर के चतुर्दिक एक बहुभुज निर्मित कर उसके प्रभाव का सीमांकन किया जाता है। प्रत्येक नगरीय केन्द्र को उसके प्रत्येक समीपवर्ती, नगरीय केंद्र से सीधी रेखाओं द्वारा मिलाकर सभी रेखाओं का लम्बंधिक रेखाएँ आपस में मिलाकर दिये हुए नगरीय केन्द्र चतुर्दिक एक बहुभुज का निर्माण करती है, जो उसके प्रभाव प्रदेश को प्रदर्शित करता है।

   2) **आलेख सिद्धान्त** –इस सिद्धान्त को प्रतिपादन हरारी व नारमैन द्वारा प्रस्तुत आलेख, सिद्धान्त के आधार निस्ट्यून व डेसी ने वाशिंगटन, राज्य और उसके पास 40 नगरो के लिये लम्बी दूरी के टेलीफोन प्रवाह के आंकडो द्वारा 40X 40 मैट्रिक्स तैयार किया गया, जिसके द्वारा इस क्षेत्र के नगरों का पदानुक्रम एवं उसका प्रभाव क्षेत्र निर्धारित किया गया।

12.6.3 परिनगर के परिसीमन के भारतीय प्रयास–

भारत में वर्तमान सदी के उत्तरार्द्ध कई भूगोलवेत्ता ने परिनगरों का परिसीमन किया, जिसमें गुणात्मक और सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है। ये लोग निम्नलिखित है।

1. **आर. एल. सिंह** –उन्होने (1953) में भारत में प्रथम परिनगर का परिसीमन किया इन्होंने बनारस नगर का परिसीमन सब्जी व दुग्ध आपूर्ति समाचार पत्र, परिसंचरण, बस सेवा, कृषि व प्रशासनिक जैसे–चरो का आधार पर परिक्षण किया। बैग्लौर नगर का परिसीमन भी इनके द्वारा किया गया।

2. **उजागिर सिंह** –प्रोफेसर उजागर सिंह (1961) में साग–सब्जी आपूर्ति, दूध और खोया आपूर्ति, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा, खाद्यान्न पूर्ति, वाणिज्य आदि को आधार बनाते हुए प्रयागराज नगर का परिसीमन किया। इसके लिये इन्होंने इसे दो वर्गो में बाँटा है।

   (1) मुख्य परिनगर (2) गौण परिनगर

3. **एल. बी मुखर्जी**– प्रोफेसर एंल०बी० मुखर्जी (1962) में "मोदीनगर" का परिसीमन तीन सेवा वर्गो के आधार पर किया।

4. **वी०एल०एस० प्रकाशराव**–वी०एल०एस० प्रकाशराव (1964) तीन आधार "थोक व्यापार" व "फुटकर व्यापार" एवं "बस सेवा के उपयोग" बनाते हुए कर्नाटक राज्य का परिसीमन किया।

5. **एस०एम० आलम**– एस०एम० आलम (1965) ने हैदराबाद–सिकन्दरबाद नगरों का परिसीमन किया।

6. **आर०एस० दीक्षित** –आर०एस० दीक्षित (1977) में कानपुर के परिनगर का परिसीमन किया।

12.7 सारांश

आपने इस बारहवीं इकाई में यह स्पष्ट रूप से जाना कि नगर आपने चतुर्दिक स्थित क्षेत्र से पूर्णतया साथ मिलकर वह एकीकृत कार्यात्मक प्रदेश का निर्माण करते है। ये क्षेत्र भिन्न क्षेत्रफल, स्वरूप वाले होते है। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि ग्रामीण–नगरीय उपान्त उपनगर, उपग्रह नगर, सन्ननगर व परिनगर सभी भी भिन्नता पायी जाती है। इसके सभी के विकास व विशेषताओं आदि का अध्ययन भी सहजता के साथ किया।

12.8 शब्द सूची

उपान्त	–	Fringe
द्वाभा मेखल	–	Twilight Zone
अलगाँव	–	Segregation
अभिगमन	–	Commuting
आप्रवासन	–	Imnoigration
कर	–	Tax
आन्तरिक	–	Inner Fringe
दबाव	–	Push
खिंचवा	–	Pull
सीमांकन	–	Delimitation
अन्त्य क्षेत्र	–	Climax Area
उपनगर	–	Suburb
उपग्रही नगर	–	Setelite Town
महानगरीय	–	Metropolition
सन्ननगर	–	Conurbation
परिनगर	–	Umland
युग्म	–	Twins

12.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. नगर प्रभाव क्षेत्र के लिए अलगाँव बिन्दु सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया था?

   (अ) पी०डी० कनवर्स (ब) आर जे रायली

   (स) एच सी कैरी (द) सीबी फॉसेट

2. अन्तर्क्रिया प्रतिमान किस विद्वान द्वारा प्रतिपादित किया गया ?

   (अ) डब्लू०जे० रैली (ब) सी०बी० फॉसेट

   (स) एच०सी०. कैरी (द) रायली

3. अमलैण्ड किस भाषा का शब्द है?

   (अ) जर्मन (ब) स्वेडिश

(स) अंग्रेजी (द) भारतीय

4. फुटकर गुरुत्वाकर्षण का नियम किसने प्रतिपादित किया?

(अ) होमर होयट (ब) एच०सी० कैरी

(स) कोपेक (द) डब्लू०जे० रैली

5. सन्ननगर का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया ?

(अ) फ्रीमैन (ब) पेट्रिक गैडिस

(स) फॉसेट (द) एलेक्जेण्डर

6. KAVAL क्षेत्रों के सीमांकन हेतु सुझाव किस भारतीय विद्वान दिया?

(अ) सुन्दरम् (ब) उजागर सिंह

(स) ओ०पी० सिंह (द) सिन्हा

आदर्श उत्तर 1. (अ) 2. (स) 3. (ब) 4. (द) 5. (ब) 6. (बद्ध

12.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

1. ग्रामीण–नगरीय उपान्त को परिभाषित कीजिये तथा उसके परिसीमन में प्रयुक्त माापदण्डो की विवेचना कीजिये।

.....

.....

.....

2. नगरीय उपान्त की विशेषताये बताइयें तथा उनके विकास के कारको की विवेचना कीजिये।

.....

.....

.....

3. उपान्त का सीमांकन कीजिये।

.....

.....

.....

4. उपनगर पर व्याख्यात्मक टिप्पणी लिखिये।

.....

.....

.....

5. उपग्रह नगर किसे कहते है तथा उपनगर व उपग्रह नगरमें अन्तर बताइये।

.....

.....

.....

.....

6. सन्ननगर किसे कहते है एवं विकास के क्या कारण है।

.....

.....

.....

7. सन्ननगर का परिसीमन कीजिये तथा विश्व के प्रसिद्ध नगरों का परिसीमन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

8. परिनगर का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके प्रकार कावर्णन कीजिये।

नोट – इकाई का अध्ययन के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर स्वयं लिखिये।

12.11 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह उजागर, 1974: नगरीय भूगोल, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथअकादमी, लखनऊ, 413PP.
2. सिंह, काशीनाथ एंव जगदीश सिंह, 1995: मानव और आर्थिक भूगोल, राजस्थान, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी।
3. वर्मा, लक्ष्मी, नारायण, 1983: अधिवास भूगोल, राजस्थास्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 300 पृष्ठ,
4. शर्मा, राजीवलोचन, :प्रादेशिक एवं नगरीय नियोजन, किताबघर, कानपुर।
5. Tiwari] R.C.,1984: Settlement System in Rural India: A Case Study of the Lower Ganga - Yamuna Doab, The Allahabad GeographicalSociety, Allahabad, 192PP.
6. Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69
7. तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
9 करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।
10. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

इकाई : 13 : नगरीय समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 स्थान की समस्या

- 13.2.1 आवासीय आवश्यकता
- 13.2.2 औद्योगिक आवश्यकता
- 13.2.3 व्यापारिक एंव परिवहन आवश्यकता
- 13.2.4 भूमि मूल्य में वृद्धि

13.3 आवासीय समस्या

- 13.3.1 मलिन बस्तियाँ
- 13.3.2 नगरीय ह्रास

13.4 परिवहन समस्या

- 13.4.1 परिवहन मार्गो की कमी
- 13.4.2 परिवहन मार्गो की अनुपर्युक्त
- 13.4.3 परिवहन साधनों की अपर्याप्तता
- 13.4.4 परिवहन दुर्घटनाये

13.5 जलापूर्ति की समस्य

- 13.5.1 मांग आपूर्ति अन्तरल
- 13.5.2 जल के स्रोत
- 13.5.3 पेयजल का सन्दूषण
- 13.5.4 भूमिगत जल का अत्यधिक प्रत्याकर्षण

13.6 नगरीय प्रदूषण की समस्या

- 13.6.1 वायु प्रदूषण
- 13.6.2 ध्वनि प्रदुषण
- 13.6.3 ठोस अपशिष्ट प्रदूषण
- 13.6.4 पर्यावरण अवनयन

13.7 मलनिर्यात एवं जल निकास की समस्या

13.8 विधुत एवं ईधन आपूर्ति की समस्या

13.9 प्रशासनिक समस्या

13.10 नगरीय निर्धनता समस्या

13.11 नैतिक एवं सामाजिक अपकर्ष की समस्या

13.12 नगरीय अपराध की समस्या

13.13 सारांश

13.14 शब्द सूची

13.15 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

13.16 अभ्यास प्रश्न

13.17 सन्दर्भ / उपयोग पुस्तके

13.0 प्रस्तावना

अधिवास भूगोल के लिये लेखन की यह इकाई भूगोल के आधार पाठ्यक्रम MAGO – 109 की तेरहवी इकाई है। इस इकाई में आप नगर में होने वाली समस्याओं का अध्ययन करेगें, जिसमें आवासीय समस्या, मलिन बस्तियाँ, नगरीय ह्रास आदि मुख्य है।

जनसंख्या समस्त समस्याओं की मूल है, इसके द्वारा नगर में पदार्थों की खपत होती है। जैसे जल, आप यहाँ जल की समस्याओं का अध्ययन करेगें। पर्यावरण ह्रास का मुख्य कारण प्रदूषण है, आज यह समस्त विश्व के लिये खतरा बनता जा रहा है। आप प्रदूषण के प्रकार, मल निर्यास, प्रशासनिक समस्या, निर्धनता व नगरीय आपराध की समस्याओं पर विस्तृत अध्ययन करेगें।

13.1 उद्देश्य

भूगोल में आधार पाठ्यक्रम MAG0 -109 अधिवास भूगोल की तेरहवी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बादआप

- अधिवास भूगोल के अन्तर्गत नगरीय समस्याओं को अध्ययन करेंगे
- पर्यावरण प्रदूषण समस्त मानव के लिये किस प्रकार हानिकारक है, आदि का विस्तृत अध्ययन करेगें।
- नगरीय समस्याओ का सामाजिक व आर्थिक रूप से अध्ययन कर सकेगें।
- नगरीय आपराध की समस्या का पूर्ण रूप से अध्ययन कर सकेंगे

13.2 स्थान की समस्या (Problem of Space)

नगरीय समस्या का प्रमुख कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है, जो दिन प्रतिदिन नगरों में संकेन्द्रण द्वारा अनियोजित रूप से विस्तृत हो रही है केवल विकासशील देश ही नहीं वरन् विकसित देश भी जनसंख्या के कारण अनियोजित नगर के रूप में विकसित हुए है। जनसंख्या के कारण, नगरो का विस्तार इतनी अनियोजित ढंग से होता है, कि आपेक्षित नागरिक सुविधाओं को पूर्ति नहीं हो पाती है, जिसके कारण कई प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है जैसे भूमि के बढ़ते मूल्य, नगरीय घनत्व में वृद्धि, गगनोन्मुखी इमारतों के निर्माण, कमजोर और कम आय वर्ग वाले नगर वासियो का सस्ते भूमि

मूल्य वाले क्षेत्रों की ओर प्रवास, मलिन बस्तियों का निर्माण, नगर के भौतिक और सामाजिक पर्यावरण में गिरावट, कृषि भूमि का अतिक्रमण, ग्रामीण पर्यावरण पर बढ़ते दबाव आदि की प्रवृत्तियाँ आपना कुप्रभाव दिखाने लगती है। विश्व के समस्त नगर इन समस्याओं से पीड़ित है परन्तु महानगरों एवं अनियोजित और तीव्र गति से बढ़ने वाले नगरों में इन समस्याओं का उग्ररूप देखने को मिलता है।

13.2.1 आवासीय आवश्यकता

औद्योगिक नगरों के अतिरिक्त नगरीय भूमि का सर्वाधिक प्रयोग आवासीय पूर्ति के लिये किया जाता है। नगरीय जनसंख्या में वृद्धि के कारण अत्यधिक आवासों की आवश्यकता होती है जिसके कारण आयु में वृद्धि एवं जीवन स्तर के सुधार, के लिए लोग छोटे मकान से बड़े एवं खुले क्षत्रों में मकानों में स्थानान्तरित है। आवासो के बढ़ती मांग के कारण नगर के किनारे ग्रामीण क्षेत्रों में अतिक्रमण होता रहता है जिस कारण कृषि भू क्षेत्रों में कमी एक जटिल समस्या बनती जा रही है। भारत में नगरीय विस्तार के कारण इस समस्या को सरलता से देखा जा सकता है। दिल्ली. चेन्नई, बंगलौर, कानपुर, लखनऊ आदि नगरो के बर्हिवर्ती क्षेत्रों में बनने वाले आवासीय कॉलोनियाँ में कृषि भूमि पर ही बनाई जा रही है। कुछ नगरों में इसके कारण पर्यावरणीय समस्या उत्पन्न हो रही है

13.2.2 औद्योगिक आवश्यकता

उद्योगों के बढ़ते प्रभाव के कारण कारखाना, स्टोर, श्रमिक बस्ती, कार्यालय आदि हेतु भूमि की आवश्यकता होती है।उद्योगो के स्थापना हेतु नगरों में भूमि की कमी के कारण इसका विस्तार ग्रामीण भू क्षेत्रों में देखा जा सकता है। कुछ उद्योग नगर के बढ़ते टैक्स एवं सरकार की विकेन्द्रीयकरण, अथवा पर्यावरण नीति के तहत भी बर्हिवर्ती क्षेत्रों में स्थापित किये जा रहे है। कृषि भूमि के अतिक्रमण के साथ–साथ इनसे ग्रामीण अंचलो का भौतिक व सामाजिक पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित हुआ है। छत्तीसगढ़ में भिलाई औद्योगिक नगर एवं कोरबा, सिंगरौली, आदि खनन नगरों में विकास के कारण यहाँ के आदिवासियों में आपराधिक गतिविधियों में वृद्धि देखी गयी है।

13.2.3 व्यापारिक एंव परिवहन आवश्यकतायें

नगरीय क्षेत्रों में, व्यवसाय, व्यापार एवं वाणिज्य से सम्बन्धि कार्य सम्पन्न होते, जिसमे नगरीय भूमि का एक बड़ा खण्ड सम्मिलित होता है। नगर की वृद्धि के साथ क्षेत्र में बढोत्तरी भी होती है। इससे नगरीय आवास के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्र के बाग बगीचों व कृषि भूमि भी प्रभावित होता है। विकासशील देशो के अधिकांश नगरों में रिहायशी व दुकाने साथ–साथ देखने को मिलते है, जिससे वहाँ भीड–भाड़ व गन्दगी देखने को मिलती है। नगरीय विकास में व्यवसायी क्षेत्र आवासी क्षेत्र को अत्यधिक प्रभावित करते है। परिवहन व यातायात की बढ़ती संख्या के कारण गलियों व सड़कों पर भीड का जाल देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त सड़कों को चौड़ी करना भी कठिन है।

13.2.4 भूमि मूल्य में वृद्धि

नगरों में अधिवासीय, औद्योगिक, व्यावसायिक आदि कार्यों में बढ़ोत्तरी के कारण, भूमि की बढ़ती मांग, स्थानों की कभी कुछ धनाड्य लोगों द्वारा भूमि खरीदने की प्रवृत्ति नागरिक व प्रशासनिक करो में वृद्धि के कारण भूमि मूल्यो में अत्यधित बढोत्तरी कर दिया है। नगर के केन्द्रीय भाग एवं व्यवसायिक क्षेत्रों तथा अच्छे आवासीय क्षेत्रो में भूमि मूल्य की अधिकता के कारण मध्यम व सामान्य वर्ग के लोगों का खरीद पाना एक असम्भव सा प्रतीत होता है।

लन्दन में अच्छे आवासीय क्षेत्रों में भूमि मूल्य 9000 डॉलर न्यूयार्क में 50,000 डॉलर, पेरिस में 10,000 फ्रैंक प्रति वर्ग मी. है। भारत में दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता आदि बडे नगरों में केन्द्रीय भाग के

अधिवास क्षेत्रों में 5000 रुपये प्रति वर्गमीटर से भी अधिक पाया जाता है। नगरीय क्षेत्रो में पिछले 2,3 दशकों में तेजी से वृद्धि देखी गयी है। इलाहाबाद के कई नये बसे भागों में जहां भूमि मूल्य 1980 में 60 रुपये प्रतिवर्ग मीटर था वही आज इसका मूल्य कई गुना बढ़कर 600 से 900 रुपये प्रति वर्ग किमी० हो गया है। परिवहन व यातायात के मार्ग के सहारे भूमि मूल्यों में बढोत्तरी तेजी से होती है। इसके दो परिणाम देखने को मिलते हैं– एक तरफ जहाँ कमजोर व निम्न आय वर्ग के लोग मलिन बस्तियों में रहने पर विवश होते है तथा मध्यम वर्ग नगरीय उपान्त क्षेत्रों के सस्ते मूल्य वाले आवासो में रहने में प्रवासित होते हैं, वहीं दूसरी तरफ गरीब एवं मध्यम वर्गीय लोग लालच व मजबूरी से विवश होकर भूमि को कम मूल्यो में बेंच देते है।

भूमि की कीमत में वृद्धि का मकान की लागत में गहरा सम्बन्ध है। वर्तमान सदी के प्रारम्भ में प्रतिवर्ग मी. भूमि की कीमत उस पर बने एक मंजिले मकान की की लागत का एक छोटा भाग (1/5 या कम) होती थी इसके कारण आवास में खुला क्षेत्र अधिक होता था। आज प्रतिवर्ग मीटर भूमि की कीमत उस पर बनी इमारत (एक मजिंल) की लागत का एक चौथाई या एक तिहाई भाग होती परिणाम स्वरूप लोग छोटे–छोटे फ्लैट में रहते है जहाँ खुला क्षेत्र अत्यधिक कम रहता है। यह नगरीय भूमि का परिणाम है, जहाँ भूमि की कमी के कारण लोग बहुमंजिली इमारतों में रहते हैं। इन इमारतों में लोग किसी प्राकृतिक आपदा के कारण बिजली, पानी आदि बाधित होने पर नर्क के समान जीवन व्यतीत करते हैं।

13.3 आवासीय समस्या (Residential Problemद्ध

विश्व के सभी बड़े नगरों में आवासीय समस्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका प्रमुख कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है, जिसके कारण आवासीय क्षेत्रो की स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। इसी कारण भारतवर्ष में मकानों की कमी हो रही है जिसके कारण जनसंख्या का बड़ा भाग फुट पाथ, मलिन बस्तियों, झुग्गी झोपडी या एक या दो कमरों के मकानों में रहने पर विवश है। इसमें जीवन निर्वाहक व स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी पायी जाती है। इससे नगर वासियों का स्वास्थ्य, कार्यक्षमता, जीवन आदि आदि प्रभावित होती है। नगर के राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक जीवन में आवासीय समस्या की परछाई स्पष्ट रूप से दिखती है। आवासीय समस्या का सबसे जटिल व बिगड़ा रूप मलिन बस्तियों के रूप में देखने को मिलता है। ये मलिन बस्तियाँ नगर नियोजको, प्रशासकों आदि के लिये एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। नेशनल कमेटी ऑन इन्वायरमेन्टल प्लानिंग एक कोआर्डिनेशन (NCEPC, 1976) के रिपोर्ट के अनुसार, भारत की नगरीय जनसंख्या का लगभग 25–30 प्रतिशत भाग झुग्गियो में रहता है या सड़को पर सोकर रात गुजार देता है। दिल्ली में 2 मिलियन लोग 1300 गन्दी बस्तियों में रहते है। कोलकाता में 80 प्रतिशत परिवारों के पास रहने के लिये कमरें नहीं है।

13.3.1 मलिन बस्तियाँ (Slums)

नगर का बेतरतीब रूप से बसा, पूर्णरूप से अव्यवस्थित 'सामान्य उपेक्षित क्षेत्र 'स्लम' कहलाता है, जो अत्यधिक प्रदूषित और घना बना होता है जो बहुत ही बुरी अवस्था में पाया जाता है।

डिकिन्सन के अनुसार–'स्लम' गिरावट की एक चरमावस्था है, जिसमें आवास इतने अधिक अनुपयुक्त हो जाते है कि वे समाज के स्वास्थ्य और नैतिक मूल्यों के लिये खतरा उत्पन्न करते है।

मर्फी के अनुसार –'स्लम' ऐसा क्षेत्र है, जहाँ ऐसे मकानों की बहुलता पायी जाती है, जो इतने निकृष्ट कोटि के हैं कि वे सुरक्षित, स्वास्थ्य एवं नैतिकता के लिये हानिकारक बन जाते है।

संयुक्त राज्य अमेरिका 1949 के आवासीय अधिनियम (Housing Act of 1949) के अनुसार ऐसा आवासीय क्षेत्र 'स्लम' कहलाता है, जिसके मकान अवह्रास (dilapidation), जनातिरेकता, दोषपूर्ण डिजाइन विन्यास, वायुसंचरण, प्रकाश एवं स्वास्थ्यकर सुविधाओं के अभाव के कारण सुरक्षित (Sefety) स्वास्थ्य व नैतिकता के लिये हानिकारक हो जाते हैं।

मलिन बस्तियाँ नगर के सबसे गरीब व निम्न आयवर्ग के लोगो का निवास स्थान है जहाँ सबसे कम सुविधाएँ व बहुत ही सस्ता किराया होता है। इन मलिन बस्तियों का विकास प्रायः रेलवे लाइन के किनारे दोनो ओर, इमारतों (पुरानी) के पास, निजी अहातो के पास के क्षेत्रों में विकसित होती है। जहाँ इनकी दीवारे ईंटों की या कच्ची मिट्टी की बनी होती है। इन दिवारों के ऊपर छते छप्पर, टिन, बॉस की चटाई, बोरो आदि से ढकी होती है। शौचालयों, जलापूर्ति, बिजली आदि की सुविधाओं का अभाव रहता। लोग शराब, जुआ,वेश्यावृत्ति आदि के कामों में लिप्त हो जाते हैं। झगड़ा, मारपीट छोटी–छोटी घटनाओ पर गाली गलौज सामान्य घटना है।

दिल्ली में इन बस्तियों को 'झुग्गी झोपडी, मुम्बई में 'झोपड पट्टी, चेन्नई में चेरीज (Cheries) कोलकाता में बस्ती व कानपुर में अहाता आदि कहते है। इसी प्रकार इन्हें Blight,Slum Squatter, Sattlements, Shanty town, Bidonvkilla, आदि के नामो से जाना जाता है संयुक्त राज्य अमेरिका में नीग्रो बहुत जनसंख्या की मलिन बस्ती को "घेट्टो (Ghetto) कहते हैं।

1. विश्व वितरण –

मलिन बस्तियों (Slums) आज विश्व के लगभग सभी देशों में पायी जाती है। नियोजित नगर को छोड़कर यह सभी नगरों में देखने को मिलती है। इन बस्तियों में जीवन निर्वाहक सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। पश्चिमी देशों में उनका विस्तार पुरानी इमारतों के किनारे पायी जाती है तथा इनकी स्थिति नगर के मध्य भाग में या C.B.D के आसपास देखने को मिलती है। फ्रांस की राजधानी पेरिस में 36 प्रतिशत आवास मलिन बस्तियों के रूप में मिलता है। मलिन बस्तियों का जनसंख्या धनत्व 2,15,000 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर से अधिक पाया जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के नगरो जैसे न्यूयार्क, शिकागो, डेट्रॉयट, बर्मिंघम, न्यूआर्लियन्स, सैनफ्रान्सिसको आदि में मलिन बस्तियाँ पायी जाती है। यहाँ नीग्रो प्रजाति की संख्या अधिक देखने को मिलती है। यहाँ मकानों की मरम्मत लगभग बन्द हो गयी है। इंग्लैंड में नार्टिंग्रहिल, ब्रिक्सटन, लन्दन का प्रसिद्ध जनपद विलेस्डेन तथा बर्मिघम का स्पार्क ब्रुक क्षेत्रों में मलिन बस्तियाँ पायी जाती है, जहाँ अश्वेत लोगों की जनसंख्या अत्यधिक है। यहाँ 25 लाख लोग ऐसे है जो ऐसे घरो मे रहने के लिये विवश है, जिसमे प्रति कमरा औसत घनत्व 2 व्यक्ति के लगभग है।

2. भारत में मलिन बस्तियाँ –

शहर देहात नियोजन संगठन (TCPO) के अनुसार–भारत की नगरीय जनसंख्या का 21.2 प्रतिशत भाग मलिन बस्तियों में पाया जाता है। भारत वर्ष मे लगभग 60 मिलियन लोग मलिन बस्तियों में निवास करती है। अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि कोई शहर जितना भी बड़ा हो वहाँ मलिन बस्ती भी उतनी ही बड़ी देखने को मिलती है। एन०बी०ओ० के अनुसार लघु एवं मध्यम आकार के नगरों (100,000 से कम जनसंख्या) की जनसंख्या को 10 प्रतिशत भाग मलिन बस्तियों में निवास करती है। इसी प्रकार बड़े नगरों (100,000 से 1000000 जनसंख्या) एवं महानगरों (10 लाख से अधिक जनसंख्या) का प्रतिशत क्रमशः 19 से 30 है। योजना आयोग के आवासीय एवं नगरीय विकास (Howsing and Urban Development) की टास्क फोर्स के अनुसार 17.5, 21.5 एवं 35.5

प्रतिशत क्रमशः पाया जाता है। राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के प्रोजेक्शन के अनुसार सन् 2026 में नगरीय आबादी बढ़कर 53 करोड़ 48 लाख और स्लम आबादी 10 करोड़ या उससे अधिक हो जायेगी। 2001 के भारतीय जनगणना विभाग द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार – 1991 में देश के 50,000 से अधिक जनसंख्या वाले 607 नगरों में 40.3 लाख लोग (22.58%) मलिन बस्तियों में रहती है। मेघालय, हरियाणा, आन्ध्र प्रदेश एवं महाराष्ट्र राज्यों के मलिन बस्तियों वाले प्रतिवेदित नगरों की 30 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या स्लम में निवास करती है। इसी तरह छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं तमिलनाडु राज्यो में 20 से 30 प्रतिशत के बीच पाया जाता है। केरल, असम, एवं गोआ राज्यों में मलिन बस्तियों में निवास करने वाली जनसंख्या 10 प्रतिशत से कम है। **सारिणी–13.1** में देश के प्रमुख नगरों में प्राप्त मालिन बस्तियों के विवरण दर्शाया गया है। मुम्बई महानगर की 45 प्रतिशत जनसंख्या नगर के 2641 मलिन बस्तियों में निवास करती है। इनकी आबादी 1981 में 28.3 लाख थी, जो 2001 में बढ़कर, 58.2 लाख (106 प्रतिशत वृद्धि हो गयी। एशिया की सबसे बड़ी मलिन बस्ती धारावी (Dharavki) नगर के केन्द्रीय भाग में 4.5 वर्ग किमी. के क्षेत्र में फैली हुई है। 1980 के दशक के प्रारम्भ में धारावी में 65000 मकानों में, 300000 स्थायी व 100000 की यायावर जनसंख्या रहती थी। मुम्बई जैसे बड़े नगर में 77.6 प्रतिशत जनसंख्या केवल एक कमरे के मकान में रहती है तथा लाखो लोग फुट पाथ पर जीवन व्यतीत करने के लिये विवश हैं। मुम्बई के विशाल बस्तियों भयावह दृश्य प्रस्तुत करती है, जिसमें लोग कई सुविधाओं से वंचित है। यहाँ पर्यावरणीय गुणवत्ता स्तर निम्न कोटि का है।

अहमदाबाद एक प्रसिद्ध राजधानी व औद्योगिक नगर है, जहाँ 12.5 प्रतिशत जनसंख्या मलिन बस्तियों में निवास करती है। 1990 में नगर की कुल 1023 मलिन बस्तियाँ थी जो नगर निगम के 15 प्रतिशत क्षेत्रफल में निवास करती है।

कानपुर नगर में 1/3से अधिक जनसंख्या मलिन बस्तियों में निवास करती है। इसमें 835 अहाता कई बस्तियों और अस्थायी झोपडे सम्मिलित है, जिनका विस्तार केन्द्रीय भागो, कारखानों के समीप तथा परिवहन मार्गो के सहारे पाया जाता है।

कानपुर के प्रसिद्ध इलाके चमनगंज, ग्वालटोली, लक्ष्मण पुरवा, जूही कौशलपुरी एवं बाबूपुरवा है, जो कि बहुत ही अधिक असुविधाओं से ग्रसित है। यहाँ प्रतिमकान में 10 से 12 व्यक्ति तथा 5 व्यक्ति प्रति कमरा में निवास करते हैं। कानपुर महानगर में लगभग 62 प्रतिशत जनसंख्या एक ही कमरे में रहती है तथा यहां का जनसंख्या घनत्व २००० व्यक्ति प्रति हेक्टेयर से भी अधिक पाया जाता है।

सारिणी – 13.1

भारत की प्रमुख नगरों में मलिन बस्तियाँ (2001द्ध

न्गर	जनसंख्या (हजार)	मलिन बस्ती जनसंख्या	नगरी जनसंख्या प्रतिशत
मुम्बई	11,914	5,824	48.88
दिल्ली	9,817	1,855	18.89
क्वेलकाता	4,581	1,491	32.55

चेन्नई	4,2016	748	17.74
अहमदाबाद	3,515	440	12.51
हैदराबाद	3,450	601	17.43
पूणे	2,540	531	20.93
कानपुर	2,532	369	14.56
नागपुर	2,051	727	35.42
थाणे	1,262	420	33.31
वाराणसी	1,101	138	12.55
मेरठ	1,074	471	43.87
फरीदाबाद	1,055	491	46.55
भारत	70,814	16,565	23.39

स्रोत– भारतीय जनगणना 2001

उत्तर–पश्चिम प्रान्तों की प्राचीन राजधानी प्रयागराज एक विश्व प्रसिद्ध सांस्कृतिक स्थल है, जिसमें अन्य औद्योगिक नगरों की तुलना में गन्दगी कम पायी जाती है। 2005 में आक्सफैम द्वारा कराये गये सर्वेक्षण के अनुसार– 3,62,550 जनसंख्या 185 गन्दी बस्तियों में निवास करती हैं।.नगर निगम डूडा के अनुसार प्रयागराज में 185 मलिन बस्तियाँ है जिसमें नगर की 15 प्रतिशत आबादी निवास करती है। ये बस्तियाँ केन्टोंमेन्ट, नजूल व रेलवे के किनारे पायी जाती है। बल्दी, मटियारा मधवापुर, खलासीलाइन, दारागंज, फतेहपुर बिछुआ, राजापुर और कटरा पसियाना मोहल्ले इन गन्दगी से अत्यधिक प्रभावित हुई है। नगर के दस प्रमुख इलाकें (बक्शी–कलां, भटियारा, छितपुर, नेवादा, दरियाबाद, दाउदनगर, हाशिमपुर, हरवारा, ऊँटखाना, सादियाबाद) है। इनमें खपरैल (46.4%)] झोपडी ((29%) की प्रधानता है। केवल 25.6% घर रसोई, 11.2% स्नानगृह, 16% सार्वजनिक शौचालय से लाभान्वित पाया जाता है। इन मलिन बस्तियों में अधिकांश दलित जनसंख्या पायी जाती है, जिनका प्रतिशत 72 है। इनमें कुम्हार, पटेल, खटिक, धोबी, निशाद आदि मुख्य है और 8.5 प्रतिशत मुस्लिम है। यहाँ उच्च जातियों का प्रतिशत 1 है। इनमें अधिकांश जनसंख्या आकस्मिक श्रमिको (५०%) घरेलू नौकरों (11–14%), रिक्शा/ट्राली चालकों (7.5%), फेरीवाला (7.5%) चपरासियो (6.06%) की संख्या अधिक है।

13.3.2 नगरीय ह्रास (Urban Blight)

बेलाइट नगरीय ह्रास की उस अवस्था का घोतक है, जिसमें उसके किसी भाग के अधिवासों की स्थिति इतनी जर्जर हो जाती है कि मकान मालिक के लिये अनुत्पादक व कम उपादेय हो जाता हैं। नगरीय ह्रास (Urban Blight) की संकल्पना नगर के आवासीय क्षेत्रों से, सम्बद्ध प्रायः इसका प्रयोग

मलिन बस्ती के रूप में होता है। इसके सूक्ष्म स्तर पर दो शब्दों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। Slums का सामाजिक महत्व अधिक है, वहीं 'Blight' का महत्व आर्थिक होता है। ब्लाइट की प्रमुख विशेषता जनसंख्या का निस्तर ह्रास है। इसका मूल कारण आवासीय असुविधाओं के कारण सम्पन्न लोग अन्य स्थानों पर स्थानान्तरित हो जाते है।

वॉकर ने ब्लाइट की प्रमुख विशेषताओं का विस्तार से निम्न उल्लेख किया है। "ऊँचे व गिरते भूमि मूल्य, सघन परन्तु घटती जनसंख्या, पुराने एवं अनुपर्युक्त मकान, बड़े पैमाने पर परित्यक्त, और किराये की दृष्टि खाली इमारते, अति बंधकित सम्पत्ति, अत्यधिक कर अप्रदानतो, कम औसत किराया, निवासियों की निम्न आर्थिक स्थिति, अत्यधिक आपराध, मर्त्यता एवं रुग्णता प्रति व्यक्ति और प्रति एकड़ उच्च सरकारी प्रतिव्यय है।"

13.4 परिवहन समस्या (Problem of Transportद्ध

यातायात एवं परिवहन का नगर के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान होता है। नगर की उत्पत्ति एवं विकास में परिवहन तन्त्र का एक बड़ा योगदान रहता है। प्रायः यह देखा गया है कि बड़े नगरों का परिवहन तन्त्र अत्यधिक विकसित एवं सुनियोजित होता है तथा विस्तार भी अधिक होता है। इसके विपरीत अनियोजित ढ़ंग से बना परिवहन तन्त्र अत्यन्त कष्टकारी व असुविधाजनक होता है। इससे रहने वाले निवासियों के अतिरिक्त दूसरे नगरों के निवासियो की भी आवाजाही भी कष्टकारी होती है।

त्रुटिपूर्ण परिवहन तन्त्र नगरीय पर्यावरण को दूषित करता है, इसके कारण प्रदूषण व दुर्घटना आदि की संख्या बढ़ रही है। नवीन शोधो से ज्ञात हुआ है कि कष्टकारी व उबाऊ परिवहन व्यवस्था लोगो की मनः स्थिति, मानासिक तनाव और कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

13.4.1 परिवहन मार्गो की कमी

विश्व में प्रत्येक भागों में तीव्र गति से नगरों का विकास हो रहा है। परंतु परिवहन मार्गो (सड़क, रेलमार्ग, जलयान, ट्राममार्ग, सुरंगी मार्ग रज्जुमार्ग आदि) का विकास अत्यन्त धीमी गति से हो रहा है। इसका मुख्य कारण भारी खर्च का होना है, जिसके अभाव निर्माण, मरम्मत और रख–रखाव नही हो पाता है। नगर पालिका, नगरनिगम, टाउन एरिया आदि के सीमित संसाधनों के कारण भी खर्चा पूरा कर पाना असम्भव कार्य है। स्थानीय निकाय, स्टेट पी० डब्लू डी०, केन्द्रीय पी० डब्लू डी० आदि कई संस्थाओं के द्वारा परिवहन मार्गो के निर्माण का कार्य सम्पन्न होता है।

13.4.2 परिवहन मार्गो की अनुपयुक्तता

नगरीय परिवहन मार्गो की लम्बाई में वृद्धि के साथ–साथ परिवहनशीलता में वृद्धि एवं विकास व रख–रखाव के लिये आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। परिवहन मार्ग नगर की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं तथा अतिशीघ्र ही वह मार्ग अनुपयुक्तता हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप मार्गो पर भीड़ का अतिरिक्तभार भी बढ़ जाता है, जिस कारण दुर्घटना बढ़ जाता है।

कोलकाता की सड़को और हावड़ा पुल के संकरे होने के कारण अत्यधिक जाम का घोतक है। सिडनी में केवल एक पुल है, जिसपर 6 सड़के व 4 रेलमार्ग स्थित है, फिर भी यहाँ सड़को पर जाम देखने को मिलता है।

बहुत से नगरों के मार्ग अत्यधिक सकंरे व अनुपर्युक्त मार्गविरोध है, बल्कि मरम्मत एवं

रख–रखाव की कमी के कारण उनकी दशा दयनीय है। भारत के कई नगरों में सड़को पर गड्ढे, जल भराव, कीचड़ आदि भरने से स्थिति अत्यधिक दयनीय हो जाती है। गया, अलीगढ़, जौनपुर, फाफामऊ आदि कई जगहों की सड़को की यात्रा करना अत्यधिक कष्टकारी है।

13.4.3 परिवहन साधनों की आपर्याप्तता

नगरों में जिस गति से जनसंख्या बढ़ रही है, परिवहन के साधनों विशेषकर वाहनों की भारी कमी देखने को मिलती है। दिल्ली में 83.8 लाख जनसंख्या के लिये DTC की 3200 बसें उपलब्ध करायी गयी है। इसके अतिरिक्त रेडलाइन व ब्लूलाइन की 3000 बसों का प्रारम्भ किया गया है। इन बस सेवा द्वारा लोगों के समय की बचत हो जाती है। मुम्बई जैसे विशाल नगर में 163.7 लाख जनसंख्या के लिये Best की 2457 बसो का समूह उपलब्ध है, जो प्रतिदिन औसतन 45.4 लाख यात्रियों का परिवहन करती है। यहाँ रेल मार्गो द्वारा परिवहन सुविधा दी जाती है। सार्वजनिक वाहनों की संख्या की कमी, मरम्मत पर कम ध्यान, समय का अभाव के कारण नगरीय परिवहन बाधित हुआ है। इसके अलावा निजी बसों के चलने से भीड़–भाड़ बढ़ गया है, जिसके कारण से सड़को पर दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ गयी है।

13.4.4 परिवहन दुर्घटनायें

जैसे–जैसे नगर विकसित हो रहे हैं, परिवहन मार्गो की भीड़ बढ़ती जा रही है, परिवहन गति में वृद्धि के कारण दुर्घटनाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। भारतवर्ष में सड़क दुर्घटनाओं में वृद्धि हुई है। वर्ष 1961 में 4500 लोग मरे थे, वहीं वर्ष 1991 में यह संख्या बढ़कर 60,000 पार कर गयी। इसके विपरीत विकसित राष्ट्रों में यह संख्या अत्यधिक चिन्ता का विषय है। इसका मुख्य कारण वाहनों का तीव्र गति से चलना है। विश्व में केवल 1 प्रतिशत वाहनों के बावजूद यहाँ हर दसवें मिनट एक व्यक्ति की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है।

सारिणी संख्या – 13.11 में वर्ष 1991 में सड़क दुर्घटना का एक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस सारिणी के निरीक्षण से स्पष्ट है कि दिल्ली में सड़क दुर्घटनाओं और उससे होने वाली मृत्यु की दर अत्यधिक है। यहाँ यह दर (18.87 व्यक्ति/लाख जनसंख्या) है, जिसका मुख्य कारण नगर में वाहनों की अधिक संख्या, उनकी तीव्रगति, सड़को पर मार्गविरोध और अनेक दुर्घटना प्रवण स्थलों का पाया जाना है। नगर में ब्लूलाइन की तीव्र वेग वाली बसों के चलने से दुर्घटना की संख्या में वृद्धि हुई है।

सारिणी संख्या – 13.11भारत में प्रमुख नगरों में सड़क दुर्घटनायें, 1991

नगर	जनसंख्या (लाख मेंद्ध	मोटर वाहन (लाख मेंद्ध	कुल दुर्घटनायें	हत व्यक्ति	दुर्घटना की दर प्रति लाख जनसंख्या	मृत्यु की दर प्रति लाख जनसंख्या
मुम्बई	125.7	6.28	25,477	365	242.6	3.5
कोलकाता	108.6	4.72	10,017	441	93.6	4.1
दिल्ली	83.7	19.92	8,065	1,778	86.1	18.9
चेन्नई	53.6	6.25	5,242	428	134.8	11.0

स्रोत : हिन्दुस्तान टाइम्स सितम्बर 21,1992

13.5 जलापूर्ति की समस्या (Problem of Water Supply)

मानव जीवन में, जल का विशेष महत्व है। जल के बिना मानव जीवन असम्भव है। प्राचीनकाल से ही विश्व के बड़े नगर नदियों के किनारे स्थित थे। जल की अपर्याप्ता एवं अशुद्धता मानव जीवन को बहुत प्रभावित करती है। आधुनिक समय में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि तथा जल के प्रतिव्यक्ति अधिक खपत के कारण जल संसार से समाप्त होता जा रहा, मुम्बई नगर का जलस्रोत 29 से 120 किमी. की दूरी पर स्थित है। बंगलौर, नगर की जलापूर्ति 100 किमी. दूर कावेरी नदी से पूर्ण होता है। चेन्नई नगर में जल का अभाव है वहाँ Water Exprcssनामक रेलगाड़ी से जल आपूर्ति होती है। हैदराबाद में जल नागार्जुन सागर से पूर्ण होता है, जो 137 किमी. दूर स्थित है। यमुना नदी के दूषित जल से दिल्ली नगर की आपूर्ति नही हो पाती है, इसलिये हरियाणा से जल की पूर्ति की जाती है। लम्बी दूरी से जलपरिवहन में अतिरिक्त व्यय में वृद्धि हो जाती है, तथा जलसंकट बढ़ जाता है। इससे प्रादेशिक जल संसाधनों में असन्तुलन स्थापित जाता है।

13.5.1 मांग आपूर्ति अन्तरल

नागरिक अधिकारियों द्वारा जल की आपूर्ति बढ़ाये जाने के बाद भी जल की खपत पूर्ण नहीं हो पा रही है। निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के कारण जल संकट गहराता जा रहा है। घरेलू कार्यों जैसे पीने, रसोई, स्थान व कपड़ा धोने आदि के लिये सामान्यतया प्रति व्यक्ति 50 से 60ली0 प्रतिदिन पानी की आवश्यकता पड़ती है। सफाई के कार्यो व बागवानी आदि के लिये माँग दुगुनी या तिगुनी हो जाती है। इसके अतिरिक्त उद्योग में अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है। एल्यूमीनियम निर्माण हेतु 1280 घनमी०, रेशम हेतु 780 घन मीटर, ऊनी कपड़ा हेतु 560 घनमीट, सूती कपड़ा हेतु 218 घनमीटर, और इस्पात हेतु 170 घनमीटर जल की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार जल विद्युत गृहों में प्रति घण्टा उमिलियन किलोवाट जलविधुत उत्पादन हेतु 10080 घनमीटर जल का प्रयोग होता है, जिसे नदी में पुनः प्रवाहित किया जा सकता है। **सारणी 13.III** में देश के प्रमुख चार बड़े महानगरी (मुम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद, एवं बड़ोदरा) में जल की माँग, आपूर्ति व उसके बीच के अन्तर दर्शाया गया है।

सारिणी संख्या 13.III

भारत के प्रमुख नगरों में जल की मांग और आपूर्ति के बीच अन्तराल, 1993 (mld में)

नगर	माँग	आपूर्ति	अन्तराल
मुम्बई	3,360	2,448	912
दिल्ली	2,840	2,145	685
अहमदाबाद	653	432	221
बड़ोदरा	234	177	56

स्रोत–NIVA, Urban Envkironment Maps, 1994

13.5.2 जल के स्रोत

नगरीय जल के अनेक स्रोत है, जिनमें नदी, झील, भूमिगत जल झरना आदि मुख्य है। झरनों का जल स्वच्छ माना जाता है। पेरिस नगर में एक तिहाई जल झरनो से प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त सीन व माने जैसी नदियों से भी जल की प्राप्ति होती है। टेम्स वली नदियों के गन्दे जल को स्वच्छ करके लन्दन नगर में जल की आपूर्ति की जाती है। डेन्यूब नदी द्वारा विएना में जल की प्राप्ति होती है। बर्लिन नगर में 88 प्रतिशत जल भूमिगत जल द्वारा प्राप्त होता है। भारत में मुम्बई, अजमेर, चित्तौड़, उदयपुर आदि को जल की आपूर्ति झीलों द्वारा प्राप्त होती है। दिल्ली, कानपुर, लखनऊ इलाहाबाद आदि का जल नदियों और भूमिगत जल द्वारा प्राप्त होता है। स्वच्छ जल की गुणवत्ता के आधार पर उनको विभाजित किया जाता है, जैसे सबसे स्वच्छ जल पीने के लिये प्रयोग होता है, तथा कारखानों में कम गुणवत्ता वाले जल के वितरित किया जाता हैं।

13.5.3 पेयजल का सन्दूषण (Contamination of Drinking Water)

नगरों के स्थानिक प्रसरण से जलापूर्ति में फैलाव हो रहा है। नगरो के पुराने क्षेत्रों में पाइप काफी पुरानी होने पर संक्षरण के कारण इनमें छिद्र हो जाते है, जहां कही भी गन्दे जल के सम्पर्क में आते है, वहां जल संदूषित होता जाता है। ऐसे जल को पीने के कारण हैजा, टाइफाइड, पीलिया, तपेदिक जैसी घातक बीमारी से ग्रसित है।

नगरीय और औद्योगिक अवशेषों में भिन्न भिन्न प्रकार के तत्व जल में मिले रहते हैं। जिनमें सल्फेट, आयन, नाइट्रेट, आयन, क्लोरेाइट आयन, सोडियम आयन, कैल्शियम एवं बाइकार्बोनेट आयन, पोटेशियम आयन के मुख्य है। स्वच्छ जल के सम्पर्क में आने पर यह जल को दूषित कर देता है। औद्योगिक प्रदेशों में पारा, कैडमियम, जस्ता, सीसा जैसे अनेक जहरीले, पदार्थ मिल जाते हैं, जिनसे जल की गुणवत्ता गिर जाती है जिसके कारण महानगर के लोगो का पेट की शिकायत हो जाती है।

13.5.4 भूमिगत जल का अत्यधिक प्रत्याकर्षण (Over-withdrawal of Ground Water)

धरातलीय जल के स्रोत की कमी के कारण भूमिगत जल द्वारा जल की पूर्ति की जाती है। जिसके कारण भूमिगत जलस्तर धीरे–धीरे घटता जा रहा है। वर्ष 1957–58 में नगर को 28 mgd.जल नदी और 12 mgd.जलनलकूपों से प्राप्त हुआ है। वर्ष 1991 में नदी जल की मात्रा 40 mgd.व भूमिगत जल की मात्रा 55 mgd.जल की कमी एक बड़ी चिन्ता का विषय है।

13.6 नगरीय प्रदूषण की समस्या

वर्तमान समय में प्रदूषण समस्त संसार के लिये एक बड़ा खतरा है। जिसपर यदि ध्यान न दिया गया तो संसार के अस्तित्व को समाप्त कर सकता है। यह प्रदूषण उद्योगो की अधिकता बढ़ती हुई जनसंख्या, खनिज तेल आधारित वाहनों, नगरी की जनसंख्या वृद्धि, प्लास्टिक पदार्थों के बढ़ते उद्योग, पेड़ पौधों के विनाश, व सरकारी तन्त्र की प्रदूषण नियन्त्रण में विफलता आदि कारण है। इस प्रदूषण में वायु प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट, ध्वनि प्रदूषण आदि प्रमुख है।

13.6.1 वायु प्रदूषण

नगरों में वाहनो द्वारा, उद्योगों की चिमनियो से निकलने वाला धुआ, कूड़ा करकट की सड़न मलवा से उत्पन्न गैसे, रेफ्रिजरेटर प्रणाली द्वारा उत्पन्न क्लोरोफ्लोरो कार्बन आदि वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण है।

वायु आज सर्वाधिक प्रदूषण यातायात के साधनों से उत्पन्न होता है, जिसमें कार्बन मोनोक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, सल्फर आक्साइड, हाइड्रोकार्बन, सल्फ्यूरिक अम्ल शीशा आदि

मुख्य है। इससे लोगों को श्वास सम्बंधी बीमारिया उत्पन्न हो रही है। इनमें नाइट्रोजन के आक्साइड सूर्य के प्रकाश में हाइड्रोकार्बन से प्रतिक्रिया कर भूरे रंग को रासायनिक धुम कोहरा उत्पन्न होता है, जिसके कारण 1952 में लन्दन नगर में 4000 लोग की मृत्यु हो गयी व हजारो लोग श्वसन–शोध (bronchitis) एवं हृदय रोग से पीडित हो गये।

यद्यपि विकसित देशों की तुलना में भारत के वाहनों की संख्या अधिक नहीं है फिर भी यहाँ प्रदूषण की समस्या अत्यन्त गम्भीर स्थिति में है। इसका प्रमुख कारण गाड़ियों का पुराना होना व उनके रख–रखाव में भारी कमी केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के अनुसार दिल्ली में 865 टन और मुम्बई में 584 टन धुआं और प्रदूषक निकाला जाता है। **सारिणी संख्या–13.IV** में भारत के प्रमुख नगरों के स्वचालित वाहनो व उनसे होने वाले प्रदूषण का विवरण प्रस्तुत है।

सारिणी संख्या–13.IV भारत में स्वचालित वाहनों द्वारा प्रदूषण, 1986–87

नगर	पंजीकृत वाहनों की कुल संख्या	कुल वाहन प्रदुषण भार (टन/टिन)	वाहन प्रदुषण भार प्रति हजार गाड़ियों किग्रा०/दिन
दिल्ली	11,11,664	865.3	780
मुम्बई	5,20,638	583.9	1,122
बंग्लौर	3,27,274	253.7	775
चेन्नई	3,16,830	297.1	938
कानपुर	1,21,735	75.5	620
अहमदाबाद	3,22,591	201.1	648

स्रोत– केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रणण बोर्ड, 1988–89

औद्योगिक प्रगति के साथ–साथ प्रदूषण की समस्या में वृद्धि हुई है। वायु प्रदूषण के लिये उद्योग भी जिम्मेदार है। रासायनिक, वस्त्र, सीमेन्ट, इस्पात, खाद, चमड़ा, कागज, तेल शोधक, चीनी उद्योग आदि सम्मिलित है। इन उद्योग में पिसाई, सुंदलन, शुष्कन, भर्जन, प्रगलन, वाष्पन आदि प्रक्रियाओं और रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप विभिन्न आकार की अधिक कणिकाएं, गैस, वाष्प, धूम्र और धूलि के रूप में संदूषक उत्पन्न होते हैं। कार्बन मोनोक्साइड, सल्फरडाइक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, सीसा, एस्बेस्टस बेरीलियम, जिंक, पारा, कैंडमियम तथा धूली आदि विभिन्न उद्योगो से उत्पन्न होते है।

भारत की राजधानी नगर दिल्ली में लोदी रोड मोती कटरा, फ्रेंड्स कालोनी झिलमिली और ओखला औद्योगिक क्षेत्रों में जिनमें 121 उद्योग कार्यरत है। प्रतिमाह 256 टन प्रदूषकों का वायु उत्सर्जन होता है। यहाँ पर धूल कणों की सान्द्रण तो 700 माइक्रोग्राम/घन मी० आँकी गयी है। विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र (CSE) के अनुसार–दिल्ली की प्रदूषित वायु से प्रतिघण्टा एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। मुम्बई में 2500 उद्योगों के अतिरिक्त नई तेलशोधन एवं पेट्रोरसायन इकाईयाँ स्थापित है, जिनका सर्वाधिक घनत्व चेम्बूर–ट्राम्बे क्षेत्र में पाया जाता है। यहाँ वायु के धूल कणों को

सान्द्रता 238 माइक्रोग्राम/धन सेमी. तक पायी जाती है। चैम्बर "भारत का गैस चैम्बर कहते हैं कोलकाता का औद्योगिक प्रदेश भारत का 'धूम कुहरानगर" कहलाता है। अहमदाबाद में वस्त्र उद्योग होने के कारण वायु बहुत ही अधिक प्रभावित है, जिसकारण यहाँ ''कपास की धुली'' (Ctton Rust) निकलती है। तमिलनाडु के नेवेली लिग्नाइट कॉम्पलेक्स के उर्वरक संयन्त्र से लिग्नाइट के गैंसीयकरण (Glassification) के कारण सल्फर डाई आक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, धुआँ व धूल की वृद्धि से प्रदूषित हो रहे है।

सारिणी संख्या–13.Vभारत के कुछ प्रमुख नगरों में वायु प्रदूषण, 1970–71

नगर	सल्फर डाईआक्साइड का औसत मान (माइक्रोग्राम/मी०^3)	निलम्बित कणिकीय पदार्थ (माइक्रोग्राम/मी०^3)
अहमदाबाद	10.66	306.6
कोलकाता	47.11	240.8
दिल्ली	32.88	340.7
कानपुर	41.43	601.1
नागपुर	15.97	543.5
हैदराबाद	7.71	261.6
मुम्बई	5.06	146.2
जयपुर	4.15	146.1
चेन्नई	8.38	100.9

स्रोत–NEERIS, Nagpur– 1970–71

सारिणी संख्या–13.Vमें भारत के प्रमुख नगरों के वायु, प्रदूषण की स्थिति को स्पष्ट बताया गया है। नागपुर स्थित, NEERI की 1981 की रिपोर्ट के अनुसार कोलकाता नगर में प्रतिदिन 1305 टन प्रदूषकों का उत्सर्जन वायुमण्डल में होता है, जिसमें औद्योगिक प्रतिष्ठानों में 600 टन, परिवहन क्षेत्र में 360 टन, तापशक्ति ग्रहों से 195 टन, रसोई घरों से 150 टन प्रदूषक सम्मिलित है। राजधानी दिल्ली में वायु प्रदूषण की भूमिका 60% है। मुम्बई देश का सर्वाधिक वायु प्रदूषण उत्पन्न करने वाला महानगर है।

13.6.2 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

अनावश्यक तेज आवाज मनुष्य की शक्ति, एकाग्रता, श्रवणशक्ति, स्वास्थ्य आदि को पूर्णतया नष्ट करती है, इसे ध्वनि प्रदूषण की संज्ञा दी गयी है। महानगरो की सड़कों पर वाहनों द्वारा उत्पन्न आवाज (ट्रक, बस, कार, टेम्पो, स्कूटर रेलगाड़ी आदि) एवं वायुयान, औद्योगिक प्रदेश व कारखानों की मशीनो की आवाजं, बाजारों की व्यस्त आवाज, रेडियो टीवी, एवं लाउड स्पीकर, धार्मिक एवं

सामाजिक क्रियाऐं इसके प्रमुख स्रोत है। अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि यातायात घनत्व व औद्योगिक विशेषता वाले महानगरों में ध्वनिप्रदूषण का एक बड़ा संत्रास है। ध्वनि प्रदूषण मानव शरीर पर अत्यधिक प्रभाव डालता है, जिससे बहरापन, थकान, अनिद्रा, पाचन क्रिया प्रभावित, हृदयरोग, कार्यक्षमता में ह्रास, चिड़चिड़ापन मनोवैज्ञानिक समस्याऐं सम्मिलित है।

सारिणी संख्या–13.VKI में केन्द्रीय नियन्त्रण बोर्ड (CPCB) द्वारा रात व दिन के समय आवासीय, व्यापारिक, औद्योगिक और शान्त क्षेत्रों (अस्पताल आदि) के लिये ध्वनि के मानक निर्धारित है।

सारिणी संख्या–13.VKI ध्वनि मानक (डेसिबल में)

नगरीय क्षेत्र	दिन	रात
आवासीय	55	45
व्यापारिक	65	55
औद्यौगिक	75	70
शान्त	50	40

स्रोत–CPCB, 1989

Status Report forDelhi 2021 के अनुसार दिल्ली की केवल 30 प्रतिशत आवासीय कालोनियों में ध्वनि स्तर मानक के नीचे पाया जाता है, जबकि 25 प्रतिशत आवासीय कालोनियों व व्यापारिक क्षेत्रो में यह प्रतिशत बहुत ऊंचा है। शान्त क्षेत्रों में ध्वनि स्तर 50 से 100dB के बीच पाया जाता है। जो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। लखनऊ की पर्यावरण प्रेक्षण प्रयोगशाला (EML) के अनुसार चौक व किंग जार्ज मेडिकल कालेज चौराहा में ध्वनि प्रदूषण अत्यधिक है। यहाँ 100 और 94dB है। दिल्ली में ध्वनि स्तर 80 dB है। मुम्बई के बीच ध्वनि स्तर पाया जाता है में 60 से 90 dBके बीच ध्वनि स्तर पाया जाता है।

13.6.3 ठोस आपशिष्ठ प्रदूषण(Solid Waste Pollution)

ठोस अपशिष्ट पदार्थ वह जो है, जिन्हें प्रयोग करने के बाद खराब व निरर्थक मानकर फेंक दिया जाता है, जैसे जंग लगी पिन, टूटी काँच की वस्तुएँ, प्लास्टिक के डिब्बे, पॉलिथीन की बनी वस्तुएं, कूड़ा करकट, पुराना कागज व राख आदि के नाम से जाना जाता है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अपशिष्ट प्रदूषकों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। विश्व की बढ़ती जनसंख्या औघोगीकरण, और नगरीकरण के कारण ठोस आपशिष्ट पदार्थो की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जिसका निपटान (disposal) एक बहुत बड़ी चिन्ता का विषय है। इन वस्तुओं के सड़ने, गलने की वजह से बदबू, बीमारियों व वायु प्रदूषण फैल रहा है।

विकसित राष्ट्रो में नगर पालिकाओं से निकलने वाले अपशिष्टों के निपटान की विकट समस्या उत्पन्न हो गयी है। न्यूयार्क नगर में प्रतिदिन 2500 ट्रक 'भार (25000 टन) कूड़ा करकट उत्पन्न होता है।

भारत में तीन लाख से अधिक जनसंख्या वाले 45 बड़े नगरों में प्रतिदिन 50,000 से अधिक

आपशिष्ट पदार्थ निकलते है। मुम्बई महानगर से प्रतिदिन 4000 टन कचरा निकलता है, इसके लिये 16000 सफाई कर्मचारी और 270 कचरा ढ़ोने वाली ट्रक उपलब्ध है। कोलकाता महानगर में 4000 टन आपशिष्ट पदार्थ निकलता है जो न्यूयार्क नगर का दसवां भाग है जिसका दोहन नगर निगम द्वारा किया जाता है। दिल्ली नगर में प्रतिदिन 7000 टन आपशिष्ट पदार्थ निकलता है। कानपुर और लखनऊ में प्रतिदिन क्रमशः 1000 और 900 टन कचरा निकलता है।

13.6.4 पर्यावरण अवनयन(Envkironmental Degradation)

नगरों के अत्यधिक विकास के कारण पारिस्थितिक तन्त्र पर काफी बुरा प्रभाव पड़ा, जलवायु परिवर्तन जिसका परिणाम है। यहाँ ऊर्जा की अनियंत्रित उपभोग से ऊष्माद्वीप बन रहे हैं, जो वायुमण्डलीय प्रदूषण को अत्यधिक बढ़ावा दे रहे है। धुंध, कोहरा, ओलावृष्टि, तडितझंझा, बाढ़ आदि मौसमी दशाओं की तीव्रता में वृद्धि हुई है। भूमिगत जल के दोहन और बाधित रिसाव के कारण भूतल प्रभावित हो रहा है, वही दूसरी तरफ अत्यधिक वर्षा व पक्की सतह के कारण जलभराव के कारण धरातलीय असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है, जो कि भूजल सन्दूषण का बड़ा खतरा बनता जा रहा है। इसी आधार पर पर्यावरणविद ने महानगरो को 'कल का कब्रगाह' बताया है।

13.7 मल निर्यात एवंजल निकास की समस्या (Problem of Sewerage and Drainage)

नगरों में विभिन्न कार्यों को करने के लिए जल का प्रयोग किया जाता है, यह जल दूषित होकर आपशिष्ट जल का निर्माण करता है। इसके निपटान व निकास नगर पालिकाओं के लिये एक बड़ी समस्या है। इसके अतिरिक्त घर से निकलने वाला मल जल निकास की सुनियोजित व्यवस्था भी एक समस्या है। नगरों में दूषित जल स्वास्थ्य के लिये काफी हानिकारक है।

विकसित राष्ट्रों में मलजल के निकास के लिये समुचित व्यवस्था रहती है तथा नगर बाहरी क्षेत्रों में यह जल पाइपों द्वारा परिशोधन हेतु पहुँचाया जाता है। परिशोधित जल पुनः सिंचाई व अन्य कार्यों हेतु प्रयोग में लाया जाता है। विकासशील देशों में निकासी की उचित व्यवस्था न होने के कारण गन्दा जल नगर में ही भरा रहता है। भारत वर्ष के नगरों का भी यही हाल है।

दिल्ली नगर में मलजल के शोधन हेतु सात सन्यन्त्र कार्यरत है, जिनकी क्षमता 1272 mld है, दिल्ली नगर में 1716 mld का निर्माण होता हैं। बाकी अपशिष्ट यमुना में प्रवाहित कर दिया जाता है, मुम्बई नगर में 2557 mld मलजल परिशोधित न होकर समुद्र में छोड़ दिया जाता है।

13.8 विधुत एवं ईधन आपूर्ति की समस्या (Problem of Electricity and fuel supply)

नगरों में घरेलू, व्यापारिक एवं औद्योगिक कार्यो हेतु बिजली की आवश्यकता होती है, जिसके बिना जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। भारत जैसे देश में विद्युत संकट गहराता जा रहा है। यहाँ बिना बिजली नगरीय जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। घरेलू ईंधन की आपूर्ति भी बाधित रहती है। नगरीय जनसंख्या की अधिकता के कारण इनकी पूर्ति बाधित हो रही है।

13.9 प्रशासनिक समस्या (Administrative problem)

नगरों को अधिक क्षेत्रीय विस्तार व जनसंख्याँ के कारण कानून नियम का संचालन करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। वही जिला में शान्ति व्यवस्था, प्रशासनिक सुरक्षा आदि को व्यवस्थित करने के लिये प्रान्तीय या राष्ट्रीय शासन से सहायता लेनी पड़ती है। दिल्ली, मुम्बई, कोलकता व देश की अन्य राजधानियों में प्रशासनिक समस्याए है।

13.10 नगरीय निर्धनता समस्या

नगरीय निर्धनता का नगर के जीवन की गुणवत्ता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। रोजगार की खोज के लिये लोग नगर की ओर पलायन कर रहे हैं, जिससे बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो रही है। शहरी निर्धनता को कम करने के लिये दिसम्बर 1997 से स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना चालू की गयी है। इससे नगर के बेरोजगार युवाओं को रोजगार देने की योजना बनायी गयी हैं।

13.11 नैतिक एवं सामाजिक आपकर्ष की समस्या

नगरीय संस्कृति भौतिकवादी होती है, जिसमें जीवन के प्रत्येक सुख समृद्धि की अभिलाषा एवं महत्वकांक्षा होती है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य सदैव तत्पर रहता हैं, तथा आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर वह अवसाद से ग्रसित होता है। धीरे–धीरे वह उसमें दया, परोपकार, परस्पर सहयोग, दुःख सुख में सहभागिता, सामाजिक मेल मिलाप आदि के सुलभ गुणो का लोप हो जाता है।

13.12 नगरीय अपराध की समस्या

जैसे नगरों की संख्या बढ़ती जा रही है, उसी तरह नगरीय समस्या भी बढ़ती जा रही है। इसका मुख्य कारण बढ़ती हुई जनसंख्या इस जनसंख्या है। इस जनसंख्या उन्हें जिविकोपार्जन हेतु सुविधाएँ नहीं मिल पाती, जिससे धीरे–धीरे आपराधिक प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

13.13 सारांश

आपने इस तेरहवी इकाई में यह जाना कि नगरों की समस्यायें जैसे– स्थान व आवासीय समस्या (मलिन बस्तियाँ, नगरीय ह्रास) आदि मुख्य है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या बढ़ने से परिवहन, प्रदूषण आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आबादी की जीविकापार्जन मलिन बस्तियाँ, जल निकास, खाने आदि की समस्याएँ, मुख्य है।

नगर में प्रशासनिक व न्यायियक कानूनों की नियमपूर्वक पालन कराना भी एक चुनौती है। बढ़ती जनसंख्या के कारण नगरवासियों में निर्धनता व नैतिक मूल्यों की भी समस्या का एक कारण है।

13.14 शब्द सूची

अवशेष	–	Waste
मलिन बस्तियाँ	–	Slums
आवासीय	–	Residential
अवह्रास	–	Dilapidation
सुरक्षिता	–	Safety
विकास	–	Development
यातायात	–	Transport
ह्रास	–	Blight
आन्तरिक दहन	–	Internal Combustion
प्रगलन	–	Smelting
क्षरण	–	Leakage
		Degradation
		Fuel
		Crime

अवनयन –
ईधन –
अपराध –

13.15 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. मुंबई स्थित मलिन बस्ती को क्या कहते हैं?
   (अ) चैरीज (ब) अहाता
   (स) झोपड़पट्टी (द) धेट्टो
2. किस नगर की 'मलिन बस्ती' को 'चेरीज' कहते है?
   (अ) चेन्नई (ब) मुम्बई
   (स) कोलकाता (द) कानपुर
3. निम्न में से कौन सा रोग दूषित जल द्वारा होता है।
   (अ) कैन्सर (ब) निमोनिया
   (स) टाइफाइड (द) ज्वर
4. निम्न में कौन सी गैस वायु प्रदूषण का कारक है।
   (अ) कार्बन डाई आक्साइड (ब) नाइट्रोजन
   (स) कार्बन मोनोआक्साई (द) आक्सीजन
5. निम्न में कौन का नगर सर्वाधिक प्रदूषक माना जाता है।
   (अ) कोलकाता (ब) दिल्ली
   (स) मुम्बई (द) गाँधीनगर

आदर्श उत्तर :–1. (स) झोपड़पट्टी 2. (अ) चेन्नई 3. (स) टाइफाइड 4. (स) कार्बन मोनोआक्साई 5. (स) मुम्बई

13.16 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा हेतुद्ध

1. नगरीय समस्याओं की व्यवहारिक स्वरूप की विवेचना कीजिये।

   .....
   .....

2. नगरीय पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख कारको का वर्णन कीजिय।

   .....
   .....

3. परिवहन समस्या पर प्रकाश डालिये।

   .....

.....

.....

4. आवासीय समस्या क्या है? प्रमुख आवासीय समस्या की व्याख्या कीजिये।

.....

.....

5. भारतीय नगरों की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

13.17 सन्दर्भ/उपयोग पुस्तके

1. वर्मा, लक्ष्मी, नारायण, 1983 : अधिवास भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 300 पृष्ठ।
2. शर्मा, राजीव लोचन, : प्रादेशिक एवं नगरीय नियोजन, किताबघर, कानपुर ।
3. सिंह उजागर, 1974, : नगरीय भूगोल, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ आकादमी, लखनऊ, 413PP.
4. सिंह, काशीनाथ एवं जगदीश सिंह, 1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी।
5. Tiwari, R.C. 1984', Settlement System in Rural India: A Case Study of the Lower Ganga Society, Allahabad, 192PP.
6. Turnery R.1962 : India's Urban future Orford University Press, Bombay.
7- Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69
8. तिवारी राम चन्द्र (1983) : अधिवास भूगोल–विकास एवं सम्भावनाएं भूसंगम अंक–1 संख्या , प्र0 41.
9. Singh R.L. et al (1976) : Geographic Dimensions of Rural Settlements (Vanansi : N.9 S.7)
10. सिंह काशी नाथ एवं सिंह जगदीश ;1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, वाराणसी : तारा पब्लिकेशन वाराणसी।
11. तिवारी राम चन्द्र :अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

12- करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।

13. डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

इकाई–14 नगरीय नियोजन एवं मास्टर प्लान

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 नगरीय नियोजन : अर्थ एवं परिभाषा

14.3 नगरीय नियोजन के उद्देश्य

14.4 नगरीय नियोजन के सिद्धान्त

- 14.4.1 नगरीय विकेन्द्रीकरण
- 14.4.2 उपवन उपनगर एवं उपवन नगर
- 14..4.3 नव नगर
- 14.4.4 विस्तारित नगर
- 14.4.5 नगरीय नवीकरण
- 14..4.6 मलिन बस्ती समाशोधन
- 14.4.7 पुनर्वासन बनाम पूनर्विकास
- 14.4.8 यातायात पृथक्करण
- 14..4.9 नगर केन्द्र पुनर्विकास
- 14.4.10 भावी नगरों हेतु नियोजन
- 14..4.11 नगरीय प्रादेशिक नियोजन
- 14.4.12 पोषणी नगरीय नियोजन

14.5 नगर नियोजन के प्रकार

14.6 भारत में नगरीय नियोजन

14.7 नगरीय विन्यास योजना

14.8 मास्टर प्लान

14.9 राष्ट्रीय नगरीकरण नीति

14.10 भारत के नियोजित नगर

14.11 सारांश

14.12 शब्द सूची

14.13 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

14.14 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

14.15 संदर्भ / उपयोगी पुस्तकें

14.0 प्रस्तावना

अधिवास भूगोल के लेखन की यह इकाई भूगोल के आधार –पाठ्यक्रम MAG0–109 की चौदहवी इकाई है। इस इकाई के अन्तर्गत नगरीय नियोजन, अर्थ एवं परिभाषा, नगरीय उद्देश्य का अध्ययन करेगे। नगरीय नियोजन सिद्धान्त के अन्तर्गत नगर विकेन्द्रीकरण, उपवन नगर, नवनगर व विस्तारित नगर का आदि का आप अध्ययन करेंगे। आप नगर नियोजन में मास्टर प्लान की महत्ता व राष्ट्रीय नगरीकरण नीति आदि को समझेंगे। इसमें भारत के बड़े नियोजित नगर (जमशेदपुर, चण्डीगढ़, नयी दिल्ली, राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश, मुम्बई महानगरीय प्रदेश व इलाहाबाद) के मास्टर प्लान का अध्ययन करेगे।

14.1 उद्देश्य

भूगोल में आधार पाठ्यक्रम MAG0–109 अधिवास भूगोल की चौदहवी इकाई है। इस इकाई के बाद आप–

अधिवास भूगोल के अन्तर्गत–नगरीय नियोजन – अर्थ व नियोजन के उद्देश्यो को समझ पायेगे।

- अधिवास भूगोल की उस इकाई में भारत के नियोजित नगरों की व्याख्या कर सकेगे।
- अधिवास भूगोल की इस इकाई में आप ''मास्टर प्लान''के विवरण को पूर्णतया समझ सकेंगें।
- अधिवास भूगोल की इस इकाई में आप राष्ट्रीय नगरीकरण नीति को सुचारू ढंग से समझ सकेंगे।

14.2 नगरीय नियोजन : अर्थ एवं परिभाषा

नगरीय, नियोजन नगर की आर्थिक, सामाजिक और भौतिक विशेषताओं में एकांकी व सामूहिक दोनो रूप के सुधारों का प्रयास करता है, जिससे नगर का एक विशेष ढाँचा तैयार हो सके जो उसके भौतिक पर्यावरण हेतु अनुकूलतम और पोषणीय हो। नगरीय नियोजन नगर की उपलब्ध भूमि का सुनियोजित उपयोग है, जिससे वहाँ निवास करने वाले समस्त नागरिक, आवास, क्रीडा, मनोरंजन, आर्थिक एवं सामाजिक स्तर पर ऊपर उठ सकें। नगर नियोजन का क्षेत्र बहुत व्यापक है, जिसमें, बहुस्तरीय, बहुआयामी और बहुउद्देशीय विकास समाहित हैं।

प्रोफेसर स्टैम्प के अनुसार ''नगर नियोजन का कल्याण और उनका जीवन स्तर ऊपर उठाना है।''

ए०पी० लेविस अनुसार– ''नगर नियोजन मात्र एक दूरदर्शी प्रयास है, जो नगर एवं उसके पर्यावरण के ऐसे व्यवस्थित और प्रेक्षणीय विकास की अभिप्रेरित करता है, जिसमें विवेकपूर्ण ढंग से स्वास्थ्य, नागरिक, आवश्यकताओं और सुविधाओं तथा व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रगति का समुचित ध्यान है।''

प्रोफेसर, जैक्सन के अनुसार–''नगर एवं ग्राम्य नियोजन भूमि के उपयोग और विकास से सम्बद्ध है।''

जेम्स फोर्ड के अनुसार– ''नगर नियोजन नगर के सतत् परिवर्तनशील प्रारूप से मुख्य रूप से सम्बन्धित एक विज्ञान एवं कला है।''

नोलेड और वेरिंग के अनुसार– ''नगरीय नियोजन का प्रमुख उद्देश्य नगरीय जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है।

14.3 नगरीय नियोजन के उद्देश्य

नगरीय नियोजन के भिन्न–भिन्न उद्देश्य हो सकते हैं, परन्तु कुछ उद्देश्य सभी प्रकार के नियोजन से सम्बद्ध होते है। **पैट्रिक एयर क्राम्बी** ने तीन निम्नलिखित उद्देश्य बताएँ है। सौन्दर्य, स्वास्थ्य एवं सुविधा अर्थात् नगर नियोजन द्वारा बनाये गये नगर सुख सुविधा, सौन्दर्य, आकर्षण व सुन्दरता का केन्द्र हो, साथ ही उसमें सफाई व प्रदूषण नियन्त्रण की सम्पूर्ण व्यवस्था हो, जिससे वहाँ रहने वाले लोग स्वस्थ व सुविधा सम्पन रहे।

आर्थर बी गैलियन की पुस्तक "Urban Pattern" में नगर नियोजन का मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य, समाजकल्याण सुरक्षा बताया है। इसमें नगरीय भूमि उपयोग, का आपस में समन्वय आदि बताया है।

14.4 नगरीय नियोजन के सिद्धान्त

नगर नियोजन के कई सिद्धान्त होते है, जिसमें समय की मांग के अनुसार परिवर्तन होते रहते है। वर्तमान समय में नगर नियोजन का अर्थ भौतिक, आर्थिक व सामाजिक, सुविधाओं से सम्पन्नता के सन्दर्भ में लिया जाता है। इसके अन्तर्गत आज नगरों में स्कूल, कॉलेज अस्पताल खेल के मैदान, वाटिका, सिनेमाघर, हरितपेटी, प्रदूषण नियन्त्रण व मलिन बस्ती पर सुधार पर ध्यान दिया गया है।

फ्रान्सीसी लेखक आगस्टिन ने व्यापार उद्योग, प्रशासन एवं आवास पर का सुझाव दिया है। इसके अतिरिक्त वैसेट ने नगर के तत्वों जैसे सड़क,पार्क, सार्वजनिक सुरक्षित क्षेत्र, भवनों के लिए क्षेत्र, कटिबन्ध जिले, सार्वजनिक उपयोगी मार्ग एवं छोटी सड़के मुख्य है। आर्थर बी गैलियन ने नगरीय नियोजन हेतु –

(1) भूमि उपयोग नियोजन (2) परिसंचरण नियोजन को महत्वपूर्ण माना है। पैट्रिक एबरक्राम्बी ने नगरीय नियोजन – कटिबन्ध, संचार के साधन, खुले स्थान एवं सामुदायिक समूहन पर विशेष बल दिया है।

14.4.1 नगरीय विकेन्द्रीकरण (Urisan Decentralization)

इस सिद्धान्त के अनुसार महानगरों पर जनसंख्या के अतिरिक्त दबाव को कम करने के लिये उद्योगों व जनसंख्या का विकेन्द्रीकृत किया गया है, जिसमें उपनगरी क्षेत्रों में नये नगर का निर्माण किया गया है, जिससे लोगो के रहने के लिये अधिवास व रोजगार के साधन उपलब्ध हो सके। इसके अतिरिक्त यहाँ स्कूल, कॉलेज, आवास, अस्पताल कारखानों व मजदूरों के लिये अलग कालोनियाँ बनायी जाती है।

उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध सल्टायर, बोर्नविले, पोर्ट सनलाइट, एवं क्रेसवेल ऐसे नगर है, जिसे उद्योग पति द्वारा बसाया गया है।

14.4.2 उपवन उपनगर एवं उपवन नगर (Garden Suburb and Canden City)

इस सिद्धान्त का विकास "एबेजेनर होवार्ड" 1898 में किया इन्होंने लन्दन के आधार पर नये नगरों की संकल्पना की। इस नगर की कुल जनसंख्या 30000 व ग्रामीण व नगरीय समावेश होना चाहिये। इसमें कई वार्डों में विभाजित तथा अरीय होना चाहिये। इसके केन्द्र में एक स्कूल, चतुर्दिक परिधीय रूप में रेलमार्ग, सीमान्त क्षेत्र, उद्योग धन्धे तथा बाहरी भाग पर हरितपेटी (Gireen Belt) होना चाहिये। होवर्ड के अनुसार उपवन नगर कृषि क्षेत्र में स्थापित होना चाहिये। होवार्ड की संकल्पना पर आधारित प्रथम उपवननगर ''लिपूवर्थ'' तथा द्वितीय ''वेल्विन'' है।

14.4.3 नव नगर (New Town)

नवनगर की संकल्पना के विकास पैट्रिक एबरक्रोम्बी (1944) का विशेष महत्व है, जिन्होने लन्दन नगर का बृहत्तर स्वरूप प्रदान करते हुए हरित पेटी से बाहर नगरी की स्थापना प्रस्तुत की। इन नगरों की बनावट में उद्योग धन्धों, कारखानों व व्यापारिक केन्द्रो का विशेष ध्यान दिया गया। ब्रिटेन में नवीन कस्बा अधिनियम (1946) पारित किया गया, इसके बाद इस प्रकार के कई नवीन नगरों को स्थापित किया गया। अमेरिकी नियोजक क्लेन्रेन्स पेरी को "Neighbourhood' सिद्धान्त के बाद दुकान व विद्यालयों की बात स्पष्टता स्वीकार की गयी। ग्रेट ब्रिटेन की नवीन नगर की संकल्पना कई देशो में काफी लोकप्रिय हुई हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका,फिनलैण्ड फ्रांस, स्वीडन आदि देशों में कई नगर इसी आधार पर बनाये गये है।

14.4.4 विस्तारित नगर (Expanded Town)

ये ऐसे नगर है जो अतिरिक्त जनसंख्या का आप्रवासन करके नगरों में औद्योगिक विकास के लिये प्रोत्साहित किये जाते हैं। इसके साथ बड़े नगर की जनधिक्यता से भी छुटकारा मिलता है। इन नगरों में पुराने नगर से कुशल मजदूर, कारीगर, उद्योगपतियों आदि का पलायन हो जाता है, जिससे इन नगरों में आर्थिक विकास और समृद्धि बढ़ाने में बड़ा योगदान मिलता है।

14.4.5 नगरीय नवीकरण(Urban Renewal)

यह नगरीय नियोजन की एक महत्वपूर्ण संकल्पना है, जिसके अन्तर्गत वर्तमान नगरों का पुनरुद्वार किया जाता है।भूमि उपयोग का इसमें विशेष महत्व होता है। भूमि के आधार पर नई योजनाओं के सुझाव दिये जाते है तथा नियोजित ढंग से 10, 20 या अधिक वर्षों के लिये मास्टर योजना बनायी जाती है। जिसमें आवास, प्रशासन, व्यापार मनोरंजन आदि अलग–अलग क्षेत्र निर्धारित किये जाते हैं।

14.4.6 मलिन बस्ती समासोधन (Slum Clearance)

मलिन बस्तियाँ नगरीय क्षेत्रों की एक बड़ी समस्या है। जिसके कारण नगर को सौन्दर्यीकरण नहीं हो पाता है। इसे समाप्त करना प्रशासनिक चुनौती भी है। नगरीय नवीकरण के अन्तर्गत दो प्रकार से इन बस्तियों को समाप्त किया जा सकता है। प्रथम इन बस्तियों में रहने वाले लोगों को कम या मुफ्त में नये घर (सामान्यतः नगर के शहरी भागों मेंद्ध बनाकर दिये जाये। अधिकतर इन बस्तियों पर को समाप्त करके नियोजित बस्तियाँ बनायी जाती है।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत इन मलिन बस्तियो में बिजली, पेय जल, सड़क,जल निकास, सीवर आदि की व्यवस्था कराकर उनके सामाजिक व आर्थिक सुधार का प्रयास कराया जाय। भारत जैसे विश्व के कई देश सम्मिलित है जिन्हें इन योजनाओं में विशेष सफलता नही मिल पायी है। भारत में वाल्मीकि, अम्बेडकर आवास और जवाहरलाल नेहरू नेशनल अर्बन रिन्यूवल मिश (JNNURM) मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

14.4.7 पुनर्वासन बनाम पुनर्विकास

पुनर्वासन व पुनर्विकास के बीच एक प्रतिस्पर्धा देखने को मिलती है। पुनर्वासन के अन्तर्गत पुराने मकानों की मरम्मत कर उन्हें सुविधायुक्त करना है। इसके समर्थक यह तर्क देते हैं कि मरम्मत से कम खर्च में आवासों व क्षेत्र का समय पर विकास हो जाता है जिससे नगर के लोगों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पड़ता है।

इसके पुनर्विकास के अन्तर्गत नगर की जीर्णक्षीण इमारतों एवं विन्यास के सुधारने के लिये सही एक माध्यम है। यदि इमारते जीर्णक्षीण, पुरानी व कमजोर हो गयी है तो पुनर्विकास अधिक उपयोगी होगा।

14.4.8 यातायात पृथक्करण

आज बढ़ती हुई जनसंख्या व उसकी आवश्यकतानुसार बढ़ते हुए यातायात नगर के लिये एक समस्या बने हुए है। इन यातायातों द्वारा, भारी भीड़, अवरोध, ध्वनि प्रदूषण व वायु–प्रदूषण हो रहा है। इस समस्या से बचने के लिये सड़को को चौड़ी करना, मन्दगति वाले वाहनों को अलग मार्ग पर चलाना, भूमिगत व हवाईपुल बनाना, भूमिगत रेल आदि यातायात पृथक्करण की संकल्पना का विकास किया गया है। इसके अन्तर्गत (CBD) केन्द्रीय व्यापारिक मार्ग एवं अन्य संकुल क्षेत्र में पैदल चलकर खरीद फरोख्त करना पड़ेगा, तथा अन्य वाहनो को चलाने पर प्रतिबंध रहेगा।

14.4.9 नगर केन्द्र पुनर्विकास

नगर के केन्द्रीय व्यापारिक (CBD) एवं भीड़ वाले,क्षेत्रों में दो प्रकार की नीतियों का प्रस्ताव पारित किया गया है। इसमें प्रथम के अन्तर्गत केन्द्रीय क्षेत्र में बेकार भूमि को पूर्णतया समाप्त करने का प्रस्ताव दिया गया है। द्वितीय के अन्तर्गत स्वचालित वाहनो के क्षेत्र में पैदल यात्री को प्रतिबन्ध किया जाय।

14.4.10 भावी नगरों हेतु नियोजन

नगरीय नियोजन का एक महत्वपूर्ण पहलू नगर का अन्तरिम विकास करना है, क्योंकि नगर की संख्या कितनी होनी चाहिये। इन्हे कहाँ–कहाँ अवस्थित होना चाहिये, इनका आकार की आकृति कैसी व कितना बड़ा होना चाहिये। ये सारे प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है एवं गहरा चिन्तन का विषय है। ऐसी कुछ उपायों का सुझाव प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कुछ का विवरण प्रस्तुत किया गया है–

1. **उपग्रहीय नगर (Satellite Town)–** इसके अन्तर्गत बड़े नगरो के आस–पास छोटे उपग्रहीय नगरों को विकास का सुझाव प्रस्तुत किया गया है स्वयं केन्द्रित एवं मुख्य नगर से दूर इकाई के रूप में हो। इस प्रकार के नगरों मैं सभी सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिये, जिससे मुख्य नगर का भार कम हो सके।
2. **अरीय या अंगुली आयोजना, (Radial or Finger Plan)–** इसके अन्तर्गत नवीन नगरों या उपनगरों का निर्माण अरीय योजना के अन्तर्गत केन्द्र से विभिन्न दिशाओं की ओर किया जाता है, जो रेलवे लाइन व पक्की सड़कों के किनारे स्थित होता है। इनमें मुख्य व उपनगर के बीच व्यापार व यातायात का सम्बन्ध होता है।
3. **रैखिक नगर (Linear City)** –इसमें नगर का विकास एक प्रमुख राजमार्ग के सहारे होता है, जिसमें एक ओर दुकाने प्रतिष्ठान तथा दूसरी ओर कारखाने स्थित होते है। अधिवासों का विकास बाद में होता है। इस आयोजना का विकास 'अतिरो सोरिया माता' द्वारा प्रस्तुत की गयी, जो एक स्पेनिश वास्तुशिल्पी थी जिन्होंने मेड्रिड के बाहरी भाग का एक रैखिक नगर की स्थापना की। 1965 में पेरिस व लेविस सीन नगर का विकास किया गया।
4. **प्रविकीर्ण नगर (Dispersed City) –**प्रविकीर्ण नगर आयोजना का लोकप्रिय बनाने हेतु अमेरिकी वास्तुविद – नियोजक राईट व स्विट्जरलैण्ड के निवासी ली कार्बजियर की विशेष भूमिका है। इन्ही के द्वारा बनायी गयी आज भी प्रचलित है। राइट के अनुसार ऐसे नगर नियोजन प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, जो एकल परिवार के अधिवासों के आस–पास पर्याप्त खुला क्षेत्र के

साथ दुकानें व कारखाने भी उपलब्ध हो तथा ग्रामीण वनगरीय संगम होना चाहिये। इसके अतिरिक विशिष्ट प्रकार के राजमार्ग से जुड़े होने चाहिय।

काबूजियर ने इसी सिद्धान्त के आधार पर विश्व के अनेक नगरों में मलिन बस्तियों के स्थान आधुनिक सुविधा से युक्त बहुमंजिली इमारतों का निर्माण किया।

14..4.11 नगरीय प्रादेशिक नियोजन (Urban Regional Planning)

इसके अन्तर्गत किसी देश मे या क्षेत्र में दस लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले नगरों के आधार पर वृहद (Macro) नगरीय प्रदेशों का निर्माण कर नगरीय प्रादेशिक नियोजन किया जाता है। 2 लाख से 10 लाख जनसंख्या के मध्य वाले ''मात्रिक (Modular) नगरों वाले ''मध्य स्तरीय प्रदेश (Meso Region), 20000 से 2 लाख जनसंख्या वाले कस्बों द्वारा निर्मित ''मध्यम उपस्तरीय प्रदेश (Meso Sub Region) एवं 2500 से 20000 वाले जनसंख्या सूक्ष्म नगरी को (Micropolis) कहते है। इसका विस्तार 10–25 ग्रामीण क्षेत्र तक होता है। इस योजना के अन्तर्गत बड़े नगरों से छोटे नगरो की ओर विक्रेन्दित करने का प्रयास किया जा रहा है। भारत वर्ष मे गाँवो की संख्या 5000 है। यहां ऐसे नगरो का विकास करके उन्हें गाँवो के मध्य एवं वृहद स्तरीय नगरी से समाकलित कर नगरीय प्रादेशिक नियोजन को एक सार्थक रूप प्रस्तुत किया जा सकता है।

14.4.12 पोषणीय नगरीय नियोजन(Sustainable Urban Planning)

पोषणीय नगरीय नियोजन के अभिप्राय से तात्पर्य ऐसे नगरों के विकास से है, जो पूर्णरूप से, स्वच्छ, आत्मनिर्भर, भीड–भाड़ मुक्त, वस्तु संचरण में कोई बाधा न होती है, तथा वहाँ रहने वाले निवासियों की मौलिक आवश्यकताओ की प्राप्ति हेतु कोई बाधा न हो। यह नगरीय विकास के आदर्श की स्थिति है का घोतक है।

प्रो० आर० पी० मिश्र (1998) ने पोषणीय नगरीय नियोजन का उद्देश्य विश्व के विषय में निम्न सुझाव प्रस्तुत किये है।

1. प्राकृतिक एवं मानवीय साधनो की पूर्ति करना तथा इसके. लिये पारिस्थितिक संतुलन को क्षतिग्रस्त होने से बचाना।
2. बड़े कस्बों को विकेन्द्रित करते हुए लघु एवं माध्यमिक कस्बों का विकास करना।
3. परिसम्पत्तियाँ, अर्जित क्षमता एवं उत्पादकता के सन्दर्भ विषमताओ को कम करना।
4. ग्रामीण तथा नगरीय उभय क्षेत्रों में स्थानीय प्रशासन इस प्रकार विकसित करना, ताकि विकास कार्यक्रमों का संचालन पूर्ण रूप किया जाय। इसमें सरकार द्वारा संचालित उच्च स्तरीय व स्वयं सेवी संस्थाओं की सहभागिता हो सकती है।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नियोजन एवं विकास की विधाओं का उचित प्रयोग करके सुधार किया जा सकता है–

1. प्रगति कारण – समस्या सुधारक
2. विनिर्धारक – प्रवृत्ति सुधारक
3. सामरिक – अवसर खोजी
4. मानकीय – लक्ष्य उपार्जक

5. सहभाजक — जनाभिमुखी

ऐसी सम्बद्ध नीतियाँ तभी विकसित हो सकती है, जब समाज में इसकी आवश्यकता प्रतीत है, तथा राजनीति तंत्र द्वारा उसे सम्पत्ति प्रदान होती हो। इस प्रकार की नीतियाँ तभी सफल हो सकती है, जब राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ उपलब्ध हो।

14.5 नगर नियोजन के प्रकार

नगर नियोजन के उद्देश्य, विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं। नगर नियोजन के उद्देश्यों की प्रधानता को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. **निवारक नियोजन–** इसके अर्न्तगत नगर की संभावित समस्याओं पर ध्यान देते हुए नीतियाँ तय की जाती है।
2. **उपचारी नियोजन –** इसके अन्तर्गत नगर की वर्तमान समस्याओं को ध्यान में रखकर समाधान करने का प्रयास किया जाता है। इसे पुनःतीन उपभागों में बाँटा जाता है–

   (अ) परिचालित नियोजन– इसके अन्तर्गत नगरीय जीवन को उच्चकोटि सुविधा सम्पन करना।

   (ब) पुनर्निर्माणात्मक नियोजन– इसका उद्देश्य नगर की समस्याओं पर ध्यान देना है।

   (स) नवीन नगरो का नियोजन– इसके अन्तर्गत नये नियोजित व नगरीय क्षेत्रों का निर्माण किया जाता है।

14.6 भारत में नगरीय नियोजन

भारत में प्राचीन काल से ही नगरीय नियोजन को आपनाए जाने के संकेत मिलते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र, मनसारा तथा अर्थशास्त्र आदि में वास्तुशिल्प के नगर नियोजन का उल्लेख मिलता है। मोहनजोदाडों, हडप्पा व लोथल आदि नगर भारतीय प्राचीन इतिहास के स्वर्णिम नगर माने जाते हैं। इननगरों का वास्तुशिल्प बहुत ही विकसित था। मोहनजोदाड़ो नगर में सड़को का जाल सा पाया गया हैं। ये सड़के आपस में समकोण पर काटती है। लोथल नगर मोहनजोदाड़ों काल का प्रमुख बन्दरगाह माना जाता है।

मेगास्थनीज के अनुसार–पाटलीपुत्र नगर 16 किमी लम्बा एवं 3.2 की चौडाई में विस्तृत था, जो चारो ओर गहरी खाई से घिरा है। नगर का किला 60 दरवाजो से युक्त था। शाही महल फव्वारों से सुसज्जित था।

मुगल कल में आगरा, फतेहपुर, श्रीनगर व शहजहांबाद आदि प्रमुख नगर थे। शाहजहाँबाद दिल्ली कहा जाता है। इसका निर्माण शाहजहाँ ने कराया था। इस नगर के प्रवेश के चार गेट थे (दिल्ली गेट, कश्मीरी गेट, अजमेरी गेट, एवं लाहौरी गेट आदि। फैज बाजार व चाँदनी चौक विश्वप्रसिद्ध बाजार थे। यहाँ मस्जिद, फव्वारें, बाग–बगीचे आदि प्रमुख है। व्यापारी व कारीगरों की बस्ती को कटरा, धनी व अभिजात वर्ग के मकानो को हवेली व हित्ता कहा जाता था, जो पूर्णतयः सुख सुविधाओं से पूर्ण थी।

मध्ययुग के नियोजित नगरो में जयपुर का महत्वपूर्ण स्थान था। यह नगर सन् 1927 ई0 में महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा स्थापित किया गया, जिसकी प्रशंसा शिल्पशास्त्री श्री हॉवेल ने सुनियोजित योजना के अन्तर्गत की। इसका निर्माण गुलाबी पत्थरों से किया गया इसलिये उसे

गुलाबी नगर भी कहते हैं। इसे भारत का पेरिस भी कहते है।

अंग्रेजी शासन के दौरान पाश्चात्य पद्धति पर नगर नियोजन की शुरुआत हुई, जहाँ नगरों में रहने वाले लोगो के लिये अधिक सुविधाएँ देनी की बात की गयी। 1915 में मद्रास के गर्वनर लार्ड पैण्टलेण्ड ने महान – नगर नियोजक ''पैट्रिक गैडिज'' को आमंत्रित किया, जिन्होंने स्वच्छता की प्रणाली विकसित करने का सुझाव दिया। गैंडिज के सुझाव के आधार पर यह कार्य कार्यपालिका को सौंपा गया। मुम्बई, मैसूर कोलकाता, लखनऊ, कानपुर आदि मुख्य रूप सम्मिलित है। मैसूर इंम्प्रूवमेंट ट्रस्ट से मैसूर नगर में गार्डन सिटी की कल्पना करने का प्रयास किया।

दिसम्बर 1911 में ब्रिटिश सरकार ने सरकार नगर के रूप में नयी दिल्ली को राजधानी बनाने को प्रस्ताव बनाने का प्रयास किया गया। यह भारत का प्रथम उपवन नगर था, जिसकी आयोजना प्रसिद्ध नियोजक ''एडविन ल्यूटेन्स'' द्वारा की गयी।

1911 में प्रसिद्ध उद्योगपति जमशेद जी टाटा ने प्रसिद्ध वास्तुशिल्प 'जूलियन केनेडी' के निर्देशन में जमशेदपुर नगर का निर्माण कराया। इस प्रकार जमेशदपुर देश का स्वच्छ, सुन्दर और सुनियोजित औद्योगिक नगर बन गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा मकानों के निर्माण पर बल दिया गया, जिसमे नगर की स्वच्छता, मलिन बस्तियों, परिवहन, जलापूर्ति आदि पर ध्यान दिया गया। पाकिस्तान से आये शरणार्थियों का पुनर्वास करना चुनौतीयुक्त कार्य था। वही दूसरी ओर नगर के विकास के लिये दुर्गापुर, भिलाई राउरकेला व चितरंजन जैसे नगर स्थापित किये गये। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक केन्द्रों के रूप में चण्डीगढ़, भुनेश्वर, गाँधीनगर, इटानगर आदि तथा कॉडला व पाराद्वीप को प्रसिद्ध बन्दरगाह के रूप में नियोजित किया गया।

वर्तमान में नगरीय नियोजन में नगरों की समस्याओं का निराकरण व पर्यावरण को बेहतर बनाने का प्रयास किया जा रहा है, जिसके लिये मास्टर प्लान (Master Plan) बनाया जा रहा है, जिससे नगरीय सुविधाओं को ध्यान में रखा जा सके।

14.7 नगरीय विन्यास योजना

नगरीय विन्यास नगर की भौतिक विशेषताओं प्रौद्योगिकी एवं सांस्कृतिक सभी प्रकार की आवश्यकताओं को प्रभावित करता है। यह समतल मैदानी क्षेत्र, पर्वतीय क्षेत्र से अलग होता है। इसी प्रकार औद्योगिक विन्यास व प्रशासकीय विन्यास से पूर्णतया भिन्न होता है। सड़को के ग्रिड पर आधारित नगरीय विन्यास निम्न प्रमुख वर्गो में बाँटा है–

1. **आयताकार विन्यास (Rectangular Lay out plan) –** आयताकार विन्यास समतल मैदानी क्षेत्रों की तरह अधिक उपयुक्त मानी जाती है, इसकी सड़के एक दूसरे को समकोण तथा जिसका मिलन क्षेत्र गोलाकार क्षेत्र होता है। नगर का प्लाट आयताकार होता है, जिसके निर्माण की लागत कम होती है। सड़के समकोण पर काटने के कारण दुर्घटना अधिक है। जयपुर नगर इसी विन्यास के उदाहरण के रूप में आता है।

2. **आयताकार एवं कर्णवत विन्यास (Rectangular and Diagonal Plan)**–यह आयताकार विन्यास का संशोधित रूप में है, जिसमें विकर्णो को परस्पर मिला दिये जाने के कारण दूरी कम हो गयी है। विकर्णों के मिलन पर पार्क पाया जाता है। इसमें दुर्घटना की सम्भावना कम होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डी.सी. इसी

विन्यास से सम्बन्धित है।

3. **अरीय विन्यास (Concentric and ocial Plan**द्ध–यह विन्यास नगरीय विकास की प्राकृतिक विधि है। इसमें (CBD) का विशेष महत्व है, जहाँ सड़के किरणवत् सभी दिशाओं में फैली हुई है। यहाँ भीड–भाड अधिक पाया जाता है, इसमें नगर कई छोटी सड़क व गलियों में विभाजित है, जिसमें किसी प्रकार का निर्माण किया जा सकता है।

4. **संकेन्द्रीय एवं अरीय विन्यास (Concentric and Axial Plan)**–यह विन्यास अत्यधिक प्रचलित व सुविधाजनक संकेन्द्रीय सड़के ''रिंग सड़क'' कहलाती है। विएना व मास्को नगर इसके अन्तर्गत सम्मिलित है।

5. **आयताकार एवं चक्रजाल विन्यास (Rectangular and Barnet Plan)–** यह दो विन्यासों का मिश्रित रूप में है जो समतल क्षेत्रों के लिए अधिक उपयोगी है। इसमें वृत्ताकार सड़कों से अरीय सड़कें निकलती है, जो काफी आकर्षक व सुविधाजनक होती है। दिल्ली व कैनबरा नगर इसी विन्यास के अन्तर्गत आते हैं।

6. **जैविक विधिका विन्यास (Biological street Plan)** –इस विन्यास का जन्म स्वयं हो जाता है, जिसमें सड़के वक्राकार खण्डित व विभिन्न चौडाई वाली होती है। उसमें भवन सड़को के किनारे व आकर्षण का केन्द्र होती है। मांट्रियल नगर इसका उदाहरण है।

7. **रैखिक विन्यास (Linear Plan)**–इस प्रकार का विन्यास सड़क व नदियों के किनारों पर स्थित होता है। सभी प्रमुख कार्यालय, व्यापारिक एवं वाणिज्य संस्थान तथा औद्योगिक प्रतिष्ठान मुख्य सड़के के किनारे स्थित होता हैं।कनाडा का विक्टोरिया व मथुरा नगर इसी विन्यास के अन्तर्गत आते है।

8. **वेदिका विन्यास (Terracey Plan)–** वेदिका विन्यास, पर्वतीय अंचलों में अधिक लोकप्रिय है। यह दूर से देखने में सीढ़ीनुमा आकार दिखाई पड़ती है। शिमला व नैनीताल इसी प्रकार के नगर है।

9. **तारक विन्यास (Star Plan)**–यह अरीय विन्यास का विकसित रूप है, जब किसी नगर का फैलाव केन्द्रीय भाग की सड़को के किनारे होता है, तो तारक विन्यास का जन्म होता है।

10. **मिश्रित विन्यास (Mixed plan) –** यह कई प्रकार के विन्यासो का मिलाजुला रूप है। वे जमशेदपुर नगर पहले संकेन्द्रीय वृत्त के रूप में था किन्तु बाद में इसे परिवर्तित कर आयताकार विन्यास के रूप में बसाया गया।

14.8 मास्टर प्लान (Master Plan)

किसी नवीन नगर के निर्माण व सुधार हेतु व्यापक और विस्तृत नियोजन को मास्टर प्लान कहते हैं। ''मास्टर प्लान उन विभिन्न प्रस्तावों की रूप रेखा है जो वर्तमान दशा में सुधार करने तथा नगर के भावी विकास को समन्वित रूप से नियंत्रित किये जाते हैं। यह एक आदर्श इकाई है। मास्टर प्लान एक बहुउद्देशीय योजना है, जिसमे मलिन बस्तियों में सुधार करना, अनियंत्रित विकास की दिशा प्रदान करना, पेयजल, सीवर, स्वच्छता आदि को सुनियोजित रूप से वितरित करना, आवास, स्कूल, चिकित्सालयों व अन्य सामाजिक सुविधाओं सुन्दर व आकर्षक रूप प्रदान करना है।

भारतवर्ष का प्रथम मास्टर प्लान मुम्बईनगर (1915) में बनाया गया, जिसे नगर महापालिका ने स्वीकृत रूप प्रदान किया। इसके मद्रास, चन्डीगढ़, भुनेश्वर, गाँधीनगर, दिल्ली आदि नगर एवं मास्टर

प्लान पर आधारित है।

14.9 राष्ट्रीय नगरीकरण नीति (National Urbanisation Policy)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय नगरों के संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण जनसंख्या, औद्योगिकीकरण का सामाजिक विकास आदि है। 2001 में देश की जनसंख्या का 27.8 प्रतिशत भाग नगरों में निवास करती थी। देश की 50 प्रतिशत जनसंख्या केवल उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडू, पश्चिम बंगाल व आन्ध्र प्रदेश में निवास करती है। इसके अतिरिक्त कर्नाटक, बिहार, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि राज्यों को सम्मिलित किया गया है। इन नगरीय क्षेत्रो में अनियमित विकास, आवासीय सुविधाओं की कमी, भीड़–भाड़, मलिन बस्तियाँ, गन्दगी, प्रदूषण, नगर नियोजन का अभाव आदि प्रशासन व समाजशास्त्रियों की लिये चुनौती है। इस समस्या के निराकरण हेतु राष्ट्रीय नगरीकरण नीति तैयार की गयी है, जिसकी विशेषता निम्न है–

राष्ट्रीय नगरीय नीति में प्रथम वरीयता आवास (Housing) व्यवस्था की दी गयी है, जिसका उद्देश्य नागरिको को आवास मुहैया कराना है। इसके अन्तर्गत नये उद्योगों, व्यवसायिक और पेशेवर संस्थानों को लघु, मध्यम व माध्यमिक स्तर पर नगर की स्थापना करना है।

14.10 भारत के नियोजित नगर

1. **जमशेदपुर–** जमशेदपुर नगर प्रथम नियोजित औद्योगिक नगर है। इसकी स्थापना 1911 में जमशेदपुर टाटा ने की थी। इस नगर में चार नियोजक जिनमें जूलियन केनेडी, एस.पी. टेम्पुल, पी०सी० स्टोक्स, तथा वर्तमान में आटो कोनिक्सबर्ज आदि मुख्य थे। जमशेदपुर नगर का प्लान कई आयोजना मिश्रित रूप है। पहले यह **L** आकार का था जो बाद में परिवर्तित हो गया। इस औद्योगिक नगर 60 प्रतिशत जनसंख्या से अधिक औद्योगिक कार्यो में लगी हुई है। TISCO और औद्योगिक केन्द्र की मुख्य इकाई है। कोनिक्सबर्जर द्वारा निर्मित मास्टर प्लान 1960 में समाप्त हो गया तथा इसे पुनः सुधारकर नये मास्टर प्लान बनाने की आवश्यकता है।

2. **चण्डीगढ़ (Chandigarh)–** राष्ट्रीय भारत के नवीन नगरों में चण्डीगढ़ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका निर्माण तत्कालीन मुख्य मंत्री ''प्रतापसिंह कैरो'' द्वारा हुई। नगर की स्थापना स्वच्छता, आवास, उपलब्धता, जलवायु, समापवर्ती क्षेत्रों द्वारा अधिक उत्पादन व भवन निर्माण आदि को ध्यान में रखकर हुई। यह चतुर्भुजाकार क्षेत्र में विकसित है। इस नगर की योजना 1950 में मेयर महोदय के अनुसार हुई। बाद में कार्बूजियर (1952) ने इसमें सुधार किया। नगर की सड़को का जाल ग्रिडोन पद्धति पर है। चण्डीगढ़ नगर की सड़कों पर सात श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। चण्डीगढ़ की रचना जैविक संकल्पना "Organic Concept' पर अभिप्रेरित है। नगर को एक जीवधारी की संज्ञा दी गयी है, जिसमें, प्रशासनिक क्षेत्र को शीर्ष, उत्तर पश्चिम का शैक्षणिक और दक्षिण–पूर्व का औद्योगिक क्षेत्र दो भुजाएं, मुख्य व्यापारिक व सांस्कृतिक नगर उपवन, हृदय खुला क्षेत्र फेफड़ा व सड़कें धमनियाँ आदि माना गया है।

3. **नयी दिल्ली (New Delhi)–** 1911 में ब्रिटिश सरकार ने दिल्ली को राजधानी बनाने का विचार किया, जिसका उद्देश्य एक प्रशासनिक नगर था। नये नगर की निर्माण में एडविन ल्यूटेन्स, तथा बेकर ने खाका तैयार किया। नगर का सम्पूर्ण आयोजन बड़े–बड़े षडभुजों पर आधारित है। कनाट पैलेस नगर का महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो एक व्यापारिक केन्द्र व वृत्ताकार नवीन बाजार के रूप में विकसित है। आन्तरिक व ब्राह्य वृत्ताकार सड़को के बीच का क्षेत्र कनाट पैलेस कहलाता है। यहाँ त्रिजीय रूप मे 9 चौड़ी सड़के विद्यमान है। उत्तर में पुरानी दिल्ली (चांदनी

चौक) है। दूसरी ओर जनपथ दक्षिण की ओर जोड़ती है। पूरब व पश्चिम में दो महत्वपूर्ण सड़कें है। इसमें इनविन रोड, राष्ट्रपति भवन व पार्लियामेन्ट स्ट्रीट संसद व प्रशासनिक कार्यालयों को जोड़ती है। यहाँ सडकें वृत्ताकार है इनके मिलन स्थल पर बड़े–बडे राउण्ड एबाउट्रस है। सड़को के किनारों पर छायादार वृक्ष स्थित है। जिसर कारण यह उपवन नगर लगता है।

4. **राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश (National Capital Region)–** भारत की राजधानी दिल्ली ने 50 वर्षों में सर्वाधिक वृद्धि की है, जो 2001 में बढ़कर 127.61 लाख पहुंच गयी, यह जनसंख्या 60 वर्षो में 18 गुना बढ़ गयी। दिन प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या कठिन समस्या है। इसे समाप्त करने हेतु आसपास की अन्य स्थानों पर सभी सुविधाएं जैसे रोजगार, आवास, स्वच्छता, चिकित्सा आदि उपलब्ध कराकर पलायन को रोकना हैं।

विस्तार एवं सीमांकन–

राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश का कुल योग चतुर्दिक 113 किमी० है, जिसकी परिधि 30242 को किमी. क्षेत्र में है। राजधानी प्रदेश 3 राज्यों (उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान) की 33 तहसीले सम्मिलित है। इसकी वर्तमान सीमा का निर्धारण ''नगर एवं ग्राम, नियोजन संगठन (TCPO) द्वारा जनांकिकीय विशेषताओं, नगरीय सम्बन्धों व नगरीय सुविधाओं के आधार पर बनाया गया।

उद्देश्य–

''इस प्रादेशिक योजना का उद्देश्य न केवल राष्ट्रीय राजधानी सुव्यवस्थित एवं युक्तिमूलक विकास की सुनिश्चित करना है, वरन् प्रदेश का तीव्र विकास इस दृष्टि से करना है ताकि यह देश के आर्थिक विकास के साथ आपने गहरे सम्बन्ध कायम कर सके।'' राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश की प्रादेशिक आयोजना का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या को नियंत्रित कर उस आर्थिक व सामाजिक गुणवत्ता को ह्रास न होने दे देना है। जनवरी 1985 में राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश नियोजन अधिनियम के पारित होने के उपरान्त एक सर्वाधिक परिषद् का गठन किया गया है जिसे प्रदेश की सभी प्रायोजनाओं का क्रियान्वयन और अनुश्रवण की जिम्मेदारी दी गयी है।

जनसंख्या वितरण–

राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश का मुख्य उद्देश्य दिल्ली महानगर की जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिये प्रदेश के कुछ चुने हुए नगरीय केन्द्रो में विकासात्मक प्रवृत्तियो को उपलब्ध कराना है। इसके कुछ नगर का चयन कर जनसंख्या को खपाया जा सकता है। इन नगरों में मेरठ, हापुड, बुलन्दशहर, खुर्जा, पालवाल, रेवाड़ी, भिवाडी, धारूहेरा, रोहतक, पानी एंव अल्वर आदि सम्मिलित है।

आर्थिक क्रियाओं का विसरण–

दिल्ली नगरीय क्षेत्र (DUA) पर जनसंख्या को कम करने के लिये उद्योग की स्थापना, केन्द्रीय सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यालयों का स्थानानन्तरण व थोक व्यापार और वाणिज्य केन्द्रो का हटाया जाना सम्मिलित करते है। बड़े, मध्यम व लघु कारखानों की स्थापना स्थानान्तरित करना है।

राजधानी प्रदेश में भूमि उपयोग–

राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश में वर्तमान की भाँति कृषि का महत्व अधिक होगा। नयी योजना के अनुसार बंजर व बेकार भूमि रोजगार के साधन मुहैया व सुधार किये जायेंगे।

प्रादेशिक परिवहन तन्त्र–

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में परिवहन व्यवस्था को सुधारने के लिये सड़क मार्ग को बनाने की योजना है, जिससे उसके परिवहन भार को कम किया जा सके।

अधः संरचनात्मक नियोजन–

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में अधः संरचनात्मक सुविधाओं को उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। नगर को साफ–सफाई पेयजल, कूड़ा निस्तारण, सीवर एवं जल निकास हेतु प्रथम वरीयता के आधार पर प्रदेशों के नगरों को महत्व दिया जायेगा। बिजली का प्रबन्ध नरोरा परमाणु केन्द्र से लेने की योजना है।

5. **मुम्बई महानगरी प्रदेश** –मुम्बई देश का सबसे बड़ा महानगर है, तथा विश्व में इसका दूसरा स्थान है। यहां विश्व प्रसिद्ध बन्दरगाह है जिसके द्वारा देश के 46 प्रतिशत व्यापार का संचालन होता है। देश की 15 प्रतिशत औद्योगिक आय यहीं से प्राप्त होता है। यह एक वित्तीय क्षेत्र भी है। राज्य की 16 प्रतिशत जनसंख्या यही निवास करती है। 41 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या मुम्बई में आश्रित है। यहाँ महाराष्ट्र राज्य कें 75 प्रातिशत उद्योग केन्द्रित है। यह सात द्वीपो पर बसा नगर है।

जनसंख्या –

मुम्बई की जनसंख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। 2011 की जनगणना के अनुसार 1.84 करोड़ पहुँच गयी है। औद्योगिक व वाणिज्यिक केन्द्र होने के कारण यहाँ आबादी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

पोताश्रय सुविधाएँ–

मुम्बई देश का सबसे बड़ा बन्दरगाह है। ये आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित है जिनमें तेल के टैंकर कपास के सामान, तिलहन खाद्यान्न, मैग्नीज, मशीन एंव विनिर्माण सम्बन्धी सामान उतारा चढ़ाया जाता है।

समस्याएँ –

मुम्बई नगर में अनेको समस्याएँ है, जिसमें जनसंख्या, आवास की कमी, परिवहन, यातायात के साधन व अन्य सुविधाएँ सम्मिलित है।

नियोजन–

समस्या के निराकरण के लिये 1971 में "Mumbai metropoliton Region Planning Board " का गठन किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य नगर की प्राचीन भव्यता बनाये रखने के साथ एक संतुलित विकास की ओर अग्रसर होना है।

6. **इलाहाबाद नगर का मास्टर प्लान**–इलाहाबाद नगर उत्तर प्रदेश के "KAVAL" महानगरों में से एक है। जिसका विस्तार गंगा व यमुना नदियों के किनारे पर हुआ है। पुराना इलाहाबाद मुस्लिमों द्वारा बसाया गया था, इसके बाद ब्रिटिश काल में सिविल लाइन्स, कन्टोमेन्ट, रेलवे कालोनी एवं प्रशासकीय क्षेत्रों की स्थापना हुई। इसके यह यूनाइटेड प्राविन्सेज की राजधानी

भी थी, बाद में यह लखनऊ स्थानान्तरित हो गयी। पवित्र संगम, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, उच्च न्यायालय व प्रान्तीय सरकार यहीं पर उपस्थित हैं।

नगर नियोजन का इतिहास–

इलाहाबाद में नगर नियोजन की शुरूआत ब्रिटिश शासनकाल में हुई, जहाँ उत्तर कैनिंगटन की नियोजित टाउनशिप का निर्माण हुआ। 1909 में म्यूनिसिपल बोर्ड आफ इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट कमेटी का गठन हुआ। जिसके द्वारा कई सड़को व आवासीय योजनाएँ सम्पन्न हुई।

महायोजना 2021 (Master Plan 2021)–

इलाहाबाद नगर का मास्टर प्लान तैयार करने का कार्य नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा तैयार किया गया। प्रथम महायोजना वर्ष 1967 में वर्ष 1991 तक अवधि के लिये, संशोधित महायोजना 1989 में वर्ष 2001 तक के लिये और नयी महायोजना 2003 में वर्ष 2021 तक बनायी गयी है।

आवासीय सुधार के प्रस्ताव –

इलाहाबाद नगर में आवासीय नगर का सम्पूर्ण बसाव क्षेत्र 61.91 प्रतिशत भाग तक है। 2021 की प्रक्षेपित 20.50 लाख की जनसंख्या हेतु 11,168,48 हेक्टेयर आवासीय योजना प्रस्तावित की कर गयी है।

व्यावसायिक–

इलाहाबाद नगर में 10,000 दुकानें एवं व्यापारिक प्रतिष्ठान है, जो मुख्यतः चौक, सिविल लाइन्स, कीडगंज, कटरा, कर्नलगंज, दारागंज, तेलियरगंज व नैनी में स्थित है। नयी योजना के अन्तर्गत इसे कानपुर व बनारस को पट्टी से जोड़ने की योजना है।

औद्योगिक–

नगर में औद्योगिक विकास लगभग स्थिरता की स्थिति में है। 2021 की महायोजना के अनुसार– कानपुर मार्ग, रीवा–मिर्जापुर मार्ग, वाराणसी मार्ग और सहसो के मिलन बिन्दु पर उद्योग धन्धे उपलब्ध कराये गये हैं।

कार्यालय–

नगर में लगभग 350 कार्यालय स्थित है, जो मुख्यतः, तेलियरगंज, सिविल लाइन्स, कटरा, ममफोर्डगंज, राजापुर व नैनी में मुख्य है।

मनोरंजन–.

मनोरंजनन प्रयोग के अन्तर्गत 4953.45 हेक्टेयर भूमि प्रस्तावित की गयी है। जिसमे नैनी, झूसी, फाफामऊ आदि मुख्य है।

सार्वजनिक एवं अर्द्ध सार्वजनिक सुविधाएँ–

इसके अन्तर्गत मुख्यतः शैक्षिक व स्वास्थ्य सुविधाओं को सम्मिलित किया जाता है। 2021 की महायोजना में नगर के हाइटेक शैक्षिक संस्थानी के विकास पर बल दिया गया है। जिसमें नैनी व झूंसी स्थापित है।

सार्वजनिक उपयोगिता एवं सम्भावनाएँ–

इसके अन्तर्गत सीवर, जलकल, विद्युत आदि की समस्या से निपटने की योजना बनायी गयी है, नगर के चारों ओर के नदी के किनारे बस्ती बनाने की है।

यातायात–

इसमें नगर की सड़के, रेलवे, ट्रक, टर्मिनल, बस टर्मिनल, हवाई अड्डा, जल परिवहन आदि की समस्याओं को सम्मिलित किया गया है। जिससे नगरवासियों को यातायात में कोई असुविधा न हो सके।

अन्य –

महायोजना के अन्तर्गत वर्षा काल में अकस्मात् बाढ़, जनधन की हानि की रोकथाम व पर्यावरण की सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना है।

महायोजना की समालोचना–

महायोजना की मूल्यांकन की दृष्टि से इलाहाबाद नगर प्रस्तावित योजना दूर–दूर तक कई अभाव से ग्रसित हो सकती है। महायोजना के प्रस्ताव तो अत्यधिक तर्कसंगत है, फिर जमीनी स्तर से कोसो दूर है। इलाहाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा प्रस्तावित योजनाओं के क्रियान्वयन मे जनधन व जागरूता की कमी के कारण अधिकतर योजनाएं फेल सी हो गयी प्रतीत होती है।

14.11 सारांश

आपने इस चौदहवीं इकाई में स्पष्ट रूप से यह जाना कि नगर सदैव ही मानव की सांस्कृतिक उपलब्धियों का विशिष्ट उत्पाद होता है। अध्ययन में नगर नियोजन के विषय में चर्चा की गयी है। इसके अतिरिक्त नगर नियोजन के उद्देश्य, सिद्धान्त आदि का उल्लेख किया गया है। नगर का विकेन्द्रीकरण क्या है? उपवन,उपनगर व उपवन नगर के विषय में वर्णन किया गया है। कोई नगर किस कारणवंश विकसित होते है, यह आप नवनगर विस्तारित नगर व नगरीय नवीकरण द्वारा जान गये है। विकसित नगरों की मुख्य समस्या मलिन बस्तियां है।

इसके बाद नगरों में पूनर्वास की प्रतिस्पर्धा भी रहती है। इसका अध्ययन भी आपने इस इकाई में किया। यातायात समस्या, भावी नगरों हेतु नियोजन का सुझाव भी ज्ञात हुआ। नगर नियोजन के प्रकार, भारत में नगरी नियोजन कब प्रारम्भ हुआ, मास्टर प्लान, राष्ट्रीय नगरीकरण नीति व भारत के प्रमुख नियोजित नगरों का अध्ययन भी आप इस इकाई के अन्तर्गत करते है।

14.12 शब्द सूची

विकेन्द्रीकरण	–	Decentralization
उपवन नगर	–	Garden city
पड़ोसी इकाई	–	Neighbour hood
विस्तारित	–	Expanded
प्रोदशिक	–	Regional
पुनर्वासन	–	Rehabilitation

मलिन बस्ती	–	Slum
यातायात	–	Traffic
पृथक्करण	–	Segregation
बाजार मार्ग	–	Market Streat
आयताकार	–	Rectangular
विन्यास	–	Layout
महानगरी	–	Metropoliton

14.13 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. नवनगर की संकल्पना किस विद्वान ने प्रस्तुत की ?
   (अ) गैलियन (ब) पैट्रिक एबर क्राम्बी
   (स) होवर्ड (द) जैक्सन
2. उपवन नगर का श्रेय किस विद्वान का जाता है ?
   (अ) एबेनेजर होवर्ड (ब) बोर्नविले
   (स) जैक्सन (द) पेरी
3. भारत का प्रथम मास्टर प्लान किस नगर का बनाया गया?
   (अ) कोलकाता (ब) चेन्नई
   (स) मुम्बई (द) हैदराबाद
4. भारत का प्रथम नियोजित औद्योगिक नगर बताइये।
   (अ) मिर्जापुर (ब) चण्डीगढ़
   (स) गाँधीनगर (द) जमशेदपुर
5. चण्डीगढ़ नगर का वास्तुशिल्प किसने तैयार किया ?
   (अ) ली काबूर्जियर (ब) जूलियन केनेडी
   (स) ल्युटेन्स (द) किस्टोफर टेम्स
6. दिल्ली के प्रथम उपवन नगर की आयोजना किस विद्वान द्वारा हुई ?
   (अ) एडविन ल्यूटेन्स (ब) काबूर्जियर
   (स) गैलिन (द) जैकसन

आदर्श उत्तर 1. (ब) (2) (अ) (3) (स) (4) (द) (5) (अ) 6. (अ)

14.14 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

1. नगर नियोजन का अर्थ बताइये और उसके उद्देश्यों की विवेचना कीजिये।

.....

.....

2. नगर नियोजन के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिये।
3. भारत के नगरीय नियोजन पर एक लेख लिखिये।
4. नगर नियोजन में उपवन नगर संकल्पना का आलोचनात्मकलेख लिखिये।

.....

.....

5. मास्टर प्लान की आवश्यकता एवं स्वरूप का विश्लेषण कीजिये।

.....

.....

6. नगर नियोजन के प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिये।

.....

.....

7. भारत के नियोजित नगरो पर एक निबन्ध लिखिये।

.....

.....

नोट–इकाई का अध्ययन के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर स्वयं लिखिये।

14.15 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह, काशीनाथ एवं जगदीश सिंह, 1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी।
2. वर्मा, लक्ष्मी, नारायण, 1983 : अधिवास भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 300 पृष्ठ
3. सिंह, उजागर, 1974 : नगरीय भूगोल, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 413 PP.
4. शर्मा, राजीव लोचन, : प्रादेशिक एवं नगरीय नियोजनकिताब घर।
5. Turner, R, 1962 : India's Urban future, Oxford University press, Bombay,
6. Tusari, R.C.,1984: Settlement System in Rural India: A Case Study of Lower ganga Yamuna Doab, The Allahabad Creographical Society Allahabad 192PP.
7. .Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69
8. तिवारी राम चन्द्र (1983) :अधिवास भूगोल–विकास एवं सम्भावनाएं भूसंगम अंक–1संख्या,प्र0 41.
9. Singh R.L. et al (1976) : Geographic Dimensions of Rural Settlements (Vanansi : N.9 S.7)
10. सिंह काशी नाथ एवं सिंह जगदीश ;1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, वाराणसी : तारा पब्लिकेशन वाराणसी।
12. तिवारी राम चन्द्र :अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

12 करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।
13 डॉ0एस0डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।

इकाई–15 ग्रामीण नियोजन

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 ग्रामीण नियोजन : ऐतिहासिक दृष्टिकोण

15.3. ग्रामीण नियोजन के उपागम

- 15.3.1 सामुदायिक विकास उपागम
- 15.3.2 लक्ष्य क्षेत्र उपागम
- 15.3.3 लक्ष्य समुदाय उपागम
- 15.3.4 विकास केन्द्र उपागम
- 15.3.5. पिछड़ा क्षेत्र उपगम
- 15.3.6. बहुस्तरीय जनपद नियोजन उपागम
- 15.3.7. गुच्छ ग्राम उपागम
- 15.3.8. न्यूनतम आवश्यकता उपागम
- 15.3.9. समन्वित विकास उपागम
- 15.3.10. विकास खण्ड स्तरीय उपागम
- 15.3.11. पंचायत राज्य उपागम
- 15.3.12. सेवा क्षेत्र उपागम

15.4. ग्रामीण नियोजन के कार्यक्रम

- 15.4.1 बीस सूत्री कार्यक्रम
- 15.4.2 समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम
- 15.4.3. महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी अधिनियम

15.5. ग्रामीण नियोजन संघटक

- 15.5.1 ग्रामीण अधिवास तन्त्र
- 15.5.2 ग्रामीण आर्थिक तन्त्र
- 15.5.3 ग्रामीण सामाजिक तन्त्र
- 15.5.4 ग्रामीण प्रशासनिक तन्त्र

15.6 ग्रामीण नियोजन प्रतिमान

- 15.6.1 विकास केन्द्र प्रतिमान

15.6.2 गुच्छित ग्राम प्रतिमान

15.6.3 अधः संरचनात्मक प्रतिमान

15.7 ग्रामीण नियोजन हेतु युक्तियाँ

15.8 ग्राम गुच्छ नियोजन एक नमूना

15.9 सारांश

15.10 शब्द सूची

15.11. स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

15.12. अभ्यास प्रश्न (संत्रात परीक्षा की तैयारी हेतुद्ध

15.13. संदर्भ / उपयोगी पुस्तकें

15.0 प्रस्तावना

अधिवास भूगोल के लिये लेखन की यह इकाई भूगोल के आधार पाठ्यक्रम MAGO – 109 की पन्द्रहवी इकाई है। इस इकाई में आप "ग्रामीण नियोजन" का अध्ययन करेगें। इसके अन्तर्गत ग्रामीण नियोजन का ऐतिहासिक दृष्टिकोण तथा ग्रामीण नियोजन के उपागम एवं अन्य उपागमों की चर्चा करेगें। नियोजन एक अति आवश्यक तथ्य है, जिसके बिना विकास की चरमावस्था तक नहीं पहुँचा जा सकता है। हम ग्रामीण नियोजन के कार्यक्रमों का अध्ययन करेगें, जिसमें बीस सूत्री कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, व महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी अधिनियम आदि मुख्य है।

इस इकाई के अर्न्तगत हम ग्रामीण क्षेत्र होने वाले विकास कार्यक्रमों की व्याख्या करेगें, जिसमें ग्रामीण अधिवास तन्त्र, ग्रामीण आर्थिक तन्त्र, व प्रशासनिक तन्त्र है।

15.1 उद्देश्य

भूगोल में आधार पाठ्यक्रम MAGO – 109 अधिवास भूगोल की पन्द्रहवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- अधिवास भूगोल के अन्तर्गत ग्रामीण नियोजन के सभी महत्वपूर्ण तथ्यों को समझ सकेगें।
- ग्रामीण नियोजन के उपागम के अन्तर्गत सभी उपागमों का सरलता से अध्ययन कर सकेगें।
- नियोजन में प्रयुक्त होने वाली सभी योजनाओं जैसे बीस सूत्रीय कार्यक्रमों का अध्ययन कर सकेगें।
- ग्रामीण परिवेश में सभी कार्य जैसे सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक आदि किस प्रकार किये जाते है, पर भी एक दृष्टि डालेगें।

15.2 ग्रामीण नियोजन : ऐतिहासिक दृष्टिकोण

भारत में ग्रामीण नियोजन पर प्राचीन काल से ध्यान दिया जा रहा है। वैदिक काल से ही अधिवासों में नियोजन की एक झलक सी दिखाई देती है, पुरातत्वविदों द्वारा इसकी पुष्टि हुई है। इसके अतिरिक्त वास्तुशास्त्र, मानसरा, कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि में ग्रामीण नियोजन की शुरूआत के श्रेय रविन्द्र नाथ टैगोर को जाता है जिन्होंने 1920 में शान्ति निकेतन के पास कई गाँवों का

नियोजन किया। इसके पश्चात् गांधी जी ने इसे यथार्थवादी रूप प्रदान किया। इसके पश्चात् ग्रामीणों में आपसी सहयोग व ग्रामीण क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं की बात कही। गांधी जी गाँवों के लोगों को अदरूनी तौर पर सशक्त बनाना चाहते थे, तथा वह गाँवों के रूपान्तरण के समर्थक थे। इसके अलावा पंडित जवाहर लाल नेहरू भी नियोजन विकास के समर्थ थे। नेहरू जी पुराने आधारों को क्षति पहुँचाये बिना उच्च स्तरीय सामुदायिक जीवन के विकास अर्थात् भारतीय संसाधनों व भारतीय परम्पराओं पर विशेष बल दिया।

1948 में उत्तर प्रदेश में इटावा जनपद में पाइलट प्रयोजना (Pilot Project) की शुरूआत की, जो देश की ग्रामीण नियोजन की 'प्रथम प्रयोजना' कही जा सकती है। इस प्रयोजना में मेयर महोदय ने ''आवास, विकसित परिवहन, संचार तन्त्र, ग्रामीण उत्पादों की नियमित व शोध खपत जल आपूर्ति एवं सिंचाई व्यवस्था व स्कूल चिकित्सालय आदि खोलने का सुझाव दिया गया।

देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–52) के अनुसार देश में विभाजन द्वारा पलायन किये लोगों को आवास पहुँचाना था तथा खाद्यानों व सुविधाओं की अत्यन्त कमी थी। प्रथम पंचर्षीय योजना में कृषि, सिंचाई एवं ऊर्जा विकास पर अत्यधिक बल दिया गया।

द्वितीय (1956–57 से 1960–61तक) और तृतीय (1961–62 से 1965–66 तक) पंचवर्षीय योजनाओं में आधारभूत उद्योग एवं कृषि के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया। चौथी व पांचवी पंचवर्षीय योजना के अनुसार विकास के समन्वित उपागम पर बल दिया गया। इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों, भूमिहिनों, लघुकृषकों, व आर्थिक दशाओं में सुधार पर बल दिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) में ''सामाजिक न्याय के साथ प्रगति को प्रमुख लक्ष्य बनाया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के अर्न्तगत ऊर्जा, परिवहन, संचार व सिंचाई आदि को सशक्त बनाना था। वर्तमान में ग्रामीण नियोजन को एक नया आयाम मिला है। जिससे ग्रामीण–अर्थ व्यवस्था विश्व की अर्थव्यवस्था का एक अंग मिल गया हैं।

15.3. ग्रामीण नियोजन के उपागम

पंचवर्षीय योजना के आरम्भ से ही नियोजनकर्ताओं का ध्यान ग्रामीण क्षेत्रों पर केन्द्रित था, किन्तु बदलते परिवेश में सामाजिक आर्थिक विकास के कारण ये धीरे–धीरे परिवर्तित होती जा रही है। ग्रामीण नियोजन के उपागम निम्नलिखित है।

15.3.1 सामुदायिक विकास उपागम

सामुदायिक विकास कार्यक्रम, जिसकी शुरूआत 1952 में की गयी, जिसका मुख्य उद्देश्य किसी क्षेत्र के भौतिक व मानव संसाधनों का क्षेत्र के नागरिकों के अनुकूल विकास करना है। यह गांधी जी के नियोजन सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें जीवन में सुधार, रोजगार के अवसर न्याय व सम्प्रदायिकता के साथ लोकतंत्र के प्रति जागरूकता प्राप्त हो सके।

15.3.2 लक्ष्य क्षेत्र उपागम

यह उपागम एक वर्ग विशेष के लिए होता है, जिसमें एक विशेष प्रकार की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत समस्याओं की एक सूची तैयार कर ली जाती है, जिसमें नियोजन में प्राथमिकता दी जाती है। यह उपागम धनी एवं अभिजात वर्ग के लिये अधिक उपयोगी है।

15.3.3 लक्ष्य समुदाय उपागम

इस उपागम की शुरूआत चतुर्थ पंचवर्षीय योजना से प्रारम्भ हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य निर्धन

व कमजोर वर्ग के लोगों को सुविधा सम्पन्न बनाना था। इसके अन्तर्गत लघु कृषक विकास अभिकरण, सीमान्त कृषक एवं कृषि श्रमिक विकास अभिकरण, सुखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम, मरूक्षेत्र विकास कार्यक्रम, पहाड़ी क्षेत्र कार्यक्रम, आदिवासी क्षेत्र विकास कार्यक्रम ग्रामीण रोजगार हेतु त्वरित आदि कार्यक्रम को चालू किया गया। इस उपागम के अन्तर्गत निम्न व निर्धन जनता को ध्यान में रखा गया।

15.3.4 विकास केन्द्र उपागम

विकास केन्द्र की संकल्पना जो सामाजिक आर्थिक क्रियाओं के विकेन्द्रीकरण के विचार पर आधारित है, ग्रामीण विकास हेतु एक सन्तुलित कार्य, पद्धति को प्रदान करती है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी प्रादेशिक नियोजक फ्रैंकोइस पेराक्स के अनुसार विकास का प्रादुर्भाव एक साथ सभी स्थानों पर नही बल्कि अनुकूल बिन्दुओं पर विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है। यहां जिन बिन्दुओं को, जहां से विकास क्रिओं का विसरण बर्हिवर्ती भागों की ओर होता है, विकास का ''पातिक बिन्दु'' कहा जाता है।

विकास ध्रुव सिद्धान्त की गतिशीलता व नवाचारों पर निर्भर करती है। इसका सम्बन्ध हैमर के नवाचार तरंगों के विसरण से भी सम्बन्धित है। यह सिद्धान्त क्रिस्ट्रालर के ''केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त'' के अर्थव्यवस्था को आधुनिकीकरण तथा सामाजिक आर्थिक विकास हेतु विकास ध्रुवों का उपयोग होता है।

विकास ध्रुव की संकल्पना क्रोड एवं परिधि के बीच सम्पूरक सम्बन्ध पर आधारित है। पिछड़े क्षेत्रों में सम्बन्ध शोषणात्मक रूप धारण कर लेता है जिस कारण विकास प्रसरण में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। विकास ध्रुव का उद्‌भव औद्योगीकरण व नगरीकरण से सम्बन्धित है, जिसमें यह कृषि विकास को गौण स्थान प्रदान करता है। इसी प्रकार इस उपागम में औद्योगीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा सामाजिक गतिविधियां, गौण स्थान पर है। इसको द्वितीयक एवसं तृतीयक क्रियाओं के माध्यम से विक्रेन्द्रित किया जा सकता है।

15.3.5. पिछड़ा क्षेत्र उपगम

इस उपागम के अन्तर्गत पिछड़े क्षेत्रों की पहचानकर उनकी समस्याओं को निर्गत करने का प्रयास किया जाता है।

1. अर्न्त प्रादेशिक आवण्टन नीति – इस नीति के अन्तर्गत केन्द्र समस्त पिछड़े हुए राज्यों को सुविधा प्रदान करता है।
2. प्रोत्साहन नीति – इसके अन्तर्गत सरकार आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों की वित्तीय सहायता करती हैं।
3. विदेश अनुदान नीति – इसके अन्तर्गत केन्द्र सरकार पुराने उद्योगों का नवीनीकरण व नये उद्योगो की स्थापना के लिये 15 लाख रू० प्रदान करती हैं

इस उपागम का उपयोग एक सीमित क्षेत्र के लिये होती है।

15.3.6. बहुस्तरीय जनपद नियोजन उपागम

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में जनपद के नियोजन विशेष ध्यान दिया गया है। इसके अन्तर्गत जनपद में छोटी से छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कई नीति बनायी जाती है। इसके लिए सभी भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सगंठनात्मक–प्रशासनिक दशाओं में जनपद स्तर की समस्याओं की जानकारी प्राप्त की जाती है फिर उसके निदान के लिए योजनाओं की क्रियान्वयन

होता है। इस योजना में विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

15.3.7. ग्राम गुच्छ उपागम

इसमें उत्पादन पद्धति, सामाजिक परिवर्तन तथा स्थानिक संगठन आदि तीन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। एल०के० सेन ने सामाजिक, आर्थिक क्रियाओं, भूमि उपायों एवं परिवहन जाल हेतु तीन प्रतिमानों का उल्लेख किया हैं। इस ग्राम गुच्छ को ग्रामीण नियोजन की सबसे लघुत्तम् इकाई के रूप में ध्यान दिया जाता है। इसके समर्थकों में बी०एम० राव, एच० रामचन्द्रन, आर०एल० सिंह मुख्य हैं।

15.3.8. न्यूनतम आवश्यकता उपागम

इस उपागम के शुरूआत पंचवर्षीय योजना से सम्बन्धित हैं इसके अन्तर्गत न्यूनतम स्तर पर रहने वाली 30 प्रतिशत जनसंख्या की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो सके। इसके लिए निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाता है–

1. 14 वर्षों तक के बच्चों को प्राथमिक विद्यालय घर के समीप होना चाहिए।
2. शुद्ध पेय जल की व्यवस्था करना।
3. 1500 या उससे अधिक जनसंख्या वाले गाँवों को वर्ष भर यातायात मार्गों से जोड़ना।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन श्रमिकों के लिये आवासों के लिये जमीन का आवटंन।
5. यूनीसेफ (UNICEFद्ध संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्र तक पहुँचाना।
6. गाँवों में 30 से 40 प्रतिशत विद्युत सुविधा को पहुँचाना।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिये इस उपागम को अत्यधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। इसके अन्तर्गत निर्धन लोगों के लिये सुविधायें व सार्वजनिक सेवाओं का विस्तार किया जाता हैं।

15.3.9. समन्वित विकास उपागम

समन्वित विकास उपागम का मुख्य उद्देश्य प्रादेशिक, सामाजिक, क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करना तथा सामाकि न्याय एवं समानता की नयी व्यवस्था के तहत कार्य करना है। यह उपागम तीन मान्यताओं पर कार्य करता है।

1. ग्रामीण विकास के लिए कृषि को आधार बनाना।
2. कृषि विकास
3. कृषि कार्य के लिये सामाजिक सहभागिता का योगदान रहता है। यह एक Strategy Pagkage है, जिसमें सामाजिक सहभागिता के लिये ग्रामीण उत्पादन, उत्पादकता में वृद्धि सामाजिक–आर्थिकता न्यायता, सामाजिक सन्तुलन आदि सम्मिलित है। इस कारण इसमें गहन कृषि विकास कार्यक्रम, सुखाग्रस्त, एवं जलग्रहण क्षेत्र कार्यक्रम तथा लघु कृषकों, सीमोन्त कृषक भूमिहीन श्रमिकों के विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है। यह एक बहुउद्देशीय उपागम है, इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों सामाजिक–आर्थिक अन्तर को समाप्त करना है।

15.3.10. विकास खण्ड स्तरीय उपागम

छठवीं पंचवर्षीय योजना में ''विकास खण्डों के नियोजन को प्राथमिक दी जाती है। इस

उपागमों में दो उपागमों का समन्वय किया गया है।

(1) समन्वित ग्रामीण विकास उपागम (2) समन्वित क्षेत्र विकास उपागम

इन दोनों उपागमों द्वारा ग्राम के निर्धन जनता के लिये सुविधाये मुहैया कराना है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं, लघुसिंचाई, मृदा संरक्षण, जल प्रबन्धन, पशुपालन, मत्स्य पालन, वानिकी व कुटीर एवं लघु उद्योग आदि शामिल है।

15.3.11. पंचायत राज्य उपागम

यह उपागम महात्मा गांधी की ग्रामीण नियोजन की संकल्पना पर आधारित है, जिसमें उन्होंने पंचायती स्तरीय नियोजन की बात कही। सन् 1950 में समुदायिक विकास कार्यक्रम का आरम्भ हुआ। सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत गरीबी व बेरोजगारी की समस्या को दूर करने हेतु इस उपागम का क्रियान्वयन किया गया है। इसके कार्य निम्नवत् है–

1. ग्राम विकास के विषय में ग्रामवासियों को जानकारी और अभिरूचि को जागृत करना।
2. ग्रामों में सामुदायिकता व आत्मनिर्भरता की भावना को बनाये रखना।
3. ग्रामीण अंचलों में नवाचारों की शीघ्र स्वीकृति प्रदान करना।
4. भावी नेतृत्व प्रशिक्षण के लिये आवश्यक स्थल तैयार करना।
5. ग्रामीण मामलों में प्रबन्धन में ग्रामीणों समस्याओं का निदान करना।

15.3.12. सेवा क्षेत्र उपागम

यह उपागम अप्रैल 1989 से क्रियान्वयन किया जा रहा है, जिसमें राष्ट्रीयकृत बैंकों को ग्रामीण विकास हेतु सक्रिय योगदान दिया गया है। इसके अन्तर्गत बैंक आपनी शाखा से गांव के लोगों को ऋण प्रदान करता है। इस उपागम के निम्न कार्य है।

1. ग्रामीण क्षेत्र की शाखा को एक निश्चित कमान सौप दी जाती है।
2. इसमें बैंक के शाखा प्रबन्धक केन्द्रीय भूमिका होती है। वह ग्रामीणों की समस्याओं का निराकरण में महत्वपूर्ण योगदान देता है।
3. ग्रामीण विकास की अन्य योजना से भिन्न सेवा क्षेत्र उपागम में अन्य अभिकरणों से सहयोग मिलता रहता है जिससे गाँवों के आकड़े मिलते रहते है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुचारू रूप से सुधार हो सके।

भारत में लगभग 576000 ग्राम है, जिसमें 42000 व्यावसायिक व प्रादेशिक शाखा हैं एक शाखा के अन्तर्गत 15 से 20 गाँवों की जिम्मेदारी होती है।। यह एक महत्वपूर्ण उपागम है जिसमें कर्मियों व कठिनाईयों भी सम्मिलित है जिसके कारण कार्यों में बाधा आ रही है।

15.4. ग्रामीण नियोजन के कार्यक्रम

वर्तमान सदी के 6वें दशक में ग्रामीण विकास के अनेक कार्यक्रमों का प्रारम्भ हुआ, जिनका मुख्य उद्देश्य ग्रामीणवासियों की आय में वृद्धि व रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है। इन कार्यक्रमों को निम्न चार वर्गों में विभाजित किया गया है।

1. व्यक्तिगत् लाभार्थी अभिमुख कार्यक्रम।

2. ग्रामीण रोजगार सम्बन्धी कार्यक्रम।

3. विपन्न क्षेत्र विकास कार्यक्रम।

4. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम।

15.4.1 बीस सूत्री कार्यक्रम

इसकी घोषणा सर्वप्रथम 1975 में हुई, जिसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की प्राथमिकता दी गयी। इस कार्यक्रम को 1982 व 1986 में संशोधित किया गया। 2006 में आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु इसे एक बार पुनः संशोधित किया गया। संशोधित बीस सूत्री कार्यक्रमों का विवरण निम्नवत् है।

1. गरीबी हटाओं
2. जन शक्ति
3. किसान मित्र
4. श्रमिक कल्याण
5. खाद्य सुरक्षा
6. सबके लिये आवास
7. शुद्ध पेय जल
8. जन जन का स्वास्थ्य
9. सबके के लिये शिक्षा
10. अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक एवं अन्य पिछड़ा वर्ग कल्याण।
11. महिला कल्याण
12. बाल कल्याण
13. युवा विकास
14. बस्ती सुधार
15. पर्यावरण संरक्षण एवं वन वृद्धि
16. सामाजिक सुरक्षा
17. ग्रामीण सड़के
18. ग्रामीण ऊर्जा
19. पिछड़ा क्षेत्र विकास
20. ई–शासन

नयी बीस सूत्री कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य गरीबी हटाना, आय के अन्तर को समाप्त करना, सामाजिक व आर्थिक असमानता को कम करना मुख्य हैं। इसमें राष्ट्रीय सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम संयुक्त राष्ट्र संघ व सार्क के सामाजिक शासन पत्र (C-Rarter) के अनुकूल बनाना हैं।

15.4.2 समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (I.R.D.P)

समन्वित ग्रामीण विकास मुख्यतः सन्तुलित ग्रामीण विकास की संकल्पना से सम्बद्ध है। इसका उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के रूप में किया जा रहा है। इस योजना का लक्ष्य लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाना है। इसमें आय उत्पादक परिसम्पति से अतिरिक्त रोजगार के अवसर प्रदान कर लोगों के जीवन स्तर सुधारना है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के शुरुआत 1976–77 में प्रारम्भ हुई थी। 120 अक्टूबर 1981 को इसे बीस सूत्री घटक में परिवर्तित कर दिया गया। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, भूमिहीन रोजगार गांरटी कार्यक्रम, परिगणित जातियो/जनजाति के विशेष संघट के रूप में परिवर्तित किया जाता है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लघु कृषको, कृषि और अकृषि श्रमिको परिगणित जाति/जनजाति को शामिल किया गया। इसमें मुख्य 14000 से कम आय वाले लोगो को सम्मिलित किया गया है। यह केन्द्र द्वारा चलायी गयी योजना है। इसमें केन्द्र व राज्य सरकार का कार्य 50:50 प्रतिशत होता हैं।

15.4.3. महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी अधिनियम

सितम्बर 2005 इस योजना का पारित किया गया है। 1 अप्रैल, 2008 से प्रत्येक जिले में लागू किया गया। 2 अक्टूबर, 2009 में इसे महात्मा गांधी जी के नाम से जोड़ दिया गया। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा के नीचे रहने वाला स्वस्थ्य व्यक्ति को 100 दिन रोजगार की गारन्टी दी गयी है। इसमें सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजा. (C.S.R.Y) एवं राष्ट्रीय कार्य के बदले अनाज (NFFWP) को सम्मिलित कर लिया गया है। इसके अन्तर्गत सूखा निवारण, बाढ़ नियन्त्रणण, जल संरक्षण, भूमि विकास, ग्रामीण संयोजता आदि कार्यक्रम सम्मिलित है। वर्ष 2007–08 के अन्तर्गत इस योजना के द्वारा 3.39 करोड़ लोगों को रोजगार उपलब्ध हुआ।

1. **ट्रायसेम योजना (TRYSEM scheme)**– इस योजना का आरम्भ 15 अगस्त 1979 को ग्रामीण क्षेत्र की बेरोजगारी समाप्त करने हेतु हुई। जिसका उद्देश्य 18से 35 वर्ष के युवक युवतियों को प्रतिशिक्षित करना था। उसमें 30 प्रतिशत परिगणित जाति के/जनजाति के 33.3 प्रतिशत महिलाये होनी चाहिये। यह प्रशिक्षण पॉलिटेक्निक, कृषक प्रशिक्षण, औद्योगिक प्रशिक्षण, प्रसार प्रशिक्षण, दस्तकार केन्द्र आदि में कराया जाता है।
2. **राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP)** –इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, राज्य व केन्द्र सरकार आपस में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है इसमें दोनों की भागीदारी 50:50 प्रतिशत है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के साथ अंधा संरचना को सुदृढ़ करता है। यह ''गरीबी हटाओ कार्यक्रम के रूप में भी जाना जाता है, जिसके लिये छठी व सातवी पंचवर्षी योजनाओ में 1620 व 5250 करोड़ रूपये परिव्यय निर्धारित हैं। 1982 में यह जिम्मेदारी जनपद ग्रामीण विकास अभिकरण (DRDA) को सौंप दी गयी। वर्तमान में जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत ग्राम पंचायत को दे दिया गया है।
3. **ग्रामीण कारीगरों हेतु योजना** – इसमें उत्पादन वृद्धि के लिये ग्रामीण लोगो को औजार दिये जाते है। वर्ष 1992–93 से 1997–98 तक इस योजना अन्तर्गत 147.95 लाख मूल्य के 7.46 लाख नए औजारों के बैग वितरित किये गये।
4. **इन्दिरा आवास योजना (Indira Awas Yojna)** – इस कार्यक्रम का भूमिहीन रोजगार गारंटी

कार्यक्रमश (RLGP के अन्तर्गत मई 1985 से कार्यान्वयन हो रहा है। इसका उद्देश्य अनुसूचित जाति/जनजाति को अत्यन्त गरीब महिलाओं व शहीद सैनिको को मकान निर्माण के लिये (मैदानी क्षेत्रो 35000 व 38500 पहाड़ी क्षेत्रों) रू० के वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है, जिसमें 21 वर्ग मी० (प्लाट आकार 10x15 मी०) होता हैं इस योजना के द्वारा स्वच्छ व स्वास्थ्यकर पर्यावरण निर्धन लोगो तक होता है।

5. **ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं और बच्चो का कार्यक्रम (DWCRA)**– इस कार्यक्रम का आरम्भ 1982–83 से 15–20 महिलाओं का समूह के प्रशिक्षण हेतु हुई, जिसमें सिलाई, फलों से रस निकालना, फल संसाधन, खाद्य परिरक्षण, प्लास्टिक थैला बनाना आदि सम्मिलित है। कार्य आरम्भ करने के लिये उन्हें 15000 रू० प्रदान किये जाते हैं।

6. **जवाहर रोजगार योजना (J.R.Y) –**ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को समस्या के समाधान हेतु 28 अप्रैल, 1989 में इस योजना को आरम्भ किया गया। इसमें 80 प्रतिशत अंश केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है। इस योजना के अन्तर्गत उसे 4,000 वाली, जनसंख्या वाली, ग्राम पंचायत को प्रतिवर्ष 80,000 से 1 लाख रू० की धनराशि आवंटित की गयी है। इसमें निर्धन ग्रामीण परिवारों के प्रत्येक सदस्य को घर के आस–पास ही 50 से 100 दिनों का कार्य मुहैया करा दिया जाता है।

7. **गंगा कल्याण योजना (G.K.Y)**–यह एक केन्द्र समर्थित योजना है, जो 1 फरवरी 1997 को प्रारम्भ हुई इसमें गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लघु व सीमान्त कृषको के लिये नलकूप/पंपिंग सेट दिये जाने की सुविधा है। इसमें केन्द्र 80 प्रतिशत, राज्य सरकार 20 प्रतिशत कार्यभार वहन करता है।

8. **राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम एवं अन्नापूर्णा योजना –**इस योजना का आरम्भ 15 अगस्त 1995 से की गयी। इसमें निम्न उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है –

    (1) राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन

    (2) राष्ट्रीय पारिवारिक लाभ योजना

    (3) राष्ट्रीय मात लाभ योजना

    (4) अन्नापूर्णा योजना,

9. **ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम (RSP) –**यह एक केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रम है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालयों का निर्माण करके वातावरण को शुभ बनाना है। इस योजना में 80 प्रतिशत भागीदारी केन्द्र व राज्य सरकार की होती है।

10. **स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) –** इस योजना का आरम्भ 1 अप्रैल 1999 को समपित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) व उससे सम्बद्ध कार्यक्रमों का पुनगर्ठन किया गया है। इसके अन्तर्गत लघु उद्योग द्वारा निर्धन परिवारों की सहायता करना है।

11. **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)** – यह केन्द्र द्वारा संचालित योजना है, जिसका आरम्भ 25 दिसम्बर 2000 को प्रारम्भ हुआ। इसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारत के 500 से जनसंख्या से अधिक सभी ग्रामों को बारहमासी सड़क उपलब्ध कराना है। इस योजना में पुरानी सड़कों का विनिर्माण सम्मिलित है।

12. **सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SERY)**–इस योजना का आरम्भ 25 सितम्बर 2001 में

रोजगार गारंटी योजना व जवाहर ग्राम योजना को मिलाकर हुई। इसका उद्देश्य ग्रामीण को क्षेत्रों में रोजगार, खाद्य सुरक्षा, व स्थायी सामुदायिक परिसंपत्तियो का निर्माण करना है।

13. **राष्ट्रीय खाद्य हेतु कार्य योजना (NE WP)** –इसे 2004 में 150 अतिपिछडे जनपदो के विकास हेतु क्रियावय किया गया। इस योजना के अन्तर्गत गरीब परिवारों का 100 दिन तक रोजगार दिया जाता है। इसमें प्रतिदिन मजदूरी 5 किग्रा अनाज व नकद धनराशि का वितरण किया जाता है।

14. **सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)–** सूखाग्रस्त क्षेत्र, जिसे प्रारम्भ में 'ग्रामीण कार्यक्रम (RWP) उपनामकरण दिया गया' की शुरुआत 1973 से हुई। इसका मुख्य उद्देश्य सुखा क्षेत्रों में लघु सिंचाई, मृदा संरक्षण, वृक्षारोपण सड़क निर्माण, पेयजल के द्वारा सूखे के प्रकोप को कम करना।

15. **मरुभूमि विकास कार्यक्रम (DDP)**–मरुभूमि विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ 1977–78 के मरूस्थलों के प्रसार को रोकने से सम्बद्ध है। इसके लिये वृक्षारोपण, बालुका स्तूपों का स्थिरीकरण, भूगर्भ जल का विकास, "नलकूपों व पम्पसेटो" आदि के विकास करना है।

16. **बंजर भूमि विकास कार्यक्रम (WLDP)** –इस कार्यक्रम को 1989–90 से बंजर भूमि क्षेत्र के उत्पादकता के ह्रास को रोकने के लिये प्रारम्भ किया गया। इसमें केन्द्र व राज्य सरकार 11.1 की भूमिका है। इसे जलसंभर विकास के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।

15.5. ग्रामीण नियोजन संघटक

ग्रामीण नियोजन की चार मुख्य संघटक है।

15.5.1. ग्रामीण अधिवास तन्त्र

इसके अन्तर्गत ग्रामीण आवासों उनको मिलाने वाली गलियो, मार्गो आस–पास स्थित खेत, खलियान, क्रीडा व मनोरंजन आदि को सम्मिलित किया गया है। इस नियोजन के अन्तर्गत आवासीय व अन्य सुखसुविधाओं की पूर्ति की जाती है।

15.5.2. ग्रामीण आर्थिक तन्त्र

ग्रामीण आर्थिक तन्त्र में कृषि का प्रमुख योगदान है। इसके अन्तर्गत कृषि को अत्यन्त आधुनिक व बाजारोन्मुख बनाना है, जिसने इस क्षेत्र के अत्यधिक उन्नत किया जा सके। इसके अतिरिक्त ग्राम के द्वितीयक व तृतीयक व्यवसायों को विकसित करना है जिससे क्षेत्र का विकास हो सके।

15.5.3. ग्रामीण सामाजिक तन्त्र

भारत एक गांव का देश हैं। यहां 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ग्रामों में निवास करती हैं गाँवों के जीवन स्तर में सुधारकर वहां विकास की नयी नीतियों का क्रियान्वयन किया गया है।

15.5.4. ग्रामीण प्रशासनिक तन्त्र

भारत वर्ष से वैदिक, मौर्य एवं गुप्त काल आदि अत्यन्त प्राचीन काल में भी प्रशासनिक अत्यन्त सशक्त दिखाई पड़ता है। इसके बाद के भी युगों में भी इसकी झलक दिखायी पड़ती है। महात्मा गाँधी ने भी पंचायत व्यवस्था के माध्यम से से पुर्नस्थापित करने का प्रयास किया। इसके बिना समाज में शासन व कार्य प्रणाली पर नियन्त्रणण होना असम्भव सा प्रतीत होता हैं।

15.6 ग्रामीण नियोजन प्रतिमान

ग्रामीण नियोजन के तीन निम्नलिखित प्रतिमान है।

15.6.1 विकास केन्द्र प्रतिमान

ग्रामीण क्षेत्रो में आर्थिक के सामाजिक विकास के लिये कई कार्यात्मक तन्त्र बनाये गये है, जो अन्तरालों के आपूरण का प्रयास करते है। ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक व सामाजिक विकास हेतु विभिन्न स्तरीय विकास केन्द्रो की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन केन्द्रो में क्रमबद्ध एवं नियमित वितरण द्वारा सन्तुलित और त्वरित ग्रामीण विकास किया जाता है। इन केन्द्रों द्वारा आधारभूत सुविधाएँ पहुँचायी जाती है।

15.6.2 गुच्छित ग्राम प्रतिमान

इसमें एक ग्राम नही वरन् 5 या उससे अधिक गाँवों को सम्मिलित कर समूह का निर्माण किया जाता है। समूह बन जाने से कार्यान्वन का काम सरल व कम खर्चीला हो जाता है, अतः इसलिये इस गुच्छित ग्राम कहते हैं।

15.6.3 अधः संरचनात्मक प्रतिमान

इस प्रतिमान के अनुसार ग्रामीण विकास हेतु परिवहन संचार ऊर्जा, बैंक, बाजार, भण्डारन व प्रशीतन आदि अधः संरचनात्मक, सुविधाओं का विकास किया जाता है। इनके आधार पर ग्रामीण क्षेत्र में कृषि, उद्योग व्यापार का समुचित आपसर प्राप्त हो सकेगें।

15.7 ग्रामीण नियोजन हेतु युक्तियाँ

ग्रामीण नियोजन हेतु कई युक्तियाँ प्रस्तावित है। राजेयका महोदय ने एक भू–प्रायोजना उपागम को सुझाव दिया है, जिसके अन्तर्गत –

1. सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों का परिसीमन
2. ग्रामीण क्षेत्रों के वर्तमान संसाधन सम्भाव्यता का उपयोग
3. सर्वोपयुक्त पर संस्थितियों पर संसाधित उद्योगो की स्थापना
4. संसाधन उपयोग में समय कारक
5. समस्याग्रस्त क्षेत्रो के विकास पर विशेष बल
6. प्रोत्साहन कार्यक्रम आदि सम्मिलित है।

सेन और उनके सहयोगियो (1971) ने मिरयालगुडा तालुका के अध्ययन के आधार पर सूक्ष्म स्तरीय नियोजन पर बल देने का सुझाव दिया है। उन्होंने सन्तुलित प्रादेशिक विकास हेतु विकास केन्द्रों के पदानुक्रम से सम्पन्न स्थानिक–कार्यात्मक तन्त्र के विकास का परामर्श दिया है। इनके अनुसार ग्राम गुच्छों से सम्पन्न केन्द्रीय ग्रामों का विकास ग्रामीण नियोजन की लघुत्तम इकाई के रूप में करने की आवश्यकता है। एस०एल० भट्ट व मित्रों के अनुसार – हरियाणा के करनाल क्षेत्र के अध्ययन के आधार पर सूक्ष्म स्तरीय ग्रामीण नियोजन के महत्व पर बल दिया गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य सबसे गरीब लोगों की आर्थिक दशा सुधारने के लिये रोजगार के अवसरों के सृजन की आवश्यक बताया गया है। इन्होंने एतदर्थ ग्रामीण सेवा केन्द्रों के पदानुक्रमीय तन्त्र के विकास का भी प्रस्ताव है।

विकास स्तरीय नियोजन के मुख्य संघटकनिम्न प्रकार के है।

1. कृषि, पशुपालन, वानिकी व ग्राम एवं लघु उद्योग आदि विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन हेतु अभिवृद्धि हेतु कार्यक्रम बनाना।
2. गरीब रेखा से नीचे स्थित लोगों की आय वृद्धि हेतु कार्यक्रम बनाना।
3. संस्थात्मक समर्थन हेतु कार्यक्रम बनाना।
4. न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यक्रम बनाना।

गंगा–यगुना द्वाब क्षेत्र में ग्रामीण नियोजन हेतु विकास के निम्न सुझाव दिये गये है।

1. ग्रामीणों का पुर्नस्थापन।
2. सूक्ष्म स्तरीय नियोजन।
3. विकास खण्ड का उपयोग नियोजन।
4. ग्रामीण लोगो के प्रोत्साहन पर बल देना।
5. आर्थिक– सामाजिक विषमता का निराकरण।

15.8 ग्राम गुच्छ नियोजन एक नमूना

''ग्राम गुच्छ नियोजन योजना'' प्रतापगढ़ जनपद की 5 तहसीले में लागू की गयी है। जिनमें पिंगरी, खेमीपुर, नसीरुल्लापुर टिकरिया बुजुर्ग और शाह जमाल आदि मुख्य है। इसमें कुल 6.79 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र सम्मिलित है। क्षेत्र में उच्च संसाधन पाया जाता है लेकिन बुनियादी अधः संरचना व आर्थिक अवसरो की न्यूनता के कारण आर्थिक विकास बाधित है।

यहाँ बेरोजगारी का भरपूर आभास मिलता है। शारदा नहर की उपशाखों द्वारा सिंचाई की जाती है। टिकरिया बुजुर्ग के माध्यमिक, तथा खेमीपुर के प्राथमिक विद्यालय, पोस्ट ऑफिस तथा द्विसाप्ताहिक बाजार आदि गाँवो को सहायता प्राप्त हो जाती है। ग्रामीण में भूमि उपयोग में एक सामान्यीकरण देखने को मिलता है क्षेत्र निम्नरूप में विभाजित है।

5–8 प्रतिशत भाग आवासीय कार्य, 5–8 प्रतिशत उद्योग के लिये 15–20 प्रतिशत बाग बगीचो, 10 प्रतिशत सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं तथा 60 प्रतिशत भाग कृषि हेतु उपलब्ध करायी गयी है। वर्तमान अधिवास संस्थितियों में सड़क, बिजली मलनाली व पेयजल की सुविधाओं में निरन्तर सुधार करने की आवश्यकता है। शारदा नगर के किनारे बाजार, ग्रामीण बैंक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, पंचायत घर, युवक मंगल केन्द्र, अन्न भण्डार, कृषि मशीनी के विक्रय एवं सुधारक केन्द्र आदि को और अधिक विकसित करने की आवश्यकता है।

इन प्रस्तावों के क्रियान्वयन के लिये 5 गाँव को लिया गया है जिससे कार्यो में सरलीकरण हो सके। गुच्छ की सम्पूर्ण भूमि व भूसम्पत्ति को अदालत पंचायत अथवा केन्द्रीय ग्राम परिषद् के व्यवस्थापक प्रयोग करना है। इसकी देखरेख प्रत्येक चुने हुए पांच–पाँच प्रतिनिधियो, चेयरमैन द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण उद्योग, कृषि, आवास स्वास्थ्य एवं सफाई में विशेष दक्षता प्राप्त विकास खण्ड के नामित सदस्यों द्वारा की जानी चाहिये।

क्षेत्र में लघु व कुटीर उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिये, जिससे ग्राम के लोगो की आय प्राप्ति के साधन उपलब्ध हो सके। गाँवो में सभी प्रकार की योजना को नियोजित बनाने की

आवश्यकता है जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

15.9 सारांश

आपने इसे पन्द्रहवी इकाई में यह स्पष्ट रूप से जाना कि ग्रामी नियोजन एक महत्वपूर्ण नियोजन है, जिसके अन्तर्गत सभी योजनाओ, व सुविधाओं को नियोजित कर क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा दे सकते है आदि तथ्यो का अध्ययन किया। देश चलाये जां रहे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम महत्वपूर्ण है, जिसमें कई बहुउद्देशीय जैसे ट्रायसेम योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण योजना, ग्रामीण कारीगरों की योजना, इन्दिरा आवास योजना, ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं और बच्चों का विकास कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, गंगा कल्याण योजना आदि का अध्ययन किया।

15.10 शब्द सूची

प्रतिमान	–	Model
उपागम	–	Approach
समन्वित	–	Integrated
संघटक	–	component
विकास	–	Growth
गुच्छित	–	Cluster
युक्ति	–	Strategy
निम्नगामी	–	Top Town
तलोच्चगामी	–	Bottom up
सम्यिक	–	Eaquitable

15.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. प्रदेश की प्रथम परियोजना का नाम बताइये।
   (अ) पाइलट (ब) ट्रायसेम
   (स) जवाहर रोजगार योजना (द) गंगा कल्याण योजना
2. निम्न में से किस पंचवर्षीय योजना में ऊर्जा विकास पर सर्वाधिक बल दिया गया।
   (अ) तृतीय (ब) चतुर्थ
   (स) प्रथम (द) द्वितीय
3. 'विकास ध्रुव' सिद्धान्त का प्रतिपादन किस विद्वान ने दिया
   (अ) बोडविल (ब) पेराक्स
   (स) क्रिस्टालर (द) लॉश

4. 'केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त' का प्रतिपादन किसने किया।

(अ) लॉश (ब) वॉनथ्यूनेन

(स) हैगरट्रेण्ड (द) क्रिस्टालर

5. 'बीस सूत्री कार्यक्रम' की घोषणा किस वर्ष हुई।

(अ) 1975 (ब) 1970

(स) 1978 (द) 1982

6. 'प्रधानमंत्री सड़क योजना' 206 आरम्भ कब हुआ।

(अ) 28 दिसम्बर 2000 (ब) 30 दिसम्बर 2000

(स) 25 दिसम्बर 2000 (द) 24 दिसम्बर 2000

आदर्श उत्तर– 1. (अ) **2.** (स) **3.** (ब) **4.** (द) **5.** (अ) **6.** (सद्ध

15.12.अभ्यास प्रश्न (संत्रात परीक्षा की तैयारी हेतुद्ध

1. ग्रामीण नियोजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिये।

.....

.....

.....

2. ग्रामीण नियोजन के उपागम पर निबन्धात्मक व्याख्या करे।

.....

.....

3. ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकीसमस्त क्रियान्वित योजनाओ के विषय में प्रकाश डालें।

.....

.....

4. ग्रामीण नियोजन संघटक से आप क्या समझते है, व्याख्यान करें।

.....

.....

5. ग्रामीण नियोजन प्रतिमानों का विश्लेषण करे।

.....

.....

.....

6. विकास केन्द्र प्रतिभान एवं ग्राम गुच्छ प्रतिमान की व्याख्या करे।

.....

.....

नोट–इकाई का अध्ययन के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर स्वयं लिखिये।

15.13. संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह उजागर, 1974: नगरीय भूगोल, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथअकादमी, लखनऊ, 413 PP.
2. सिंह, काशीनाथ एवं जगदीश सिंह, 1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी
3. वर्मा,लक्ष्मी, नारायण, 1983:अधिवास भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 300 पृष्ठ.
4. शर्मा, राजीव लोचन, : प्रादेशिक एवं नगरीय नियोजन, किताबघर, कानपुर

5- Tiwari, R.C. 1984', Settlement System in Rural India: A Case Study of the Lower Ganga Society, Allahabad, 192PP.

6-Turnery R.1962 : India's Urban future Orford University Press, Bombay.

7.Tiwari R.C. (1972) : A Critique of Research Methodology of Rural Sehemints in India National Geography Vol. VKII-P69

8 तिवारी राम चन्द्र : अधिवास भूगोल– प्रवालिका प्रकाशन प्रयागराज

8. तिवारीरामचन्द्र(1983) :अधिवास भूगोल–विकास एवं सम्भावनाएं भूसंगम अंक–1 संख्या , प्र0 41.
9. Singh R.L. et al (1976) : Geographic Dimensions of Rural Settlements (Vanansi : N.9 S.7)

11. सिंह काशी नाथ एवं सिंह जगदीश ;1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, वाराणसी : तारा पब्लिकेशन वाराणसी।

12.तिवारी राम चन्द्र :अधिवास भूगोल, प्रवालिका प्रब्लिकेशन्स, प्रयागराज।

13 करन, एम0पी0, ओ0पी यादव,राम सुरेश 1995 अधिवास भूगोल किताब घर, कानपुर।

14 डॉ0 एस0 डी0 मौर्या, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भण्डार, प्रयागराज।